Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका वर्ष :28, अंक :431, मार्च, 88

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

अतिथि संपादक :
शरद जोशी
संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन
विभागीय सहयोगी :
बिमला रानी
ज्ञान सिंह
प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान
सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

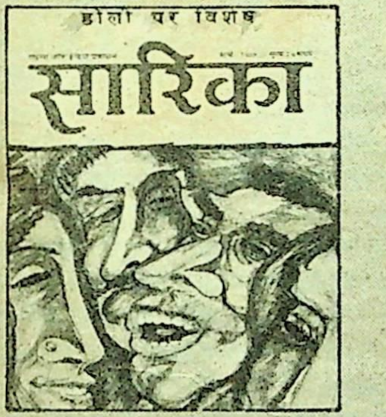

आवरण कलाकृति : हरिपाल त्यागी
अंक सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

प्राचीन व्यंग्य साहित्य खंड

11. किताब खाना :
भारतेंदु हरिश्चंद्र
12. शिवशंभु का चिट्ठा :
बालमुकुंद गुप्त
13. गुप्त ठग, दांत :
प्रतापनारायण मिश्र
15. 'हां' में 'हां'
मिश्र बंधु
17. लंका पर शंका :
जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

व्यंग्य रचनाएं

19. रोग :
रवींद्रनाथ त्यागी
20. पुलिया, गरम बोनट और बकरियां :
ज्ञान चतुर्वेदी
23. इंस्पैक्टर फोर्ड के कारनामे :
वुडी एलन
26. हैदराबाद का जो जिक्र किया :
मुज्तबा हुसैन
30. क्रांति, कुत्ता और ट्रेजिडी :
यशवंत व्यास
33. क्रिकेट्रिया :
राशिद आकाश
34. मेरा मुख्य अतिथि हो जाना :
लतीफ घोंघी
37. यक्ष विलाप :
सूर्यबाला
38. टेनिसी की पत्रकारिता :
मार्क ट्वेन
41. कला का पारखी :
कन्हैयालाल कपूर
43. असमर्थ :
राजेंद्र सिन्हा
49. सूखे खेत लहलहाते चिंतन :
शिवानंद कामड़े.
52. कुत्ता कथा :
लक्ष्मीकांत वैष्णव
60. भिखमंगों को पेंशन :
ईश्वर शर्मा
63. प्रेम के संबंध में विशेषज्ञ का बयान :
फ्रेंक सलीवान
65. मिथ्या निंदक :
चेखव
67. पानी की समस्या :
शरद जोशी

साक्षात्कार

74. क्यों मुझे प्राचीर बनकर... :
महादेवी वर्मा के साथ डा. रणवीर रांग्रा की बातचीत

संस्मरण

76. आरोपित ऊंचापन... :
चंद्रगुप्त विद्यालंकार

नवांकुर

84. पहाड़ :
वेदिका वेद

नये हस्ताक्षर

88. दूसरी राह का दर्द :
मदन मोहन

विशेष आयोजन

69. व्यंग्य सर्वेक्षण—1987 :
प्रेम जनमेजय
82. मानवीय संबंधों के एक्स-रेज़ :
हरिप्रकाश त्यागी

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात :
8. अपनी बात
9. अतिथि रहकर :
शरद जोशी
72. फाइनल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी
78. अनजानी प्रेम कथाएं :
बाला दुबे
87. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी
91. नयी पौद
92. कथा पहेली
93. कृतियां :
हरिमोहन, विश्वभंर अरुण, शीतांशु भारद्वाज
98 पत्रिकाएं :
महेश दर्पण

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88 महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

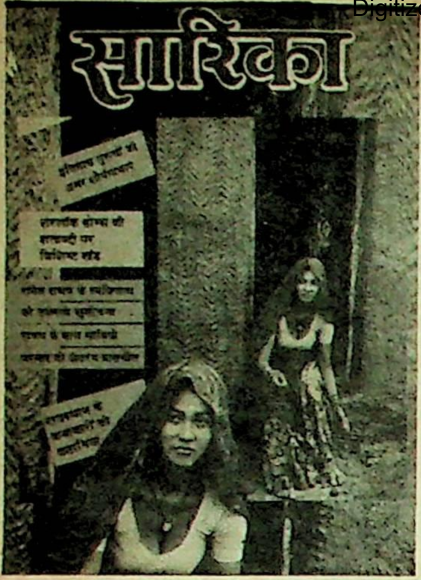

कहानी की-सी रोचकतावाला साक्षात्कार

सारिका का दिसंबर अंक पढ़ा. शौर्य गाथाओं का संकलन (कुछ कहानियों को छोड़कर) मात्र पन्ने भरने तथा फुसलाने का प्रयास रहा. मेरे विचार से कोई भी व्यक्ति जिसे भारत के इतिहास के बारे में थोड़ा-सा भी ज्ञान होगा, वह इन घर-घर में दादी दादाओं द्वारा सुनाई जाने वाली कथाओं के बारे में अनभिज्ञ तो नहीं होगा. क्या ही उत्तम होता इसकी जगह वर्षांत की साहित्यिक गतिविधियों, नये प्रकाशनों तथा अन्य संबंधित जानकारियों पर कोई आलेख प्रदान कर दिया होता.

सुलोचना राघव से लिये साक्षात्कार ने अवश्य सारिका की महत्ता को बनाये रखा. रांगेय राघव के बहुआयामी व्यक्तित्व के बारे में सावित्री परमार की लेखनी कहानी की-सी रोचकता को अंतर तक पाठकों के सामने रखती गयी. कहानियों में 'सर्वोच्च शिखर', 'साफ पानी की तलाश', तथा 'इल्मफरोश' काफी प्रभावशाली तथा सामयिक रहीं. तीनों रचनाओं का धरातल एक-सा ही था — भौतिकवादी दृष्टिकोण, चाहे वह डाक्टर आरती गुप्ता हो, चाहे परिवहन निगम के चौहान साहब अथवा माध्यमिक शाला के घनानंद जी, इसी दृष्टिकोण की धुरी के परितः घूमते रहते हैं. हर कहानी को पूरा पढ़ जाने के बाद कुछ ऐसा आभास होता है जैसे कि अब स्थिति बदल गयी हो, तथा यह तीनों कथानायक स्वयं धुरी के समान स्थिर हो गये हों तथा इनका वह उद्देश्य अब इनके चारों ओर तेजी से घूमता हुआ इन्हें ही स्वयं में लपेट लेने को आतुर है, 'शरलॉक होम्स' पर विशिष्ट प्रस्तुति तथा राजस्थानी कहानीकारों की रचनाओं ने काफी प्रभाव डाला. पाठकगण अब इसी तरह आगामी अंकों में अन्य राज्यों के साहित्यिकारों की रचनाओं के लिए आतुर रहेंगे, कृपया ध्यान रखें.

सारिका ने साहित्यिक स्तर की उच्चकोटि की पत्रिका होने का गौरव बनाये रखा है तथा हम आशा करते हैं कि नववर्ष के सभी अंकों में यह आशा पाठकों को कम से कम उत्कृष्ट साहित्य हेतु तो मिलती रहेगी, वह बात अलग है कि 88 के अंत तक आप इसका मूल्य दस रुपये कर दें. मूल्यवृद्धि कोई भी पाठक सहन कर ही लेगा पर यह तो कभी उसे सहन नहीं होगा कि इसका आवरण तथा विज्ञापन अर्द्धनग्न तथा आपत्तिजनक चित्रों से परिपूर्ण हों, जिसके कारण इसे पढ़ने के बाद सुरक्षित स्थान पर रखना पड़े.

□ **मोहन चंद्र परगाई, नैनीताल**

वह जी कभी नहीं पायी!

भौतिकवाद की अंधी दौड़ में बेतहाशा दौड़ रहे आदमी को मानवता, ममता और प्यार का आज जरा भी होश नहीं है — इस कटु सत्य को यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी 'सर्वोच्च शिखर' बखूबी उजागर करती है. आरती जीने के सामान जुटाने में मरती रही किंतु जी कभी नहीं पायी.

भौतिकवाद की चमक ने आज आदमी को इस कदर अंधा कर दिया है कि वह इंसान कहलाने लायक ही नहीं रहा. इसी कारण खून के रिश्ते फीके पड़ रहे हैं और धन के रिश्ते गाढ़े.

□ **देव प्रकाश कौशिक, धौलपुर (राज.)**

अबला जीवन : परतंत्रता प्रमाण

सारिका का दिसंबर अंक अपनी मर्यादित प्रतिष्ठा से लसित होकर प्रस्तुत हुआ है. शरलॉक होम्स पर दी गयी कथा रचनाओं ने अन्वेषी चरित्र की अतिसूक्ष्म व विश्लेषणपरक बुद्धि को प्रतिबिंबित किया है. इस प्रकार के अंक सच में परिवर्तनबद्धता व समसामयिक उपादेयता के मानदंडों पर सफलतापूर्वक खरे उतरते हैं. इतना ही नहीं, बल्कि इन अंकों की महत्ता इसलिए भी बढ़ जाती है कि ये सुरुचिपूर्ण साहित्यिक रसास्वादन के लिए भी जल्दी ही स्वीकार्य होते हैं. आलमशाह खान की 'अबला जीवन का गणित' कहानी नारी जीवन की, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, परतंत्रता का जीवंत प्रमाण है. स्वाभाविक कथा व शब्द शिल्प के सहारे लेखक ने नारी के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण के पुनरावलोकन का आग्रह किया है. ऐसी छोटी या बड़ी साहित्यिक कृतियां जिनमें वर्तमान सामाजिक मूल्यों पर शोध किया गया हो अपरिहार्यता व महत्ता की दृष्टि से वरीयता प्राप्त कर लेती हैं.

शीतांशु भारद्वाज की 'इल्मफरोश', यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', माधव नागदा की 'साफ पानी की तलाश' तथा मोहर सिंह यादव की 'मंत्री जी महान' नामक कहानियां भी काफी अच्छी लगीं. नंदनजी द्वारा लिखित 'श्रद्धा स्मरण' पढ़कर डा. लाल के प्रति उनकी दो टूक टिप्पणियों के लिए मैं भी श्रद्धानत हो गया. स्व. डा. लाल कटु सत्य को कहने में कोई कोताही नहीं बरतते थे. यह स्पष्टवादिता लुप्तप्राय स्वभाव है.

एक परिमार्जित, उपयोगी व वस्तुनिष्ट दृष्टिकोणवाले इस अंक के लिए सारिका परिवार बधाई का पात्र है.

□ **हरीश उपाध्याय, असम**

नारी जीवन का व्याकरण

मैं कौन? मुझे भी लगता है कि मैं उस दरवाजे के बाहर खड़ा होकर सांकल खड़खड़ाने लगा हूं जिसके अंदर रहते व्यक्ति से मेरा कोई पूर्व परिचय व्यक्तिगत रूप से नहीं है किंतु मन में विश्वास लेकर जब कोई किसी के द्वार के बाहर हो तो अवश्य ही किसी अन्य प्रकार से वह अंदरवाले व्यक्ति को जानता है.

दिसंबर 87 का अंक राजस्थान के लेखकों को समर्पित. लघुकथाओं का मिश्रण और सबसे प्रभावशाली कहानी है 'अबला जीवन का गणित'. आलमशाह खान ने नारी के पूरे जीवन का गणित कितनी साधारण व स्पष्ट भाषा में किया. वास्तव में खान भाई का प्रयास सराहनीय है. जिस कोण से नारी जीवन को विभाजित कर गुणा किया - दस की बावली नहीं दावड़ी से सौ की जली का इतना सुंदर व्याकरण (नारी जीवन का) बड़ा सुहाया.

बाकी की कहानियों में 'मंत्री जी महान', 'सर्वोच्च शिखर' कुछ ऐसी ही कहानियां लगीं कि जीवन में लेखक केवल कलम ही चलाता रहे - क्या और रास्ता नहीं है इसके अलावा लेखक के पास? मंत्रीगणों का क्या, वे तो इस तरह अपनी मनमानी करते रहेंगे और हम कलम की चोंच तेज करते रहेंगे.

□ **अनिल पुरी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली**

पिछले अंक की परिचर्चा

पिछले अंक में 'किताबें दीवारें नहीं पढ़तीं....' परिचर्चा में प्रकाशन-विभाग की ओर से भाग लिया था श्री अभय आत्मा शिरोमणि ने. खेद है, भूलवश इनका नाम न जा सका. —संपादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला उर्फ गरगजसिंह वर्मा साहित्य शार्दूल

अभी अभी सारिका का दिसंबर अंक देखा. राजेंद्र राव ने 'वे मतवाले' में लिखा है "मतवाला में एक कालम होता था, 'चाबुक' उसे कोई श्रीमान गरगजसिंह वर्मा साहित्य शार्दूल लिखते थे." सारिका के पाठकों को यह जान सुखद आश्चर्य होगा ये वर्मा साहब और कोई नहीं हिंदी संसार के स्वनाम धन्य महाकवि निराला थे. स्वयं निराला जी ने इस कालम के बारे में लिखा था, "चाबुक शीर्षक से मैं एक दूसरे नाम से 'मतवाला' में व्याकरण पर आलोचनाएं लिखा करता था. आलोचना यथार्थता लिए हुए जितनी भी हो, कटुता लिए हुए अवश्य थीं. आज जिन लेखकों और संपादकों पर मेरी श्रद्धा है, उन्हें, समय मैंने अपनी श्रद्धा नहीं दी. मैं करबद्ध होकर कटुता से समालोचित पूज्य साहित्यिकों से क्षमा चाहता हूं...."

उपर्युक्त उदाहरण 'चाबुक' पुस्तक से उद्धृत किया गया है जिसमें पूज्य निराला जी के नौ निबंधों का संकलन था तथा जिसे उनके सुयोग्य पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने अपने निर्देशानुसार 'निरुपमा प्रकाशन' 50 शाहरारबाग, प्रयाग से प्रकाशित करवाया था.

'मतवाला' के संपादक मंडल में श्री शिवपूजन सहाय, श्री बेचन शर्मा 'उग्र' के साथ स्वयं निराला जी भी थे.

☐ रामकृष्ण पराशर, कवेंट्री (इंग्लैंड)

उम्दा बातचीत

'मनुष्य जन्म' (मुरलीधर शर्मा), 'सर्वोच्च शिखर' (यादवेंद्र शर्मा चंद्र), 'हेड मास्टर' (मालचंद्र तिवाड़ी) बहुत अच्छी लगीं. श्री विमल द्वारा मनुष्य को मनुष्य के प्रति मनुष्यता की तरह अनुराग करने की जो बात कही तथा विधवा विवाह करने का जो बीड़ा उठाया, बहुत ही सराहनीय है. अन्य कथायें भी पसंद आयीं. हां, एक बात विशेष रूप से. रांगेय राघव के व्यक्तित्व को उकेरती सुलोचना राघव के साथ सावित्री परमार की अंतरंग बातचीत काफी उम्दा लगी.

☐ माधो दास हर्ष, श्रीडूंगरगढ़

क्यों हो रहे हैं सिद्धांतवादी अल्पसंख्यक

अपने मित्रों की बुक क्लब योजना के अंतर्गत इधर माह से लगभग नियमित रूप से सारिका पढ़ने का सौभाग्य मिलता रहा है. आदर्श प्रधान समाज चिंतन व समर्थन में सारिका की कहानियां बड़ा संबल प्रदान करती हैं. दूसरी ओर समाज में नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का झंझावात मन को क्षुब्ध कर देता है. सारिका की कहानियां मनो-मस्तिष्क को सहलाती हैं, दुलराती हैं.

'अबला जीवन का गणित' नारी जीवन की विषमताओं का स्मरणीय आकलन है. कथाकार आलमशाह खान को हमारा हार्दिक धन्यवाद. मैंने पहली बार स्त्री दुर्दशा का यह वर्णन पढ़ा. उसका कितना समय किन-किन अभावों, दुर्दशाओं और विडंबनाओं को भेंट चढ़ जाता है, पर खुशी होती है जब यशोदा अपने अतीत का स्मरण करके नये निश्चय करके आगे बढ़ जाती है. कहानी में लेखक की भाषा शैली और आंचलिक प्रभाव पाठक पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं.

शीतांशु भारद्वाज कृत कहानी 'इल्म-फरोश' मेरे लिए अनुभव और यथार्थ का आधार प्रदान करती है - अध्यापक जो हूं. जयदत्त जी का त्याग व आदर्शपूर्ण जीवन मात्र इसलिए त्याज्य है घनानंद जी के लिए, क्योंकि उससे उनके परिवार को कोई सुख नहीं मिला. दुर्भाग्यवश मूल्य संकट के इस युग में आदर्श प्रिय एवं सिद्धांतवादी व्यक्ति अल्पसंख्यक बनता जा रहा है. लोकतंत्र के बहुमत वाले सिद्धांत की यह बड़ी विडंबना रही है... इसी आधार पर अभी नैतिक मूल्यों में घोरतम परिवर्तनों की आंधी चलती रहेगी. शरलॉक होम्स शताब्दी खंड और शौर्यगाथा कथाएं भी रोचक और सराहनीय हैं.

अन्य कथाओं में 'मनुष्य जन्म', 'सर्वोच्च शिखर', 'मंत्री जी महान', 'साफ पानी की तलाश' आदि कहानियां भी परिस्थितियों का रोचक विवरण प्रस्तुत करती हैं और सराहनीय आकलन करती हैं.

☐ संतराम वर्मा, नीमगांव (उ.प्र.)

अभी शेष है रांगेय राघव का समुचित मूल्यांकन

श्रीमती सुलोचना राघव से साक्षात्कार पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ. 25 वर्षों के लंबे अंतराल के पश्चात रांगेय राघव पर कुछ पढ़ने को मिला. साधुवाद स्वीकार करें.

हिंदी साहित्य में रांगेय राघव का समुचित मूल्यांकन अभी शेष है. उनके निधन पर धर्मयुग जैसी ख्याति प्राप्त पत्रिका ने मात्र एक पृष्ठ का लेख छापकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली. राजस्थान सरकार ने भी रांगेय राघव की स्मृति को अक्षुण बनाने के लिए कुछ नहीं किया.

रांगेय राघव साहित्य की समस्त पृष्ठभूमि उनके पैतृक निवासगृह वैर (जिला-भरतपुर) के जनजीवन पर आधारित है. बयाना संसदीय क्षेत्र में एक साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था राष्ट्रीय लोक परिषद् सक्रिय है जो प्रति वर्ष 16 जनवरी को रांगेय राघव जयंती आयोजित कर साहित्य के मनीषी साहित्यकारों का सम्मान करती है. इस संस्था द्वारा रांगेय राघव जयंती पर सम्मानित साहित्यकारों में 'पार्वती' महाकाव्य के प्रणेता डा. राधानंद तिवारी 'भारतीनंदन' व राजस्थान के अग्रणी गीतकार श्री बशीर अहमद मयूख शामिल हैं. रांगेय राघव साहित्य पर शोध करवाने व शोधकार्य में निशुल्क सहयोग प्रदान करने हेतु स्व. लेखक के पैतृक गांव में श्री 'डा. रांगेय राघव अध्ययन केंद्र' पिछले पंद्रह वर्षों से सेवारत है. प्राप्त जानकारी के अनुसार रांगेय राघव पर लगभग एक दर्जन से ऊपर अब तक शोध प्रबंध विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्वीकृति हो चुके हैं.

☐ मुरली लाल शर्मा, टालस्टाय मार्ग, नयी दिल्ली

प्राय कथाकारों ने निराश किया

राजस्थान के प्रायः कथाकारों ने निराश किया, लेकिन दो कहानियां इस अंक की उपलब्धि रहीं – 'अबला जीवन का गणित' (आलमशाह खान) और 'बंटवारा' (रंगनाथ राकेश). आलमशाह खान ने तो हमेशा विशिष्ट कहानियां दी हैं. जनजीवन में प्रचलित मुहावरों को कहानी में पिरोने का काम सिर्फ वही कर सकते हैं. 'बंटवारा' छोटी लेकिन सशक्त कहानी है. यह संयुक्त परिवार के टूटन एवं बिखराव की प्रतिनिधि कहानी है. लेखक ने जहां एक ओर 'द्विजत्व' पर चोट की है वहीं उनके संवेदनशील मन की छटपटाहट भी है जो टूटते परिवार के लिए चिंतित है. लेकिन कहानी के अंत को लेखक ने आदर्शवादी बनाने की जबरन कोशिश की है. यह अंत एक दशक पूर्व का सच हो सकता है, आज तो यह और भी बेहया होकर हमारे सामने है और छोटा भाई जैसा चरित्र महसूसने को तैयार नहीं है.

☐ रामदेव सिंह, मधेपुरा (बिहार)

☐ इस बार पुरस्कार योग्य कोई पत्र न होने की वजह से पत्र-पुरस्कार नहीं दिये जा रहे. – सं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

होली, व्यंग्य और पितृपक्ष का कौआ

किताबों का मेला लगा. 10 दिन तक लगा रहा. देश-विदेश के बहुत से लोग देखने आए. कुछ खरीदारी का मन बनाकर भी आए लेकिन अधिकतर भीड़ एक दूसरे से मिलने-जुलने वालों की या मौजमस्ती करने वालों की ही थी जैसा कि हर मेले में होता है. जहां तक किताबों और प्रकाशकों से परिचय का सवाल है, वह तो हुआ लेकिन हिंदी की महंगी किताबों की जगह मध्यप्रदेश की मूर्तियां आनुपातिक ढंग से ज्यादा बिकीं. विशेष रूप से १५५ और १७५ रुपये वाली शालभंजिका और मिथुन मूर्तियां लोग इस तरह से रैप करवा कर ले गये कि देखने वालों को लगे कि ढेर सारी किताबें ले जा रहे हैं. इस घटना से हिंदी जगत की मानसिकता और किताबों के प्रति रुचि-अरुचि का संकेत मिलता है. मूर्तियां खरीदने से उन्हें लगता है कि घर के किसी कोने की शोभा बढ़ेगी और किताबें खरीदने से कोई कोना बेकार ही घिर जायेगा.

दूसरी प्रवृत्ति यह दिखायी दी कि कम कीमत वाली पुस्तकें अधिक बिकीं या उनकी अधिक बुकिंग हुई. उदाहरण के तौर पर हिंदी प्रचारक संस्थान वाराणसी के छोटे से स्टॉल पर रखे भारतेंदु समग्र को देखा जा सकता है. इस रचनावली की जितनी भी प्रतियां वे लोग लाए थे वे सभी बिक गयीं और सैकड़ों की संख्या में लोगों ने एडवांस देकर अपनी प्रतियों की बुकिंग करवायी. बुकिंग तीन रचनावलियों की १०० रुपये मात्र में एक साथ हुई. पहली—भारतेंदु समग्र, दूसरी—बंकिमचंद्र समग्र, तीसरी—देवकी नंदन खत्री समग्र. इसे देखकर लगभग सभी के मन में एक से सवाल उठ रहे थे और हो सकता है प्रकाशकों के मन में भी उठे हों कि जब वाराणसी का एक प्रकाशक १०० रुपये में तीन रचनाकारों की रचनावलियां अच्छे कागज, अच्छी छपाई और अच्छी जिल्द के साथ बिक्री के लिए तैयार कर सकता है तो दिल्ली के प्रकाशक क्यों नहीं कर सकते. क्या राजकमल जैसा प्रकाशक जो रचनावलियां प्रकाशित करने के लिए प्रथम पंक्ति में खड़ा है यह काम नहीं कर सकता. फिर आखिर ऐसे कौन से कारण है जो उसे ऐसा नहीं करने देते हैं या फिर दिल्ली के प्रकाशकों को ऐसा करने से रोके हुए हैं. यदि नीयत साफ हो और पाठकों के साथ सीधे जुड़ने की उत्कट अभिलाषा मन में हो तो प्रकाशक, लेखक और पाठक के बीच सही समीकरण बन सकता है. इस समीकरण को बनाने में किसी न किसी को तो पहल करनी ही पड़ेगी. इस बड़े काम के लिए सामूहिक प्रयास भी किये जाने चाहिए और व्यक्तिगत प्रयास भी. इस संबंध में मेरी कुछ प्रकाशकों से बात हुई. उनमें से सभी ने इस कार्य में रुचि दिखायी लेकिन विशेष रुचि मुझे प्रभात प्रकाशन के मालिक श्री श्यामसुंदर में दिखी. उन्होंने सुलझे हुए ढंग से और रुचिपूर्वक काफी देर तक इस संदर्भ में बात की. इसकी रूपरेखा के कुछ प्रारूपों पर भी बातचीत होती रही.

इस मेले में कुछ परिवार ऐसे भी दिखाई दिए जो अपने बच्चों के साथ आए थे. बेचारे बच्चों को किताबों की इस भीड़ में काफी निराशा हुई. मेले की कल्पना के अनुसार न उन्हें कहीं गुब्बारे नजर आए न पिपनी, न चॉकलेट और न खिलौने ही. ऐसे माँ-बाप अपने बच्चों को लेकर अप्पू घर की तरफ जाते हुए नजर आए. फिर भी कुल मिलाकर मेले का यह दसदिवसीय आयोजन बुरा नहीं रहा. किताबों के साथ बिताए हुए कुछ क्षण भी आदमी के मन पर जाने या अनजाने अपना असर तो छोड़ते ही हैं. देखना यह है कि वह असर कितनी देर तक और किस रूप में उभरता है. यदि ऐसे आयोजन लिखित शब्द के प्रति आदमी के मन में थोड़ी सी भी आस्था पैदा कर सके तो इनका महत्व बढ़ेगा.

अब कुछ बातें 'सारिका' के इस अंक के संबंध में भी करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा. होली पर व्यंग्य विशेषांक निकलने की एक परंपरा-सी बन गयी है. व्यंग्य बेचारे की दशा पितृपक्ष के कौए जैसी कर दी गयी है. जिस तरह कौए को सिर्फ पितृपक्ष में ही याद किया जाता है उसी तरह व्यंग्य को भी सिर्फ होली पर ही याद किया जाता है. यह व्यंग्य के साथ एक अजीब-सा व्यंग्य ही है. जब इस अंक के संबंध में विचार हुआ तो महसूस किया गया कि परंपरा से हटकर कुछ किया जाये और इस संबंध में यह तय किया गया कि व्यंग्य विशेषांक इस बार एक व्यंग्यकार के द्वारा निकलवाया जाए और 'सारिका' ने अनुरोध किया आज के सर्वाधिक चर्चित व्यंग्यकार श्री शरद भाई से. जिस समय शरद भाई से मैंने टेलीफोन पर बात की तो वे पहले तो जोर से हंसे और फिर बोले, ''बड़ी देर की मेहरबां आते-आते. हम तो बहुत देर से लोटा-डोर लिए और पोटली बांधे तैयार बैठे थे कि कब दिल्ली से बुलावा आये और हम चल दें. सो, अब तुम सारी चिंता छोड़ के आराम से सो जाओ.'' बहरहाल शरदजी ने हमारा अनुरोध मान लिया है. इसके लिए हम उनके आभारी हैं और उनके अतिथि संपादन में यह अंक आप सब को समर्पित हैं.

इस अंक के लिए हमें 100 पृष्ठों की व्यवस्था करनी पड़ रही है और इसी कारण बहुत बेबसी में इसकी कीमत आठ रुपये रखी गयी है. इसका अर्थ यह नहीं कि सामान्य पृष्ठ संख्या के अंकों के लिए भी आपको यही कीमत चुकानी पड़े. नियमित अंक आपको 7 - रुपये में ही उपलब्ध कराए जाने की कोशिश रहेगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

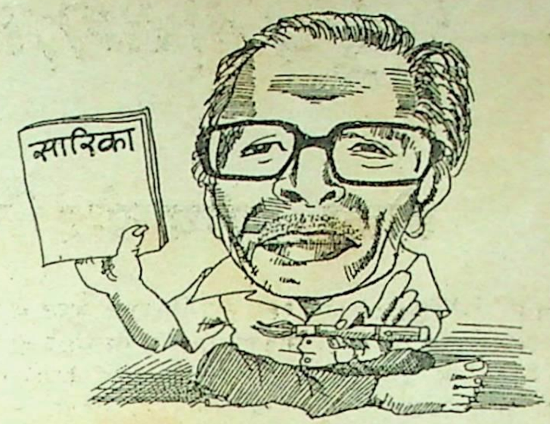

अतिथि रहकर

जनमपत्री में लिखा था कि तुझे चाहे माह भर के लिए सही, 'सारिका' का संपादक होना है. ऐसा योग बरसों पहले भी आया था जब स्वर्गीय मोहन राकेश इस पत्रिका के संपादक हुआ करते थे और बंदा आवारागर्दी करने बंबई पहुंचा था. दो-चार दिन के सतसंग के बाद राकेश ने पाया कि मुझमें सहायक संपादक होने के अनिवार्य तंतु हैं. बात आवेदन से इंटरव्यू और वहां से नियुक्ति होने तक पहुंची. मैं इस कार्यालय का सदस्य लगभग होने ही जा रहा था कि राकेश ने 'सारिका' से त्यागपत्र दे दिया. हमने सोचा जिसकी खातिर नौकरी करने जा रहे हैं जब वही मेरा यार कुर्सी छोड़कर भाग रहा है तो मुझे क्या डाक्टर ने कहा है कि भोपाल छोड़कर बंबई बस. हमने नौकरी जॉइन ही नहीं की. करता भी तो एक माह में निकाल दिया जाता. न की तो भी आज माह भर के लिये संपादक हूं. काम तब भी क्या करता और आज ही क्या कर लिया. जनमपत्री में योग था और जिसे कहते हैं आदमी का बायोडाटा वह ऐसी ही कुछ बातों के कारण रबर की तरह खिचकर लंबा होता है. सो हम इस अंक के संपादक हैं. यह बात सनद रहे और शोक सभा, षष्ठिपूर्ति आदि अवसरों पर कहने लिखने के काम आये कि हम संपादक थे. पंडित विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने जो 'चांद' में विजयानंद दुबे के नाम से चिट्ठी लिखते थे, एक बार किसी अपनी चिट्ठी में केवल एक दिन के लिए संपादक होने के बड़े रोचक और जोरदार अनुभव लिखे थे. उन्हें जितने अनुभव एक दिन में हुए उतने मुझे एक माह में न हुए. क्योंकि उन्होंने जो एक दिन में किया था. उतना काम मैंने एक पूरे माह न किया. इसी कारण एक दिन के सुलतान वाली घटना के बाद यह दूसरी घटना उतनी सनसनीखेज न हो सकी. मैं कुछ उस प्रकार का संपादन करना चाहता था जैसा इसी अंक में आप मार्क ट्वेन की कहानी में देखेंगे. उग्रजी ने एक भाषण में कहा था कि वह भी क्या संपादक हुआ जिसका माह में कम से कम एक बार सिर न टूटे. मैं इस पूरे माह सलामत रहा. मैं संपादक नहीं हूं.

संपादक एक मजेदार जीव होता है. जैसे यदि मैं किसी कथा-पत्रिका का संपादक हूं तो मुझे यह खुशफहमी होना स्वाभाविक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि कौन-सी कहानी श्रेष्ठ है, इसकी सर्वाधिक समझ मुझमें है. एक नगर में लेखकों की समस्या पर आयोजित एक स्थानीय गोष्ठी में मुझे विशेष अतिथि के रूप में बुलाया गया. ध्यान रहे कि विषय था लेखकों की समस्या. पहला स्थानीय लेखक खड़ा हुआ और उसने लेखक के रूप में अपनी समस्या यह प्रस्तुत की कि हम जो कहानी छपने भेजते हैं वह लौट आती है जबकि हम कागज की एक तरफ, पर्याप्त हाशिया छोड़कर लिखते हैं. मैं वहां लेखकों में वरिष्ठ था और मुझसे इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित था कि उसकी रचना क्यों लौट आती है? मैंने पूछा कि क्या आप टिकिट लगा लिफाफा भी साथ भेजते हैं. वह बोला हां, मैं वह भी भेजता हूं. मैंने कहा वह भेजना बंद कर दो, रचना नहीं लौटेगी. इस पर ठहाका तो लगने को लग गया मगर प्रश्न अभी भी वहीं लटका था. रचना लौट क्यों आती है? क्यों प्रायः कविता की वापसी संपादक के कार्यालय से होती है. यही बात कुछ हद तक कहानी और हास्य-व्यंग्य रचना के लिए भी सही है. अब आसपास कोई अवध नारायण मुद्गल तो बैठा नहीं था कि मैं कह देता इससे पूछो. रचना लौटानेका अपराधी यह रहा. इस बार भी यही हआ. मैंने एक उदीयमान किस्म के व्यंग्यकार से कहा कि मैं 'सारिका' के एक अंक का संपादन कर रहा हूं उसमें तुम्हारे खयाल से क्या सामग्री दी जाये तो उसने अपनी रचना देने के अतिरिक्त एक सलाह दी कि आप इस विशेषांक में लेख लिखकर बताइये कि हास्य व्यंग्य की रचना कैसे और किन विषयों पर लिखी जाये कि उसके छपने में दिक्कत न आये. मतलब प्रश्न वहीं लटका है जहां उस दिन उस गोष्ठी में लटका था.

अब चाहे कोई माह भर के लिए संपादक ही क्यों न हो जाये, अपनी कला के गुर यों तो नहीं बताता. अरे जब इतने वर्षों संपादक रहने पर कोई अपनी संपादकी के गुर नहीं बताता तो मैं अतिथि-संपादक होने पर अपने गुर क्यों बताऊं? पर तभी मुझे अपने एक कथाकार मित्र की याद आयी. नाम नहीं लिखूंगा क्योंकि अब वह कथाकार नहीं है पर मित्र फिर भी है. उससे जब हम कहानी पर चर्चा करते थे वह आंकड़े प्रस्तुत करता था जिसे सुन हमेशा लगता था कि इसे तो योजना आयोग में होना चाहिए था. वह कहानी पर अपना बयान यों देता कि आज हिंदीमें कितने दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि हैं जिन्हें अपने उपयोग के लिए वर्ष भर में कुल कितनी कहानियों की आवश्यकता है. इसके अतिरिक्त विशेषांकों की जरूरत और कितनी रह जाती है. इतनी कहानियों की आपूर्ति के लिए यह मानकर कि एक लेखक माह में दो कहानी लिख देगा, इस समय कुल कितने लेखकों की आवश्यकता है. हैं कितने? और कितने चाहिए? उनकी बातें सुन हंसी भी आती थी और सिर पीटने का भी जी करता था. हाय हिंदी कहानी यदि सही जोड़ बाकी टाइप सोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही तो तेरा क्या होगा.

पर हास्य-व्यंग्य इसी आवश्यकता की जोड़बाकी का शिकार होकर रह गया है. मांग है और मांग को भरने वाले हैं. व्यंग्य-हास्य एक खाली जगह की पूर्ति होता जा रहा है. बोलो किसे चाहिए? कितना होना आपको? जी मिल जायेगा. आप इतमीनान रखिये. कल सुबह तक आपके कार्यालय पहुंच जायेगा. एक रचना है जिसे एक सुनिश्चित खाली जगह पर फिट होना है.वह हो जाती है. हिंदी व्यंग्य ने एक जोखिम भरी यात्रा कर जो पाठकों की बड़ी संख्या उत्पन्न कर दी, उसे ठीक वहीं एक हास्य-व्यंग्य पढ़ने को मिल जाता है जहां उसने पहले पढ़ा था. तृप्ति हो न हो, काम जारी है. घूम-घूमकर उन्हीं विषयों पर वही-वही कलमें चलती रहती हैं. मैंने एक प्रतिष्ठित व्यंग्यकार को कहा था कि तुम बार-बार वही बात, वही लतीफे, वही दोहे, वही कोटेशन क्यों देते हो. कभी भूल से हो जाये, संभव है पर तुम एक ही चीज को कितनी बार दोहराते हो. तुम कोई बात नये ढंग से कहने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? वह बड़े गर्व से कहने लगा कि हां, मैं दोहराऊंगा. मैं बार-बार वही बात लिखूंगा. यह मेरी प्रतिबद्धता की पहचान है कि मैं एक ही बात को बार-बार उसी तरह, उसी तर्क के साथ कहूंगा जो मैं अपने पाठकों को पहुंचाना चाहता हूं, मैं उसे आश्चर्य से देख यह समझने की चेष्टा करता रहा कि उसका ऐसा सोचना कहां तक सही है? क्या सुनिश्चित सारोकार का अर्थ मौलिकता का गला घोंटना है? इस तरह बार-बार वही लिखने से व्यंग्य अपने पाठकों से कट नहीं जायेगा?

पर क्या करें? व्यंग्य हास्य का दायरा इतना विशाल और संभावनाएं इतनी अनंत हैं कि इस मामले में हर नाज और अंदाज का पूरा अवसर दे उसे उसके भरोसे छोड़ा जा सकता है. हम किसी भी मामले में किसी अंतिम नतीजे तक क्यों पहुंचे? जब हजारों समस्याएं हैं तो सौ हास्य-व्यंग्य लेखकों के दृष्टिकोण संभव हैं. जब तक यह दुनिया नहीं संवरती, यह लिखा ही जाता रहेगा. व्यंग्य एक पोस्टर की सी छोटी-सी सार्थक जिंदगी जीये या महाकाव्य की तरह बरसों अलमारी में अड़ा रहे हमें तो उसकी दोनों रूप में प्रशंसा इसलिए करनी चाहिए कि वह सक्रिय है. अपनी निरंतरता के कारण व्यंग्य लेखन सक्रिय लेखन का पर्याय हो गया है. कितना लिखा जा रहा है. फिर भी जितनी कड़वी सचाइयां रोजमर्रा अपने आसपास हम देखते हैं उतना लिखा नहीं जाता. कठिन है. मेरे वे मित्र नहीं हैं अन्यथा जोड़बाकी लगाकर बताते कि इस समय देश में कितना पाखंड, कितना भ्रष्टाचार, कितनी अव्यवस्था, कितनी पीड़ाएं हैं और उन्हें उजागर करने और उन घावों पर उंगली रखने के लिए व्यंग्य लिखनेवालों की सख्या कितनी कम है. 'सारिका' का हर अंक व्यंग्य का अंक हो तो भी इस देश का दर्द पूरी तरह जाहिर नहीं हो पायेगा.

ऐसे में कोई संपादन के लिए विशेष अतिथि बनकर आ भी जाये तो क्या कर लेगा. सच बात यह है कि मैंने कुछ नहीं किया. अतिथि कुछ करते हैं. यह भारतीय संस्कृति का तकाज़ा है कि अतिथि से कोई काम न कराया जाये. उसका आदर-सत्कार करो, उसे बैठने को कहो. मैं वही था. संपादन के काम में अतिथि. फटे में टांग. एक निरंतर कबाब में हड्डी. मुझे तो हास्य-व्यंग्य लेखकों के पते भी नहीं मालूम. वह मिल भी जायें तो कब तो मैं उनसे लिखवा लेता और कब वह लिखते. लिखते भी तो मेरे लिए विशेष क्या लिखते. वे जो लिख रहे थे, उसमें से ही एक रचना उन्होंने मुझे दे दी. मैंने उसे मुद्गल को दे दी. मुद्गल ने उसे प्रेस में दे दी. यही होता है ना संपादन. कर दिया. सेवा में प्रस्तुत है. यह आस दिल में रह ही गयी कि एक माह की सल्तनत में मैं अपने व्यक्तित्व के चमड़े का सिक्का चलाता. किसी को उठाता, गिराता. अपने गुट को अग्रेषित करता. अर्थात वह सब करता जो हिंदी में होता है. जो पत्रिकाओं के संपादन में होता है. पर वह सब हो न सका. व्यंग्य पर कोई फतवा न दे सका. गुरु के पद पर बैठा, मगर चेले मजबूत न किये. गुर न समझाया, गुर की बात न कही. जनमपत्री का एक योग पूरा हुआ. एक मासिक का एक माह तक संपादक रहा. फिर हटा दिया गया. स्वागत और बिदाई की दूरी इतनी कम तो शायद ही कभी किसी संपादक के जीवन में रही होगी. मैटर दे देने के बाद अब मैं इसे एक पाठक की तरह पढूंगा जैसा कि मैं इतने वर्षों तक पढ़ता रहा हूं. मेरा इतना ही ठोस योगदान है, मैं कुछ रचनाओं की खोज और कुछ लेखकों के उत्तर की प्रतीक्षा ही करता रहा कि प्रेस में मैटर भेजने का समय आ गया. न भेजता तो संपादक न रहता सो भेजने लगा. उन मित्रों का आभारी हूं जिन्होंनें मेरे आग्रह को आज्ञा कहा और चुस्ती दिखायी. जैसे सुदीप ने. कुछ फौरन अनुवाद करके दिये. मैं सुरेंद्र मोहन मिश्र का भी आभारी हूं जिनके पुरानी सामग्री के खजाने से मैंने कुछ मांगा तो उन्होंने सहर्ष दे दिया. इस सबसे जैसा बन सका, सो पेश है. ले आउट, संपादन, प्रस्तुतीकरण आदि सब सारिका के परिवार ने किया. वे निश्चित ही मुझसे अधिक अनुभवी हैं, यह बात आप भी जानते हैं और मैं भी. विशेष आभार संपादक अवधनारायण मुद्गल का जिसने मुझे अतिथि बनाया और हमेशा मुझे देखते ही चाय लाने का आर्डर दिया.

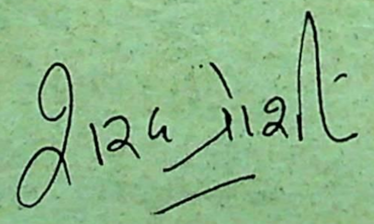

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबखाना

भारतेंदु हरिशचंद्र

'व्यंग्य' को अभिव्यक्ति की अधुनातन विधा बताते हुए इसको सुदीर्घ परंपरा से काटने की कोशिश की जाती रही है...किंतु इतिहास इस बात का प्रमाण है कि हमारे यहां बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही व्यंग्य-लेखन होता रहा है. विपरीत परिस्थितियों में भी हमारे व्यंग्यकार जिस तरह का धारदार लेखन कर रहे थे...उसकी बानगी बतौर यहां प्रस्तुत हैं : 'भारत दुर्दशा' का पांचवां अंक—'किताब खाना', 'शिवशंभु का चिट्ठा', 'गुप्त ठग' और 'दांत', 'हां में हां' और 'कूटनीति का विश्वविद्यालय' तथा 'लंका पर शंका'...इनके रचनाकार हैं क्रमशः भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, मिश्र बंधु और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी.

सात सभ्यों की एक छोटी-सी कमेटी : सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाये, छड़ी लिये : छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय).

सभापति – (खड़े होकर) सभ्यगण, आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है. इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिये कि जिससे हम लोग इस भाव आपत्ति से बचें. जहां तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है. आशा है कि आप सब लोग अपनी-अपनी अनुमति प्रकट करेंगे. (बैठ गये. करतलध्वनि)

बंगाली – (खड़े होकर) सभापति साहब, जो बात बोला सो बहुत ठीक है. इसका पेशतर कि भारतदर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है. किंतु प्रश्न एई है, जे हम लोग उसका दमन करने शासता कि हमारा बोर्ज्जोबल के बाहर का बात है. क्यों नहीं शाकता? अलबत्त शाकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत होगा. (करतलध्वनि) देखो, हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं. ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं. कोई थोड़ा बी बात होता, हम लोग मिल के बड़ा गोल करते. गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता. और कोई तरह नहीं शेनता. और हुआं का अखबारवाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता. किंतु हेंयां, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता. आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए.

प. देशी – (धीरे से) यहीं, मगर जब तक कमेटी में हैं, तभी तक. बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं.

दू. देशी. – (धीरे से) क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे?

एडिटर – (खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारतदर्दैव को हटाने को तैयार हैं. हमने पहले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहां तो कोई सुनता ही नहीं. अब जब सिर पर आफत आयी सो आप लोग उपाय सोचने लगे. भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्दी सोचिये.

कवि – (खड़े होकर) मुहम्मदशाह ने भांड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तर उपाय कहा था. उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाये. जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जाये, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें. जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उंगली चमकाकर कहें, "मुए इधर न आइयो, इधर जनाने हैं." बस सब दुश्मन हट जायेंगे. यही उपाय भारतदर्दैव से बचने को क्यों न किया जाये.

बंगाली – (खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो?

एडि. – (खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनायी जाये. कमेटी की फौज. अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायें. आप लोग क्या कहते हैं?

दू. देशी – मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो?

बंगाली – हाकिम लोग काहे को नाराज होगा. हम लोग शदा चाहता है कि अंगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता.

महा. – परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोगभारतदर्दैवकी सैन्य से मिल तो नहीं जायेंगे.

दू.देशी – इस बात पर बहस करना ठीक नहीं. नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें. अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हां, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय.

महा. – तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना. कपड़ा बीनने की कल मंगानी. हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना. यह भी सब उपाय हैं.

दू.देशी – (धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें.

एडि. – परंतु अब समय थोड़ा है जल्द उपाय सोचना चाहिए.

कवि – अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे.

प.देशी – पर रंग गोरा कहां से लावेंगे?

बंगाली – हमारा देश में 'भारत उद्धार' नामक एक नाटक बना है. उसमें अंगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें. ओ लिखता पांच जन बंगाली मिल के अंगरेजों को निकाल देगा. उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा. दूसराबांस काट-काटके पिवरी नाम जलयंत्र विशेष बनावेगा. तीसरा उस जलयंत्र से अंगरेजों की आंख से धूर और पानी डालेगा.

महा. – नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है. ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्धि हो.

प.देशी – (आप ही आप) हाय. यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो. क्रमशः सब कुछ हो जायेगा.

एडि. – आप लोग नाहक इतना सोचकरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा.

कवि – और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे.

प.देशी – पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूं

(सब डर के चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं)

दू.देशी – (बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहले ही छींक हुई थी. अब क्या करें. (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी का प्रवेश)

सभापति – (आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहां तशरीफ लायी हैं? कुछ हम लोग सरकारके विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं. हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं.

डिसलायलटी – नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे.

बंगाली – (आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है. सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला? व्यर्थ का विभीषिका.

डिस. – हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है. 'कवि वचन सुधा' नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गये? हम लाचार हैं.

दू.देशी – (टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आये थे?

महा. – हाय हाय. यहां के लोग बड़ो भीरू और कापुरुष हैं. इसमें भय की कौन बात है. कानूनी है.

सभा. – तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है?

डिस. – इंगलिश पालिसी नाम ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से.

महा – परंतु तुम?

दू.देशी – (रोकर) हाय हाय! भटवा तुम कहता है अब मरे.

महा – पकड़ नहीं सकती, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं. चलो, हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल-जवाब करेंगे.

बंगाली – हां चलो, ओ का बात – पकड़ने नहीं शेकता.

सभा – (स्वगत) चैयरमेन होने से पहिले हमीं को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते.

डिस. – अच्छा चलो. (सब चलने की चेष्टा करते हैं).

शिवशंभु का चिट्ठा

बालमुकुंद गुप्त

बनाम लार्ड कर्जन

माई लार्ड! लड़कपन में इस बूढ़े भंग को बुलबल का बड़ा चाव था. गांव में कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे. वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशंभु शर्म्मा बुलबलें लड़ाने का चाव नहीं रखता था. केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर ही प्रसन्न होना चाहता था. पर ब्राह्मण कुमार को बुलबुल कैसे मिले? पिता को यह भय कि बालक को बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी. अथवा उसके हाथ से बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा. बहुत अनुरोध से यदि पिता ने किसी मित्र की बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घंटे से अधिक नहीं रहने पाती थी. वह भी पिता की निगरानी में!

सराय के भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे. गांव के लड़के उनसे दो-दो तीन-तीन पैसे में खरीद लाते थे. पर बालक शिवशंभु तो ऐसा नहीं कर सकता था. पिता की आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे? उधर मन में अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथ पर हो. इसी से जंगल में उड़ती बुलबुल को देखकर जी फड़क उठता था. बुलबुल की बोली सुनकर आनंद से हृदय नृत्य करने लगता था. कैसी-कैसी कल्पनाएं हृदय से उठती थीं. उन सब बातों का अनुभव दूसरों को नहीं हो सकता. दूसरों को क्या होगा? आज यह वही शिवशंभु है, स्वयं इसी को उस बालकाल के अनिर्वचनीय चाव और आनंद का अनुभव नहीं हो सकता.

बुलबुल पकड़ने की नाना प्रकार की कल्पनाएं मन ही मन में करता हुआ बालक शिवशंभु सो गया. उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है. सारे गांव में बुलबुलें उड़ रही हैं. अपने घर के सामने खेलने का जो मैदान है, उसमें सैकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं. फिर वह सब ऊंची नहीं उड़ती. बहुत नीची-नीची उड़ती हैं. उनके बैठने के अड्डे भी नीचे-नीचे हैं. वह कभी उड़कर इधर जाती है और कभी उधर, कभी यहां बैठती है और कभी वहां, कभी स्वयं उड़कर बालक शिवशंभु के हाथ की उंगलियों पर आ बैठती हैं. शिवशंभु आनन्द में मस्त होकर इधर-उधर दौड़ रहा है. उसके दो तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर-उधर कूदते-फिरते हैं.

आज शिवशंभु की मनोवांछा पूर्ण हुई. आज उसे बुलबुलों की कमी नहीं है. आज उसके खेलने का मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है. आज शिवशंभु बुलबुलों का राजा ही नहीं, महाराजा है. आनंद का सिलसिला यहीं नहीं टूट गया. शिवशंभु ने देखा कि सामने एक सुंदर बाग है. वहीं से सब बुलबुलें उड़कर आती हैं. बालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुंचा। देखा, सोने के पेड़ पत्ते और सोने ही के नाना रंग के फूल हैं. उन पर सोने की बुलबुलें बैठी गाती हैं और उड़ती फिरती हैं. वहीं एक सोने का महल है. उस पर सैकड़ों सुनहरी कलश हैं. उन पर भी बुलबुलें बैठी हैं. बालक दो-तीन साथियों सहित महल पर चढ़ गया. उस समय वह सोने का बगीचा सोने के महल और बुलबुलों सहित एक बार उड़ा. सब कुछ आनंद से उड़ता था, बालक शिवशंभु भी दूसरे बालकों सहित उड़ रहा था. पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ. बुलबुलों का खयाल अब बालक के मस्तिष्क से हटने लगा. उसने सोचा! मैं कहां उड़ा जाता हूं? माता-पिता कहां? मेरा घर कहां? इस विचार के आते ही सुख-स्वप्न भंग हुआ. बालक कुलबुलाकर उठ बैठा. देखा और कुछ नहीं, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है. मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लार्ड! जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया? एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारिये. आपकी भारत में स्थिति की अवधि के पांच वर्ष पूरे हो गये. अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका. हिसाब कीजिये, नुमायशी कामों के सिवा काम की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कौन सी कर, चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्य की ओर आपका इस देश में आकर कब ध्यान रहा है? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्त्तव्य काल की अन्तिम वक्तृत्ता थी. जरा उसे पढ़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पांच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है? आप बार-बार अपने दो अति तुम-तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं. एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार. पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी'? विक्टोरिया मेमोरियल हाल चंद पेट भरे अमीरों के एक-दो बार देख आने की चीज होगा. उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे.

अब दरबार की बात सुनिये कि क्या था? आपके खयाल से वह बहुत बड़ी चीज था. पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ न था. जहां-जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गये. जिस हाथी पर आप सुनहरी झूलें और सोने का हौदा लगवाकर छत्र-धारण-पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया. आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं. दरबार में जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भारत के सब राजा महाराजाओं की गुलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भलीभांति जानते हैं कि वह आपका न था. वह भी जहां से आया था वहीं चला गया. यह सब चीजें खाली नुमायशी थीं. भारतवर्ष में वह पहले ही से मौजूद थीं. क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रगट हुआ? लोग विक्रम को याद करते हैं या उसके सिंहासन को, अकबर को या उसके तख्त को? शाहजहां की इज्जत उसके गुणों से थी या तखुताताऊस से? आप जैसे बुद्धिमान पुरुष के लिए यह सब बातें विचारने की हैं.

चीज वह बनना चाहिए जिसका कुछ देर कयाम हो. माता-पिता की याद आते ही बालक शिवशंभु का सुखस्वप्न भंग हो गया. दरबार समाप्त होते ही वह दरबार भवन, वह एंफीथियेटर तोड़कर रख देने की वस्तु हो गया. उधर बनाना, इधर उखड़ना पड़ा! नुमायशी चीजों का यही परिणाम है. उनका तितलियों का सा जीवन होता है. माई लार्ड! आपने कछाड़ के चायवाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य हैं और हम लोग कुछ दिन के लिए. आपके वह 'कुछ दिन' बीत गये. अवधि पूरी हो गयी. अब यदि कुछ दिन और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये. उन्हीं की आशा पर शिवशंभु शर्म्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन मांगे दिनों में तो एक बार आपको अपने कर्त्तव्य का खयाल हो.

जिस पद पर आप आरूढ़ हुए, वह आपका मौरुसी नहीं—नदी-नाव संयोग की भांति है. आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़ने के बाद आपका इससे कुछ संबंध रहे. किंतु जितने दिन आपके हाथ में शक्ति है, उतने दिन कुछ करने की शक्ति भी है. जोकुछ आपने दिल्ली आदि में कर दिखाया उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखाने की शक्ति आप में थी. उसी प्रकार जाने से पहले, इस देश के लिए कोई असली काम कर जाने की शक्ति आप में है. इस देश की प्रजा के हृदय में कोई स्मृति-मंदिर बना जाने की शक्ति आप में है. पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृति की कुछ कदर आपके हृदय में भी हो. स्मरण रहे धातु की मूर्तियों के स्मृति-चिह्न से एक दिन क़िले का मैदान भर जायेगा. महारानी का स्मृति-मंदिर मैदान की हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरों की मूर्तियां इतनी ही जावेंगी कि पचास-पचास हाथ पर हवा को टकरा कर चलना पड़ेगा. जिस देश में लार्ड लैंसडोन की मूर्ति बन सकती है, उसमें औ. किस-किस की मूर्ति नहीं बन सकती? माई लार्ड! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस-पास आपकी एक वैसी ही मूर्ति खड़ी हो?

यह मूर्तियां किस प्रकार के स्मृति-चिह्न हैं? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती. एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियोंके कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है. माई लार्ड! आपकी मूर्ति की वहां क्या शोभा होगी? आइये मूर्तियां दिखावें! वह देखिये एक मूर्ति है, जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है. पहचानिये, इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा. यह लार्ड रिपन की मूर्ति है. और देखिये एक स्मृति-मंदिर, यह आपके पचास लाख के संगमर्मर वाले से अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है. यह स्वर्गीय विक्टोरिया महारानी का सन् 1858 ई. का घोषणा-पत्र है. आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है. यदि इन दो यादगारों की आपके जी में कुछ इज्जत हो.

मतलब समाप्त हो गया. जो लिखना था, वह लिखा गया. अब खुलासा बात यह है कि एक बार 'शो' और 'ड्यूटी' का मुकाबिला कीजिये. 'शो' ही समझिये. 'शो' ड्यूटी नहीं है! माई लार्ड! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी शिवशंभु शर्मा के सिर में बालकपन के उस सुखस्वप्न की है.

(भारत मित्र—सन् 1903)

गुप्त ठग

पं. प्रतापनारायण मिश्र

कपड़ा-लत्ता, चेहरा-मुहरा देखो तो भले मानसों का सा. बातें सुनो तो साक्षात् युधिष्ठिर जी का अवतार. 'झूठ बोलना और...और...खाना बराबर है' यह जिनके तकिया कलाम हैं, 'रामौराम पर', 'धर्मोधरम पर', 'जनेऊ कसम', 'राम धै', 'परमेसुर जानै', 'जो तुम्हारे ईमान में आवै', 'अरे भैया रुपया पैसा हाथ का मैल है, धरम नहीं तो कुछ भी नहीं'— दिन भर यही बातें बात-चीत पर निकलेंगी. गंगाजी के दर्शन दोनों पहर करैंगे, मंदिर में घंटों घंटा हिलावैंगे, कथा में बैठे तो श्लोक पर आंसू चले आते हैं. कोई जाने धरती के खंभ, धर्म का पुतला, प्रेम का रूप, जो हैं सो बस आप ही हैं. पर कौड़ी-कौड़ी के लिए सब सतलुज वाली बातें विलैमान हो जाती हैं. दूकान पर आये नहीं कि 'या महादेव बाबा, भेज तो कोई भोला भाला आंख का अंधा गांठ का पूरा'. अ ह ह ह ह बलिहारी. बगुला भगत, बलिहारी! ध्यान करते देखो सो तो जाने कि ब्रह्म से तन्मय हो रहे हैं पर मछली निकली की गप. जानते होंगे कि कोई जानता नहीं, यह नहीं समझते 'पापु अंटारी चढ़ि के गोहरावत है!' भला यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों से भी कुछ छिपती है! यार, बुरा मानो चाहे भला पर कहेंगें वही जो तुम्हारे और सबके हित की हो. जब तक आचरण न सुधरेंगे तब तक यह सब भगतई और भलमंसी कौड़ी काम की नहीं है. अपने मुंह चाहो जो बने रहो जानि परी जब जइहो कचहरी. "फककड़ भाई, यह किस पर फब्तियां हो रही हैं? दो-एक थोड़ी हैं, हम कहते जायें तुम गिन चलो. पहिले चलो नाज की मंडी. बैपारी रात तो जानते हैं भाई, अच्छी सोने की चिड़िया हाथ लगी है, रुपया उधार दिया है जो मांगते तक नहीं, आओ तो कुछ नजर करैं, जावो तो कुछ भेंट धरैं, जब तक रहो आंखों पर रक्खैं, बात-बात पर कहैं कि 'हमार तुम्हार घर का बास्ता है." यह नहीं समझते कि 'बनिया का बेटा कुछ तो समझकर फिसल पड़ा.' भला रुपये की आढ़त पर यह धम-धम कैसे सहे जा सकते हैं, वहां कनवां बुधिया-मासा चलता है. ब्योपारी से कहा बीस सेर बिका और ग्राहक से इशारा किया 'कनवां', बस 'खग जानै खग ही की भाषा.' बिचारा गंवार ब्योपारी क्या जाने कि इस गूढ मंत्र का यह अर्थ है कि छटांक रुपया तो अढ़तियाजी के बाप का हो गया. जहां कहा 'मासा' बस पौवा रुपया अलग ही अलग चित्त हुआ. यह तो ब्योपारी का माल बेचने का हतखंडा है. जब अपना माल बेचेंगे तब बानगी और दिखाई तुलाय और दिया. 'गुरु, यह तो विश्वासघात है!!' अबे चुप! बनियाई के पेंच हैं उल्लू, कहीं तुलसी सोनां डालै रोजगार होते हैं."

अब घी वाले की दूकान पर देखो चलैं. गाहक के दिखाने को भंडिया पर ताजा अरंड का पत्ता बंधा हुआ है, मानौ अभी दिहात से आया है. जहां खोल के देखा, घी क्या है, घी का बाबा है, आंच दिखाते ही जानोगे. 'गुरु यह पहेली-सी क्या कहि गये, घी का बाबा तो मट्ठे को कहते हैं क्योंकि मट्ठे से मक्खन और मक्खनी से घी होता है.' अबे ऐसा नहीं कहते, देख तो कैसा घी धरा है. सच है, दानेदार नहीं बरुक दाने का जीव और घी का जीव एक हो गया है, तभी तो रंगत तक नहीं बदली. खासा भैंस का सा घी बना है. भैंस का न सही यह लेब गाय का घी है. इसमें भी गुल्लू का तेल मिला होगा. हाय! इन रतन में जतन करनेवालों की दशा होगी नारायण, चलो-चलो, ऐसा घी खाये बिना क्या डूबा जाता है! दूध खाया करेंगे. दूधवाले ही कौन दूध के धोये बैठे हैं, वहां भी 'सेरुक दूध अढ़ैयक पानी. धम्मक-धम्मक होय मथानी.' की धैना है. उन्हें कुछ कम समझे हो, वह भी बकरी भेड़ी का दूध मिला-मिला के एक-एक के दो-दो करते हैं. तभी तो की दूध का गुन जाता रहा. हाय. इन ठगों की खबर सर्कार क्यों नहीं लेती कि अभी दूध का दूध पानी का पानी हो जाये. सर्कार को क्या पड़ी है कि छोटी बातों में अपना समय खोवै, सर्कार को अपने लाइसेंस टैक्स से काम है कि तुम्हारे धंधों से? फिर क्या ग्राहक लोग नहीं जानते कि राक्षसों के मारे गाय भैंस तो बचने ही नहीं पातीं, घी-दूध आवै कहां से! ऐसी ही शरीर रक्षा करनी हो तो हिंदू भाई यदि अधिक न हो सके तो एक गाय पाल ही लें, जिसमें शरीर रक्षा, स्वादिष्ट भोजन और धर्म तीनों मिलें. सर्कार से किस-किस बात की शिकायत करते फिरोगे? यहां तो यह कहावत हो गयी हक 'पेशे में सभी चोरी करते हैं.' हलवाहे की दूकान पर जाओ सब चीज ताजी घी की बनी तैयार हैं, पर खाते ही जानोगे. जो तीन ही दिन की हो तहां तक ही कुशल समझो. सेर भर घी में पाव भर तेल मिला हो तो तब तक तो जानो बड़े ईमानदार का सौदा है, नहीं तो शुद्ध एक बर्धा 'तेल गले मढ़ैगा.' अत्तार के यहां बरषों की सड़ी दवाएं, सुंदर ऊंख का शहद, खालिस शिरे का शर्बत और गंगाजी का अरक तो एक साधारण बात है. संबत् 1936 में बीमारी बहुत फैली थी, तब बहुतेरे महापुरुषों ने लसोरे की गुठली पर अमरस चिपकाय के आलुबुखारे बनाये थे और बड़ी कठिनाई से पैसा के तीन-तीन देते थे क्यों न देश का देश निर्जीव हो जाये? रोगी राम कहते हैं, हकीमजी की दवा से फायदा नहीं होता. फायदा कहां से हो, दवा तो यार ही लोगों के यहां से आवैगी. हाय! यह भी तो नहीं हो सकता कि सब काम अपने हाथ ही से किये जायें. संसार में कोई किसी का विश्वास न करे तो भी काम नहीं चल सकता. पर विश्वास कीजिये किसका, यहां तो वही लेखा है कि 'हुशियार यारे जानी यह दश्त है ठगों का. यां टुक निगाह चूकी और माल दोस्तों का. 'सबको ठग बनाते हो? ऐसा न हो कि कोई बिगड़ जाये.' अरे भाई ऐसे डरने लगते तो यह काम ही क्यों मुड़ियाते? यहां तो खरी कहना माथे के अक्षर ठहरे. कुछ हो हमसे तो बिना कहे नहीं रहा जाता कि अपने मन के धन के लिए ऐसे अनर्थ करना कि दूसरों की तंदुरुस्ती (स्वास्थ्य) में भी बाधा लगै, केवल लोभी का नहीं बरंच महा अधम का काम है. इसमें परलोक ही अकेला नहीं बिगड़ता, दुनिया में भी साख जाती है. अन्य देशी लोग बेईमान बनते हैं. रोजगार जैसा सावधानी और ईमानदारी से चलता है, वैसा इन अंधेरों से सपने में न चल सकेगा. हमेशा तीन खाओगे तेरह की भूख बनी रहेगी. विश्वास न हो तो जैसे अपनी रीति पर अब तक चले हो वैसे ही जी कड़ा करके कुछ दिन भर हमारी बूटी का भी सेवन करो तो देखो कैसा मजा होता है, कैसे-कैसे लाभ उठाते हो. हम ब्राह्मण हैं. हित की कहते हैं. हमारी मानोगे तो धरम मूरत धरमा औतार हो जाओगे नहीं तो कोई अंगरेज सुन पावेगा तो 'डेम फूल' बना के मनवावैगा. वह मानता और तरह का होगा, बस आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने.

(ब्राम्हण-खंड 1, संख्या 4)

दांत

इस दो अक्षर के शब्द तथा इन थोड़ी-सी हड्डियों में भी उस चतुर कारीगर ने वह कौशल दिखलाया है कि किसके मुंह में दांत हैं जो पूरा-पूरा वर्णन कर सके. मुख की सारी शोभा और यावत भोज्य पदार्थों का स्वाद इन्हीं पर निर्भर है. कवियों ने अलक (जुल्फ), भ्रू (भौं) तथा बरुणी आदि की छवि लिखने में बहुत-बहुत रीति से बाल की खाल निकाली है, पर सच पूछिए तो इन्हीं की शोभा से सबकी शोभा है. जब दांतों के बिना पुपला-सा मुंह निकल आता है और चिबुक (ठोढ़ी) एवं नासिका एक में मिल जाती है, उस समय सारी सुघराई मट्टी में मिल जाती है. नैनबाण की तीक्ष्णता, भ्रूचाप की खिचावट और अलकपन्नगी का बिष कुछ भी नहीं रहता. कवियों ने इसकी उपमा हीरा, मोती, माणिक से दी है वह बहुत ठीक है बरंच यह अबयव कथित बस्तुओं से भी अधिक मोल के हैं. यह वह अंग है जिसमें पाकशास्त्र के छहों रस एवं काव्यशास्त्र के नवों रस का आधार है. खाने का मजा इन्हीं से है. इस बात का अनुभव यदि आपको न हो तो किसी बुड्ढे से पूछ देखिए, सिवाय सतुआ को चाटने के और रोटी को दूध में तथा दाल में भिगों के गले के नीचे उत्तार देने के दुनिया भर की चीजों के लिए तरस ही के रह जाता होगा. रहे कविता के नौ रस, सो उनका दिग्दर्शन मात्र हमसे सुन लीजिए. 1. श्रृंगार का तो कहना ही क्या है. ऐसा कवि शायद कोई ही हो जिसने सुंदरियों की दंतावली तथा उनके गोरे गदगुदे गोल कपोल पर रदछद (दंतदाग) के वर्णन में अपने कलम की कारीगरी न दिखाई हो. आहा हा! मिस्सी तथा पान रंग रंगे अथवा यों ही चमकदार चटकीले दांत जिस समय बातें करने तथा हंसने में दृष्टि आते हैं, उस समय रसिकों के नयन और मन इतने प्रमुदित हो जाते हैं कि जिनका वर्णन गूंगे की मिठाई है. 2. हास्य रस का तो पूर्ण रूप ही नहीं जमता जब तक हंसते-हंसते दांत न निकल पड़ें. (पर देखना कहीं मक्खी लात मार न जाये). 3. करुणा और 4. रौद्र रस में दुःख तथा क्रोध के मारे दांत अपने होंठ चबने के काम आते हैं. एवं अपनी दीनता दिखा के दूसरे को करुणा उपजाने में दांत दिखाये जाते हैं. दिस में भी दांत पीसे जाते हैं. 5. सब प्रकार के बीर रस में भी सावधानी से शत्रु की सैन्य अथवा दुखियों के दैन्य अथवा सत्कीर्ति की चाट पर दांत लगा रहता है. 6. भयानक रस के लिए सिंह व्याघ्रादि के दांतों का ध्यान कर लीजिए, पर रात को नहीं, नहीं तो सोते से चौंक भागोगे. 7. बीभत्स रस का प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो किसी जैनियों के जैनी महाराज के दांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख लीजिए छोटी-सी स्तुति यह है कि मैल के मारे पैसा चपक जाता है. 8. अद्भुत रस में तो सभी आश्चर्य की बात देख सुन के दांत बाय, मुंह फैलाय के हक्का बक्का रह जाते हैं. 9. शांत रस के उत्पादनार्थ श्री शंकराचार्य स्वामी का यह पद महामंत्र है— 'अंग गलितं पलित मुंडं दशनविहीनं जातं तुंडम्. कर धृत कंपित शोभित दंडं तदपि न मुंचत्याशापिंडम्. भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढ़मते.' सच है जब किसी काम के न रहे तब पूछे कौन बांध भूसा देइ. जिस समय मृत्यु की दाढ़ के बीच बैठे हैं, जल के कछुवे, मछली, स्थल के कौवा, कुत्ता आदि दांत पैने कर रहे हैं, उस समय में भी यदि मत चित्त से भगवान का भजन न किया तो क्या किया? आपकी हड्डियां हाथी के दांत तो हई नहीं कि मरने पर भी किसी के काम आवैंगी. जीते जी संसार में कुछ परमार्थ बना दीजिए, यही बुद्धिमानी है. देखिए, आपके दांत ही यह शिक्षा दे रहे हैं कि जब तक हम अपने स्थान, अपनी जाति (दंतावली) और अपने काम में दृढ़ हैं, तभी तक हमारी प्रतिष्ठा है. यहां तक कि बड़े-बड़े कवि हमारी प्रशंसा करते हैं, बड़े-बड़े सुंदर मुखारविंदों पर हमारी मोहर 'छाप' रहती है. पर मुख से बाहर होते ही हम एक अपावन, घृणित और फेंकने योग्य हड्डी हो जाते हैं— 'मुख में मानिक सम दशन बाहर निकसत हाड़' हम नहीं जानते कि नित्य यह देख के भी आप अपने मुख्य देश भारत और अपने मुख्य सजातीय हिंदू मुसलमानों का साथ तन, मन, धन और प्रानपन से क्यों नहीं देते. याद रखिए, 'स्थान भ्रष्टा न शोभंते दंता केशा नखा नराः.' हां, यदि आप इसका यह अर्थ समझें कि सभी समझें कि कभी किसी दशा में हिंदुस्तान छोड़ के विलायत जाना स्थान-भ्रस्टता है तो यह आप की भूल है. हंसने के समय मुंह से दांतों का निकल पड़ना नहीं कहलाता बरंच एक प्रकार की शोभा होती है. ऐसे ही आप स्वदेशचिंता के लिए कुछ काल देशांतर में रह आयें तो आप की बड़ाई है. पर हां, यदि वहां जा के यहां की ममता ही छोड़ दीजिए तो आपका जीवन उन दांतों के समान हैं जो होंठ या गाल कट जाने के अथवा किसी कारणविशेष से मुंह के बाहर रह जाते हैं और सारी शोभा खो के भेड़िए के से दांत दिखाई देते हैं. क्यों नहीं, गाल और होंठ दातों का परदा है, जिसके परदा न रहा अर्थात् स्वजातित्व की गैरतदारी न रही, उसकी निरलज्ज जिंदगी व्यर्थ है. कभी आप को दाढ़ की पीड़ा हुई होगी तो अवश्य यह जी चाहा होगा कि इसे उखड़वा डालें तो अच्छा है. ऐसे ही हम उन स्वार्थ के अंधों के हक में मानते हैं जो रहें हमारे साथ, बनें हमारे ही देशभाई पर सदा हमारे देश, जाति के अहित ही में तत्पर रहते हैं. परमेश्वर उन्हें या तो सुमति दे या सत्यानाश करे. उनके होने का हमें कौन सुख है हम तो उनकी जैजैकार बनावेंगे जो अपने देशवासियों दांतकाटी रोटी का बर्ताव (सच्ची गहरी प्रीति) रखते हैं. परमात्मा करे कि हर हिंदू मुसलमान का देशहित के लिए चाव के साथ दांतों पसीना रहे. हमसे बहुत कुछ नहीं हो सकता तो यही सिद्धांत दात रक्खा है कि— 'कायर कपूत कहाय, हात दिखाय भारत तम हरौ.' कोई हमारे लेख देख दांतों तले उंगली दबा के सूझ-बूझ की तारीफ करे अथवा दांत बाय के रह जाये या अरसिकतावश यह कह दे कि कहां की दांताकिलकिल लगायी है तो इन बातों की हमें परवा नहीं है. हमारा दांत जिस ओर लगा है वह लगा रहेगा. औरों की दंतकटाकर से हमको क्या. यदि दांतों के संबंध का वर्णन किया चाहें तो बड़े-बड़े ग्रंथ रंग डालें और पूरा न पड़े. आदिदेव श्री एकदंत गणेशजी को प्रणाम करके श्रीपुष्पदंताचार्य के महिम्न में जिनकी स्तुति की है, उन शिवजी की महिमा, दंतवक्त्र शिशुपालादि के संहारक श्री कृष्ण की लीला ही गा चलें तो कोटि जन्म पार न पावें. नाली में गिरी हुई कौड़ी को दांत से उठाने वाले मक्खीचूसों की जो किया चाहें तो भी लिखते-लिखते थक जाएं. हाथीदांत से क्या-क्या वस्तु बन सकती है? कलों के पहियों में कितने दांत होते हैं, और क्या-क्या काम देते हैं, वैद्यक और धर्मशास्त्र में दंतधावन की क्या विधि है, क्या फल है, क्या निषेध है, क्या हानि है, पद्धतिकासों ने 'दीर्घदंता क्वचिन्मूर्खा' आदि क्यों लिखा, किस-किस जानवर के दांत किस-किस प्रयोजन से किस-किस रूप गुण से विशिष्ट बनाये गये हैं? मनुष्यों के दांत उजले, पीले, नीले, छोटे, मोटे, लंबे, चौड़े, घने, खुड़हे के रीति के होते हैं, इत्यादि अनेक बातें हैं जिनका विचार करने में बड़ा विस्तार चाहिए. बरंच यह भी कहना ठीक है कि यह बड़ी-बड़ी विषय लोहे के चने हैं, हर किसी के दांतों फूटने के नहीं. तिस पर भी अकेला आदमी क्या-क्या लिखे? अतः हम इस दंतकथा को केवल इतने उपदेश पर समाज करते हैं कि आज हमारे देश के दिन गिरे हैं, अतः हमें योग्य हैं कि जैसे बत्तिस दांतों के बीच जीभ रहती है वैसे रहें, और अपने देश की भलाई के लिए किसी के आगे दांतों में तिनका दबाने तक में लज्जित न हों, तथा यह भी ध्यान रक्खें कि हर दुनियादार की बातें विश्वास योग्य नहीं है. हाथी के दांत खाने के और होते हैं, दिखाने के और.

(ब्राम्हण-खंड 5 संख्या 9)

'हां में हां'

मिश्र बंधु

शिवप्रसन्न — कहो भाई मजबूत सिंह! कहां से कुछ अनमने से आ रहे हो?

मजबूतसिंह — अरे मुझसे न बोलो, नहीं तो मैं रो ही दूंगा.

शिवप्रसन्न — सच कहा भाई, जब चित्त प्रसन्न नहीं होता, तब मित्रों से भी बातचीत भारू हो जाती है. ऐसे में रो ही देने की इच्छा बलवती होती है. क्यों न ऐसा कहो, मामला ही कुछ इसी प्रकार का होगा. ऐसी बात पूछकर दुःख न देना ही ठीक है.

मजबूतसिंह — वाह भाई वाह! आप तो बड़ी ही कृपा करते हैं. आपसे मन की बात न कहूंगा तो किससे कहूंगा!

शिवप्रसन्न — क्यों नहीं, मन का हाल प्रेम-पूर्वक सुननेवालों से कहने से चित हलका होता है. सो कहना ही ठीक है. हां, कहिए क्या बात है?

मजबूतसिंह — अच्छा, तो आदि से ही कथा सुनाता हूं.

शिवप्रसन्न — ठीक ही है, बिना आद्यंत सुने बात भी तो समझ में नहीं आती. आदि से ही चलिए. हां, तो कैसी गुजरी?

मजबूतसिंह — अच्छा सुनिए. मेरे मकान के सामने, आप जानते ही हैं, थोड़ी-सी जमीन पड़ी है. मैंने अब की साल उसे जोत-जताकर उसमें बैंगन बो दिये.

शिवप्रसन्न — वाह भाई वाह, खूब किया. घर के सामने जमीन रखने से उसकी रौनक होती है. फिर जोतने बोने से कुछ लाभ ही हो रहा है. अच्छा ही किया, जो उसे जोत-बो डाला. फिर बोया भी बैंगन, जो ऐसा सुंदर फल है कि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने अपना रंग तक उसे दे डाला है. क्यों न हो, ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा न करेगा, तो कौन करेगा? खूब किया जो बैंगन बोये.

मजबूत सिंह — फिर उसमें खूब फल लगे.

शिवप्रसन्न — लगते क्यों न? जब आपने मेहनत की, तो फल लगने ही थे. अच्छा ही हुआ.

मजबूतसिंह — तब मैंने 16 बैंगन इसी झवई में भरकर उन्हें बेचना चाहा. इसलिए सिर पर लादकर उन्हें बाजार में ले गया.

शिवप्रसन्न — क्यों न हो! अच्छा ही किया. आखिर फायदे के लिए तो मेहनत की जाती है. जो बाजार न ले जाते, तो मतलब कैसे बनता? काम-काज के मामले में यह थोड़े ही सोचा जाता है कि सिर पर झोवा न धरें. अच्छा ही किया, जो अपने ही सिर पर झोवा रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजार ले गये. दूसरे के हाथ भेजते, तो शायद आधापर्धा फायदा वही उड़ा ले जाता. खूब किया!

मजबूतसिंह – बाजार में जाने से तहसील का चपरासी आ गया, और चुंगी में आठ बैंगन मुझ से मांगने लगा.

शिवप्रसन्न – क्यों न मांगता, आखिर उसका और काम ही क्या?

मजबूतसिंह – देखा भाई क्या गजब की बात थी 16 बैंगनों में 8 चुंगी में मांगता था.

शिवप्रसन्न – सच ही तो है. आजकल अंधेर खाता तो मचा ही हुआ है. जरूर गजब की बात है. जब आधा माल चुंगी में दे दें, तो आसामी बेचारा बच्चे कहां से पाले?

मजबूतसिंह – मुझे भाई बड़ा गुस्सा लगा.

शिवप्रसन्न – गुस्सा तो लगना ही चाहिए था. जब अपने हाथ से मेहनत करके और दरवाजे की शोभा बिगाड़कर बैंगन पैदा किये थे तो उसके लिए थोड़े ही किये थे.

मजबूतसिंह – मुझे गुस्से में देखकर पाजी गालियां देने लगा.

शिवप्रसन्न – गाली क्यों न देता, आखिर सरकारी आदमी ठहरा. हम जैसों को डाटे न रहे, तो सरकारी इंतजाम कैसे चले?

मजबूतसिंह – भई, फिर मुझ से न रहा गया, और मैं भी गालियां देने लगा.

शिवप्रसन्न – हां, देते क्यों न, एक तो सिर पर झोवा रखकर बैंगन बेचने बाजार गये. भला इसी में क्या कम बेहुरमती थी? फिर जब एक मामूली सिपाही गाली दे बैठे, तो हम लोगों से भी कैसे रहा जाये? ठीक ही किया, जो उसका मिजाज ठिकाने कर दिया.

मजबूतसिंह – मेरे गाली देने पर वह मुझे मारने लगा.

शिवप्रसन्न – मारता क्यों न, आखिर वह तो सरकारी आदमी था ही, भला उसे जज्बा कैसे न आता? उसने भी ठीक ही किया. यदि तुम्हारी गाली सुन लेता. तो और लोग भी गालियां देने लगते. फिर सरकारी रौब ही क्या रहता? गुस्सा जब्त करना सरकारी लोगों का थोड़े ही काम है.

मजबूतसिंह – फिर मैंने उसे खूब मारा.

शिवप्रसन्न – अच्छा किया. जब तुम्हारे ही बैंगन जबरदस्ती ही छीने लेता था, और हाथ तक चला बैठा, तब बिना मारे भला कैसे छोड़ते? आखिर तुमने भी तो अपनी मां का दूध पिया है.

मजबूतसिंह – फिर आठ बैंगन चुंगी में ले ही गया.

शिवप्रसन्न – ले क्यों न जाता? जो ऐसे ऐसों से हार मानकर भाग खड़ा होता! तो कल उसकी नौकरी भी तो जाती रहती. उसने भी अच्छा ही किया.

मजबूतसिंह – अरे भाई क्या कह रहे हो? एक तो मुझी को मारा ज्यादा और दूसरे मेरे ही

बैंगन ले लिये.

शिवप्रसन्न – यह तो ठीक ही किया. आजकल का जमाना ही ऐसा है. 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' है. ऐसा न होता, ताज्जुब होता.

मजबूतसिंह – फिर मैंने गुस्से में आकर बाकी आठों भी नाली में फेंक दिये.

शिवप्रसन्न – ठीक ही किया, जब आधे बैंगन के बैंगन गये और कुटे ऊपर से तब फेंकने को तो मन ही चाहेगा. और करते ही क्या? नुकसान तो हो ही चुका था, फिर अच्छी तरह सही. जहां सत्यानास, वहां साढ़े सत्यानास! जी तो ठडा हो गया होगा.

मजबूतसिंह – इसी से भाई रोनी सूरत लिए घर जा रहा हूं, अब पछताता हूं.

शिवप्रसन्न – क्यों न पछताओगे, गुस्सा बड़ा हराम होता है. उससे नुकसान तो लोटपोट के अपना ही होता है. बैंगन के बैंगन गये और कुटे ऊपर से. तुम न सोचोगे, तुम न सोचोगे तो क्या मैं सोचूंगा.

मजबूत सिंह – भाई बैंगन कुछ होता नहीं है.

शिवप्रसन्न – अरे सच तो कहा, कुछ भी नहीं होता. इसी से तो भगवान ने उसके मुंह में लकड़ी खोंस दी है. खाने में कड़आ. टुकड़े कलिया के से टुकड़े दिखते हैं. रसादार बैंगन देखकर घिन लगती है. भाई, कुछ भी तो नहीं होता. खाने से बवासीर जोर पैदा करे, घर का पैसा डाक्टर को दिलवावे. सभी तरह तो खराब है. न स्वाद न फायदा.

मजबूतसिंह – मगर भाई भर्ता बनाओ, और तेल–मसाला डालकर चक्खो तो क्या सोंधाहट का मजा देता है.

शिवप्रसन्न – हां, भाई, मजा तो ऐसा देता है कि कुछ कहते नहीं बनता. इसी से तो सब नुकसान बरदाश्त करके लोग बिना खाये नहीं मानते.

मजबूतसिंह – भाई जान, सुना अब उसी चपरासी ने मेरे ऊपर दावा भी कर दिया है.

शिवप्रसन्न – क्यों न करता, आखिर जब बीच बाजार में थुक्काफजीहत हुई, तब अपनी चपरास की तरफ तो देखता, उसकी तो इज्जत रखता. ठीक ही दावा किया.

मजबूतसिंह – मगर भाई पूरा अंधेर है कि नहीं, मैं ही कुटा पिटा, और मुझी पर फौजदारी का जुर्म लगा.

शिवप्रसन्न – अंधेर की क्या पूछते हो, अंधेर तो सोलह आने है. आजकल भले आदमी की पूछता कौन है? सुना नहीं कि जगत-गुरू बांझन, बांझन-गुरू संन्यासी, संन्यासी गुरू चपरासी.

मजबूतसिंह – लेकिन भाई, तुमको भी मेरी गवाही देनी पड़ेगी.

शिवप्रसन्न – गवाही की ठीक ही कही. भला हम आपके साथ और आप हमारे साथ न खड़े होंगे, तो दुनिया का काम कैसे चलेगा? आजकल तो सिर कटाने का जमाना थोड़े ही है. आजकल तो लाठी तलवार का काम रहा ही नहीं. अब तो गंगा पैरने का ही काम है. आप हमारी गवाही दीजिए, हम आपकी देंगे. अदालत में खड़ी गंगा पैरने का मामला तो रह ही गया है.

मजबूतसिंह – भाई, झूठ तो बोलना न चाहिए.

शिवप्रसन्न – इसमें क्या शक, झूठ कोई कैसे बोल सकता है? आखिर भगवान भी तो ऊपर से देखता है.

मजबूतसिंह – लेकिन फिर बिना झूठ बोले तो काम भी नहीं चलता.

शिवप्रसन्न – कहां से चलता है? सरासर मूड़ काटे बैठे हो, लेकिन जब तक गवाही न हो तब तक कौन पूछनेवाला है?

मजबूतसिंह – और फिर आप हमारी-सी न कहेंगे, तो समय पर हमीं आपकी-सी कब कह सकते हैं?

शिवप्रसन्न – हां, भाई, कैसे कह सकते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना मतलब के भरी दुपहरी में बेकाम कौन अदालतों में झुलसता फिरता है? आजकल गवाही का तो व्यवहार ही रह गया है. तुम हमारी गवाही भरो, हम तुम्हारी भरते हैं. यही बात है.

मजबूतसिंह — लेकिन कचहरी में वकील-बैरिस्टरों की जिरह कैसे आड़ोगे?

शिवप्रसन्न — कैसे आड़ सकते हैं! वे तो ऐसे चंट होते हैं कि सच को झूठा कर देते हैं, फिर झूठे का कहना ही क्या! वह तो झूठा ठहरा ही.

मजबूतसिंह — हम जैसे तो उनका मुकाबिला कर नहीं सकते.

शिवप्रसन्न — हम जैसे भला उनका क्या सामना करेंगे? बड़े-बड़ों के दांत तो वे खट्टे कर देते हैं, बड़े-बड़े तुर्रमखानों की चूलें हिला देते हैं. उनका सामना कोई दालभात का कौर है.

मजबूतसिंह — मगर भाई, यदि अंदाज से बात करें, तो क्या वे ही एक बुद्धिमान हैं! आखिर क्या हममें बुद्धि है ही नहीं? मामला लड़ न डालें?

शिवप्रसन्न — क्यों नहीं, बुद्धि की क्या कहते हो, बड़े-बड़ों को चराये फिरते हैं. अब अपना मामला लड़ ही डालो. यही ठीक है।

मजबूतसिंह — भला राजीनामे का डौल भी तो अच्छा है.

शिवप्रसन्न — क्यों नहीं, राजीनामे से बढ़कर क्या है? सांप मरे, न लाठी टूटे.

मजबूतसिंह — तो इसी का प्रबंध करता हूं.

शिवप्रसन्न — अवश्य करो. □

कूटनीति का विश्व-विद्यालय

(परीक्षा-केंद्र शिकारपुर)

(परीक्षक-लार्ड-मुखर्जी)

समय 3 घंटे

(नोट — केवल छः प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए)

1. प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह ब्रिटिश जाति को और ब्रिटिश शासन को सर्वोत्कृष्ट समझे. इस पर व्याख्या लिखो.

2. अंग्रेजों ने सृष्टि के आदि से लेकर आज तक किसी युद्ध में अन्याय नहीं किया. मि. मार्स्डन के इतिहास से वाक्य उद्धृत करके इसको साबित करो.

3. निम्नलिखित बातों पर टिप्पणियां लिखो :
(अ) काले मनुष्य स्वराज्य के अयोग्य हैं.
(इ) ब्रिटिश साम्राज्य सत्य और धर्म पर स्थित है.
(उ) इंग्लैंड में इस समय सतयुग है.
(ए) यूरोप की स्त्रियां सती और साध्वी हैं.

4. सर माइकेल ओ डायर, और लार्ड बर्कैंहेड में तुम भारत के वायसराय-पद के लिए किसे ज्यादा पसंद करते हो? प्रश्नोत्तर में कारण अवश्य लिखो.

5. निम्नलिखित किसी एक विषय पर 100 शब्दों का निबंध लिखो :
(अ) बिना अंग्रेजों के भारत में शांति नहीं रह सकती.
(इ) सरकार के सबसे अधिक हितचिंतक मुसलमान हैं.
(उ) सरकार ने जर्मन महायुद्ध में छोटे मुल्कों की रक्षा के लिए भाग लिया था.

6. भारत को महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक इत्यादि नेताओं ने बड़ी हानि पहुंचायी है. रायबहादुर मुक्ताप्रसाद चौधरी एम.ए.डी.डी. के इतिहास से इस कथन को पुष्ट करो.

7. ब्रिटेन को भारत पर शासन करने में परोपकार के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं. स्वर्गीय लार्ड कर्जन का मत इस विषय में प्रगट करो.

8. साइमन कमीशन भारत की सब बीमारियों का एक मात्र इलाज है. इस विषय में डाक्टर अहमद प्रिंसिपल का मत लिखो.

9. भारतवासी असभ्य पूर्वजों की संतान हैं, परंतु 150 वर्ष के अंग्रेजी राज्य के कारण अब उनकी असभ्यता दिन-दिन कम होती जा रही है. अस्पतालों और जेल खानों के आंकड़ों से इस बात को साबित करो.

10. पिछले दस वर्ष में भारतवासियों ने अपने आपको मांटेगू सुधार-स्कीम के अयोग्य प्रमाणिक किया है. 'मिस मेयो' के मतानुसार इसकी व्याख्या करो.

11. (1.) रायबहादुर सेठ सेढ़मलजी सिधानिया सी.आई.ई. का संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखो, उसमें मुख्यतः यह बातें दर्शाओ कि उन्होंने (अ) कितनी बार वायसराय से मुलाकात की? (इ) गवर्नरों को कुल कितने प्रीतिभोज दिये? (उ) महायुद्ध में कितने रंगरूटों को भर्ती कराया? (ए) कितना रुपया वार-लोन में दिया?

2. सरकारी खैरख्वाही के विषय में तुम्हारा आदर्श सेठजी से कितना बढ़ा हुआ है? तुम इस ओर स्वयम् क्या प्रयत्न कर रहे हो?

नोट :— विद्यार्थियों को चाहिए कि इन प्रश्नों का उत्तर लिखते समय कोट पतलून धारण करके बैठें, अन्यथा आधे नंबर काट लिये जायेंगे.

मासिक भ्रमर (बरेली)
मार्च सन् 1928

लंका पर शंका

पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

कई वर्ष हुए, 'स्वतंत्र' के 'होलिकांक' (वाजपेयी की 'हिंदी-कोमुदी' के अनुसार) में मेरा उक्त शीर्षक लेख निकला था. अब इसे संशोधित, परिवर्द्धित कर सुधा के पाठकों आगे रखता हूं. आशा है, पाठक पसंद करेंगे.

प्राक्कथन

जो कहते या समझते हैं कि मैं केवल हंसी मजाक के ही लेख लिख सकता हूं और किसी गंभीर विषय पर लेखनी नहीं लुढ़का सकता, वे ज़रा ध्यान देकर इसे पढ़ें, और देखें, मैंने कैसा गंभीर गवेषणा और खोज से पूर्ण लेख लिख डाला है. अगर अब भी मुझे गंभीरता की सनद न मिली, तो मैं यही समझ लूंगा कि कद्रदां काशी-करवट ले गये और समझदारी का टाट उलट गया.

विषय-प्रवेश

अब तक तो बेचारे कविवर कालिदास, वाणी के वर पुत्र विहारीलाल, विद्या-विपिन-व्याघ्र विद्यापति प्रभृति की खींचा-तानी थी, पर अब बेचारी रावण की लंका पर भी शंका होने लगी है. इससे शंकाकार हैं इंदौर-कौंसिल के कुशल कीबे साहब, जो बड़े विद्या वारिधि हैं. आपने अपनी कल्पना, जल्पना और अनुमान के डेनामाइट से वर्तमान लंका को समुद्र से उड़ाकर मध्यप्रदेश की धरती पर ला पटका है. अब यात्रियों को लंका के लिए समुद्र पार करने की जरूरत नहीं. बंगाल-नागपुर के बंबई मेल पर सवारी कसी और दन से लंका जा पहुंचे. पर अपने राम को इतनी दूर का सफर भी मंजूर नहीं. इसलिए मैंने विचार को जरा लाचार किया, तो कीबे साहब की लंका मध्यप्रदेश से उड़ बिहार प्रांत में आ धमकी. अब बिहारी भाई इस घर बैठे लंका की सैर कर डंका बजावें. अगर कीबे साहब चीं-चपड़ करें, तो कह दें कि लंका उनकी ही मारीस नहीं है. उस पर श्रीरामचंद्र जी के नाते सबका सामान अधिकार है. उसे जो जाहें, जहां ले जा सकता है. अच्छा, अब लंका का नया पता-निशान सुन लीजिए.

खोज का फल

रावण की लंका और कहीं नहीं, यहीं मुंगेर-ज़िले के जमुई सब-डिवीज़न के आसपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

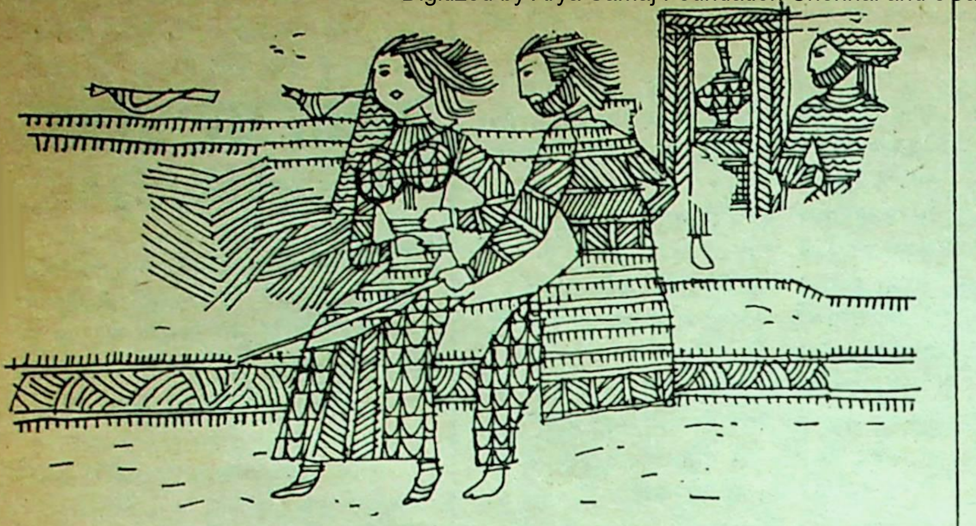

थी. यहीं श्रीरामचंद्र जी सीता माता के उद्धार के लिये आये थे. प्रकृति के प्रभाव से नाम-धामों में हेर-फेर हो गया, पर विज्ञानियों का विचार ज्यों-का-त्यों बना है. आजकल का लगमा गांव ही पुरानी लंका है. पहले यहीं समुद्र था जो सूख गया. इसका सुबूत मांगो बंदर गांव है. यह पहले बंदरगाह था, इसी से यह बंदर कहलाता है, जैसे मारवाड़ी लोग आजकल भी कलकत्ते, बंबई को कलकत्ता बंदर, बंबई बंदर कहते हैं और लिखते हैं. इसके सिवा पास ही सोनो और सोनपै ग्राम हैं जो लंका के स्वर्णमय होने के प्रबल प्रमाण हैं. इससे लगमा के लंका होने में संदेह नहीं रहता. लंका के पास सुबेल पहाड़ था. यहां भी लगमा के पास बेला गांव था. समय पा पहाड़ ज़मीन में धंस गया, और वहां बस्ती बस गयी. कुछ दूर पर पुराने किले का एक खंडहर है, जिसका नाम इनपैगढ़ है. इसे इंद्रजीत मेघनाद का वासस्थान मान लेने में क्या हर्ज है?

लंका के बाद सेतुबंध रामेश्वर है. पता लगाने पर मालूम होता है कि महादेव सिमरिया ही सेतुबंध रामेश्वर है. सेतुबंध से सिमरिया बन जाना कुछ असंभव नहीं. यहां बड़े तालाब के किनारे शिवजी का पुराना मंदिर है, जो पत्थर का बना हुआ है. लोगों का कहना है कि यह विश्वकर्मा का बनाया है. नल और नील विश्वकर्मा के अवतार कहे जाते हैं. बस, सिद्ध हो गया कि यहां सेतुबंध है. समुद्र सूख कर ताल हो गया और मंदिर ज्यों का त्यों बना रह गया. समुद्र सूख जाने का एक प्रमाण और मिल गया. यह है बलथर गांव. वारिस्थल से बरथर शब्द बना है, जिसका अर्थ है कि पहिले यहां वारि यानी जल था, फिर थर यानी स्थल हो गया. इससे बढ़कर और क्या सुबूत चाहिए.

गिद्धौर-राज्य में गिद्धाचल नाम का एक पहाड़ है, जिस पर हजारों गिद्ध वास करते हैं. इसका पुराना नाम गृध्रकूट है. शायद इसी से गिद्धौर नाम की उत्पत्ति भी हुई है. इससे सिद्ध है संपत्ति और जटायु की जन्मभूमि यही है, और यही श्रीरामचंद्र जी ने जटायु का उद्धार किया था, ऐसा कहने में बड़ा आनंद आता है.

जमुई से कुछ दूर पतौना-नामक गांव है. इसके पास ही पांच शिखरवाली एक पहाड़ी है. ये दोनों लगमा से उत्तर भी हैं. इस पहाड़ी के दोनों ओर दो नदियां हैं. दक्षिण में क्यूल और उत्तर में आंजन. इस पर श्रीरामचंद्रजी के चरण-चिन्ह भी हैं. क्यूल में बंदरीदह नाम का स्थान है, जहां पर्वों पर आस पास के लोग नहाने आते हैं. लोग कहते हैं, एक वानरी यहां नहाकर वैकुंठ गयी थी. यह वानरी और कोई नहीं पवनसुत हनुमानजी की माता अंजनी है, और उसी का स्मारक आंजन नदी है. इससे पता लगता है कि यह पतौना ही पंपासर और पंच-शिखरवाली पहाड़ी ही पंचवटी है. आंजन में गिरने वाली दूसरी नदी का नाम नकटी है, जिसके तट पर कटौना गांव बसा है. बस, यहीं सूपनखा की नाक कटी होगी, जिससे नदी का नाम नकटी और गांव का नाम कटौना हो गया. डुंडू-नर्वदा नाम के गांव ही दंडकारण्य है. नदी सूख गयी, और जंगल की जगह गांव बस गया. दोनों गांव नदी और जंगल के स्मारक-स्वरूप वर्तमान हैं. श्रीरामचंद्रजी को दंडकारण्य में कबंध राक्षस, शबरी, ऋषिगण प्रभृति कमले थे. खोजने पर यहां भी उनका पता चल सकता है. यहां कोल, भिल्ल, मुसहर, संथाल आदि जंगली जातियां आज भी निवास करती हैं. इसलिए शबरी का अभाव नहीं हो सकता है. ये लोग 'निमुंडा' नामक भूत की उपासना करते हैं. यह निमुंडा कबंध से बहुत कुछ मिलता जुलता है, क्योंकि दोनों ही मस्तक-हीन और वीर हैं. अतएव निमुंडा ही कबंध का स्थान ले ले, तो क्या हर्ज है. बाकी रहे ऋषिगण, सो उनकी भी जड़ जम गयी है. ई.आई.आर. के मननपुर स्टेशन के निकट पहाड़ पर ऋषिश्रृंगा का आश्रम है. जब आश्रम है, तब ऋषि भी होंगे. जब एक का पता लग गया, तब अनेकों का भी लग सकता है. अब लंका के यहां होने में कौन संदेह कर सकता है? कोई नहीं.

जमुई स्टेशन से कुछ दूर उत्तर की ओर मलुका पहाड़ है, जिसे जांबवान की जागीर बताने में क्या हर्ज है. यहां रीछ को भालू कहते हैं. इसी से भालु की जागीर का नाम भालुका होना उचित ही है.

क्यूल नदी के उस पार एक नदी का नाम अब भी चित्रकोट है. इसलिए इसके बारे में अनुमान की विशेष आवश्यकता नहीं. यह तो स्वयंसिद्ध है. राजा जनक का जनकपुर से यहां आना जितना सहज है, उतना और कहीं नहीं हो सकता. पास ही खैरामा गांव है. यहीं भरतजी ने खड़ाऊं पायी थी, इसी से इसका नाम खैरामा है.

जमुई के पास मिरचा गांव में मुसलमानों की प्रधानता है. यही मारीच का घर होने लायक है.

कागेसर ''सीता-चरन चोंच हति भागा, महामूढ़ मति कारण कागा.'' की याद दिलाता है. इसीलिए इस स्थान का ऐसा नामकरण हुआ हो, तो क्या आश्चर्य है.

अमकोली लता-वृक्षादि से परिपूर्ण है. पहाड़ी झरना बारहों महीने तीसों दिन प्रवाहित होते हैं. बड़ा सुंदर दृश्य है. यही अशोक-वाटिका का मान होना बुरा नहीं. इसी प्रकार भलुआन और भलुई को भालुओं की और बंदरचुआं को बंदरों की निवासभूमि मान लेना युक्ति संगत प्रतीत होता है.

लंका के यहां होने का सबसे प्रबल प्रमाण तो श्रीरावणेश्वर वैद्य नाथ हैं, जिन्हें रावण ने कैलास से लाकर देवघर में स्थापित कर दिया है. वैद्यनाथ माहात्म्य में लिखा है कि रावण नित्य कैलास जा श्रीशिव जी का पूजन करता था. रावण ने सोचा कि रोज-रोज कैलास जाने में नाहक परेशानी होती है, इसलिए एक दिन वह शिवलिंग को उठा लंका ले चला. पर बंभोलानाथ को लंका की सीमा के अंदर जाना मंजूर नहीं था, अतएव लंका के बाहर झारखंड (देवघर) में ही डट गये. रावण ने भी इसे गनीमत समझ लंका ले चलने की ज़िद न की. उसी दिन से इस लिंग का नाम रावणेश्वर वैद्यनाथ हो गया. वैजनाथ इसी का अपभ्रंश है. अब सोचने की बात यह है कि अगर लंका मध्य प्रदेश में होती, तो वैद्यनाथ जी भी वहीं होते. पर ऐसा नहीं है. वैद्यनाथजी बिहार प्रांत में हैं, अतएव लंका भी यहीं है, और मुंगेर ज़िले में है. इसके सिवा रावण का प्रतिदिन कैलास जाना यहीं से अधिक संभव हो सकता है, मध्य-प्रदेश से नहीं.

उपसंहार

इन प्रबल पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध होता है कि लंका यहीं थी और मज़े में थी. कीबे प्रसाद किसी तरह उसे मध्यप्रदेश नहीं ले ज सकते. अगर वह ज्यादा गड़बड़ करेंगे, तो मध्यप्रदेश को ही बिहार प्रांत में उठा लाऊंगा. फिर न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी. बस.

'सुधा' अक्टूबर १९२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग

रवींद्रनाथ त्यागी

''अरी दिल्ली से पेशावर जानेवाली ओ, सखि तू लोगों का व्यापार कर ले और इजारबंद का सौदा कर ले ओ गोरी आज कद्दू बड़ा मजेदार बना है और अब जीभ चटचटाकर उसे खाना है. मेरी जान, आज तू यहां से न जा.''

यह उस ग्रामगीत का अनुवाद है जो मेरे मित्र डाक्टर मनोहर लाल के अनुसार गुलेरीजी की अमर कहानी 'उसने कहा था' में लेखक ने डाला था पर जो कुछ अज्ञात कारणों के कारण पाठ्यक्रम की पुस्तकों से निकाल दिया गया. इस विषय पर ज्यादा चर्चा मैं फिर करूंगा क्योंकि फिलहाल तो मैं बीमार चल रहा हूं.'

मुझे बुखार आये कोई पंद्रह दिन हो गये. ज्वर के साथ-साथ आंखें पीली हैं, मूत्र श्वेत है, शरीर पर नीले चकत्ते पड़े हैं और मुखारविंद लाल है. इतनी रंगीन बीमारी मुझे पहले कभी नहीं हुई. पत्नी जरूरत से ज्यादा व्याकुल है क्योंकि वह शायद सती होना चाहती है. मैं भी सोचता हूं कि चलो लगे हाथों मर ही लूं. कुछ शोकसभाएं होंगी कुछ अखबारों में फोटो छपेगा और साहित्य अकादमी शायद मरणोपरांत वाला पुरस्कार भी दे देगी.

ड्राइवर आया व चपरासी वगैरह ने जो गंडे-ताबीज बनवाये उनसे कोई अंतर नहीं पड़ा. गंडा और ताबीज के बाद मेरी पत्नी ने एक प्राकृतिक चिकित्सक को बुलवाया. उन्होंने पहले तो भोजन पर हमला किया और सिवाय साबूदाने के सब कुछ खाने को मना कर दिया. शरीर पर मिट्टी का लेप किया गया. माथे पर गीली मिट्टी की पट्टी रखी गयी और शवासन करने को कहा गया. शवासन का नाम सुनकर जब मैं घबराया तो वे बोले कि ''निर्वाण परम सुखम् अर्थात मृत्यु जो है वह सबसे बड़ा सुख है.'' उनकी वाणी सुनकर मेरी वाणी बंद हो गयी. जब कभी मिट्टी खराब करने पर भी हमारी मिट्टी खराब ही रही तो एक होम्योपैथ को बुलाया गया.

मेरे जो ये होम्योपैथिक डाक्टर हैं, वे काफी दिलचस्प और होनहार किस्म के इनसान हैं. पहले कभी ये वकील थे और नतीजा यह था कि एक तरफ मुवक्किल का मुकद्दमा लड़ते थे और दूसरी ओर अदालत के बीवी व बच्चों की चिकित्सा करते थे. एक बार कुछ ऐसा संयोग हुआ कि एक ओर तो मुवक्किल जो था वह जेल गया और दूसरी ओर अदालत की जो धर्मपत्नी थीं, वे स्वर्ग सिधार गयीं. दोनों दिशाओं में इतनी शानदार सफलता देखकर ये घबरा गये और भाग गये. प्रयाग जाकर दम लिया. वहां उन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली, चिमटा खरीद लिया और 108 श्री सहजानंद सरस्वती नाम रखकर एक संस्कृत पाठशाला खोल ली. उन्हीं दिनों इन्होंने तंत्र विद्या सीखी ज्योतिष पढ़ी, अनाथाश्रम खोला और बाद में एक अदद विधवाश्रम भी स्थापित किया. कुछ विधवाओं से इनके संबंध इतने निकट हो गये कि इन्हें संन्यासी का चोला बदलना पड़ा. किसी प्रकार मेरे कस्बे में आ गये और तब से ये यहीं हैं. काफी अच्छे चिकित्सक हैं. इनका निदान बड़ा सच्चा होता है. यदि ये कहेंगे कि रोगी को सन्निपात हो गया है तो रोगी सन्निपात से ही मरेगा, यक्ष्मा से नहीं. इनका कहना है कि होम्योपैथी में जितनी भी कम शक्ति की दवा ली जाती है, वह उतना ही ज्यादा प्रभाव दिखाती है. मेरा निवेदन है कि यदि यह सिद्धांत ठीक है तो होम्योपैथी की दवा तब ही ज्यादा से ज्यादा असर करती है जब कि वह बिलकुल नहीं ली जाती.

होम्योपैथ के बाद एक वैद्य आये. बोले कि पित्त का प्रकोप है. खाना इन्होंने भी लगभग बंद ही रखा. वैसे ये कविराज हैं मगर लगते यमराज हैं. इन्हें स्त्रियों के रोगों का विशेषज्ञ माना जाता है. लगभग-सी सुंदर युवतियों से यही पूछते हैं कि तुम गर्भवती हो या नहीं? यदि हो तो कैसे हो और नहीं हो तो होना चाहती हो या नहीं? स्त्रियों के ठहरने का भी उचित प्रबंध है. निदान दिन में करते हैं और चिकित्सा रात को. माधवनिदान चरक, सुश्रुत, वाग्भट और पता नहीं कौन-कौन सी पुस्तक पढ़ते हैं. और रोगी को सुनाते हैं. इनके यहां जितने भी रोगी आते हैं, वे प्रायः वही होते हैं जिन्हें कोई स्त्री रोग होता है चूंकि मुझे ऐसा कोई रोग नहीं था, इन्होंने मेरा इलाज अपने हाथ में नहीं लिया.

वैद्यजी के जाने के बाद सिविल सर्जन बुलाया गया. देखने में यदि यमराज नहीं तो उनका वाहन तो जरूर ही लगता था. अस्पताल की दवाइयां बाजार में बेचने के कारण कई बार सेवा से निलंबित किया जा चुका था. और एक बार तो एक रोगी युवती के साथ बलात्कार करने के कारण इसकी जान भी बचनी मुश्किल हो गयी थी. यदि एक स्थानीय नेता मदद नहीं करते तो इन्हें जेल होती. बहरहाल मेरा पूरा निरीक्षण किया, फीस ली और नुस्खा लिखा. मुझसे पूछने लगे कि क्या खाने की इच्छा है? हम थे कोई दस दिन के भूखे. हमने तो स्पष्ट कह दिया कि डाक्टर साहब, आपको छोड़कर बाकी सारी चीजें खाने की इच्छा है. वे हंसे और चले.गये. बुखार फिर भी नहीं उतरा.

इसके बाद एक विशेषज्ञ आये. वे अस्पताल में कोई तीन सौ मरीजों को रोज निबटाते थे मगर जाननेवाले जानते थे कि यदि आराम होना है तो घर पर ही मिलना चाहिए. मेरे घर आने की उन्होंने दुगनी फीस ली. कुछ जांच करवायी और फिर दवा लिखी. इनके इलाज से मेरी स्थिति संभलने लगी और धीरे-धीरे मैं ठीक होने लगा. ये इतने शरीफ डाक्टर निकले कि कोई चार बार तो बिना बुलाये ही घर पर चले आये जिसकी उन्होंने हर बार दुगनी फीस ली.

मेरे दोस्त 'हैरत' रतनगढ़ी काफी बाद में आये. वे एक शादी में आगरा गये हुए थे. हैरत साहब हकीम भी थे, छोटे-मोटे सर्जन भी थे, और साथ-साथ शायर भी थे. हजामत बनवाते-बनवाते जो इनकी पूर्ण गजल सुन लेता था, उससे हजामत का पैसा नहीं लेते थे. बहरहाल वे आये और आते ही ताजी गजल सुनाने लगे. चार गजलें और कोई पचास कते सुनाने के बाद उन्होंने मेरी सेहत के बारे में पूछा. इसके बाद चाय पी, 'इलाजुल गुर्बा' में से एक नुस्खा तजवीज किया और चलते वक्त एक बहुत पुराना और मशहूर शेर सुनाने लगे. इस कालजयी शेर का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है :

उनके आने से जो आती मुख पर शोभा
वे समझते हैं कि रोगी का स्वास्थ्य उत्तम है. □

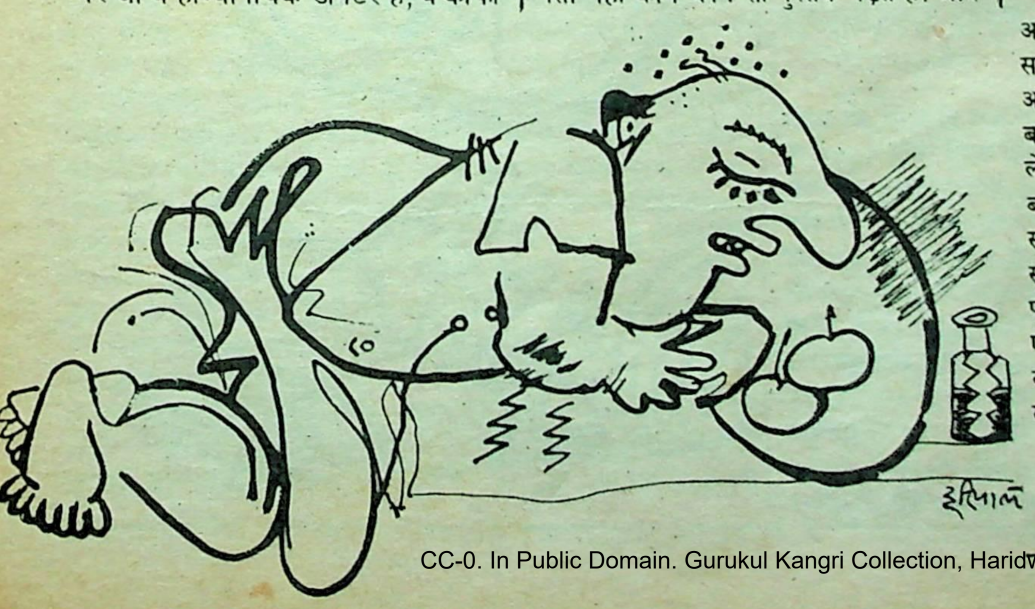

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिया, गरम बोनट और बकरियां

ज्ञान चतुर्वेदी

भदरंग टीन की यह, बड़ी-सी कनस्तरनुमा रचना, जो कस्बे की सड़क पर खड़ी है, यहां की बस है,पहली बार विश्वास नहीं होता नये-नये आदमी को या शहराती को. शहर से आया हुआ आदमी तो जब तक पास जाकर पहिये आदि ठीक से न देख ले, मानता ही नहीं. तमाम सीमाओं तथा बाधाओं के बावजूद यह कनस्तर न होकर यदि बस है, तो इसके पीछे हफीज मियां के धैर्य, परिश्रम तथा दुःसाहस का हाथ है. यहां वहां से उखड़ते-छीजते-गल गये नये टीन के पतरों, हिलते, कटे-फटे टायरों, चकनाचूर से कांचों और बाढ़ में किनारे लगे मुरदे की आंतों की भांति बाहर झांक रही सीटों की स्प्रिंगों को यदि अजर आत्मा की भांति बस के मृतप्राय शरीर में किसी ने उखड़ते नट-बोल्टों से कहीं अधिक अपने अमर आत्मविश्वास द्वारा बांध रखा है, तो वे हैं जनाब हफीज मियां रंगरेज, उरईवाले. हफीज मियां महबूब ट्रांसपोर्ट कंपनी के मालिक हैं, जिसकी एकमात्र संपति यह बस है. महबूब मियां, हफीज मियां के सुपुत्र हैं, जिनके नाम पर इस महती कंपनी का नामकरण हुआ है. दो वर्ष पूर्व तक ट्रांसपोर्ट के पास इससे भी नाकारा एक और बस थी. ब्रेक न होने के मामूली से कारण से वह रुक नहीं पायी और दो साल पहले बरसात में चढ़ी नदी में बह गयी. पुर्जे-पुर्जे बह गये उसके. बस का बीमा था, सो एक लिहाज से ठीक ही रहा. हफीज मियां स्वयं तो खैर तैरकर किनारे लग गये. वैसे ब्रेक तो इस बस में भी कोई खास नहीं. इसे भी हफीज मियां स्वयं चलाते हैं तथा कुछ ऐसी कारीगरी जानते हैं कि बस ऐन टकराने से पूर्व रुक जाती है. पता नहीं कैसे. हफीज मियां को स्वयं भी नहीं पता. वे तो अल्लाह का हाथ मानते हैं इसमें. बस को देखकर तो कोई भी मानेगा.

आगे के दरके हुए कांच पर ही मक्का-मदीने की पाक तस्वीर चस्पां है. परंतु केवल अल्लाह ही इस बस की जिम्मेदारी संभाले और परेशान हों, यह हफीज मियां को बरदाश्त नहीं. नीचे शंकरजी की मूर्ति भी है और उसके पास ही स्टील का बना नंदी का सिर भी. एक तरफ हनुमानजी की तस्वीर भी. बस है भी ऐसी कि एक-दो देवताओं के बूते की बात नहीं लगती. और इन सबके ऊपर यहां-वहां से लटकते बिजली के लाल-पीले तार, जो बोनट तथा पैनल से निकलकर न जाने कहां जा रहे हैं. हफीज मियां स्वयं किसी तार को हाथ नहीं लगाते— न जाने किस तार से बस चल रही हो!

इंजिन स्टार्ट मुश्किल से होता है और एक बार हो जाये, तो झांसी पहुंचने तक हफीज मियां इसीलिए बंद नहीं करते. मोंठ पहुंचते ही गाड़ी रुकी है तो बोनट खोल दिया गया है तथा गर्मागर्म भाप पूरी बस में भर गयी है. बोनट के पास ही ड्राईवर साहब की सीट है, जो शेष सीटों के बराबर ही फटी, गलीज तथा जलील है. हफीज मियां इस सीट पर एक चीकट-तकिया धरकर बस चलाते हैं ताकि स्प्रिंग के तारों की चुभन से उनकी ड्राईविंग की विकट तपस्या में विघ्न न पड़े. आगे की दो सीटों पर रिजर्व लिखा है. इनमें से एक की पटिया गायब है और दूसरी से बकरी बंधी है. दो सीटें औरतों के लिए सुरक्षित हैं, जिन पर कई मुछाड़ियां यात्री जमे है. स्टाफ के नाम पर हफीज मियां के सुपुत्र श्री महबूब मियां ही हैं, जो टिकिट काटते हैं, गाली देकर सवारी चढ़ाते हैं, धक्का देकर सवारी उतारते हैं, बाप की गालियां सुनकर उन्हें उससे भी कठिन गालियों का प्रत्युत्तर देते हैं, छत से सामान गिराते हैं और हर चुंगी पर चलती गाड़ी से कूदकर चलती गाड़ी पर ही चढ़ते हैं. महबूब मियां बस के कर्तव्यपरायण कंडक्टर हैं.

सामने से बस की जाली कब की गलकर निकल गयी है. आधा इंजिन वहां से बूढ़े राक्षस के हिलते, भयानक दांतों-सा झांकता रहता है. बस चलाने से पूर्व ही हफीज मियां पीछे की तरफ आवाज मारते हैं— "अरे खां पंडितजी, आप तनिक पीछे की सीट पर बैठ जाइये. बैठने की जगह देना भई, पीछे. पीछे सड़क पर देखते जाइयेगा पंडितजी. कोई पुर्जा गिरे तो बताइयेगा." इंजिन कसा नहीं है. पुर्जे राह में गिरते जाते हैं, जिन्हें बस रोककर बटोर लिया जाता है, या कभी-कभी पुर्जा गिरने पर बस स्वयं ही रुक जाती है. पुर्जा उठाने के बाद हफीज मियां और महबूब मियां के बीच.खुली सड़क पर यह परिचर्चा होती है कि यह पुर्जा कहां से गिरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा? महबूब मियां कहते हैं कि यह पुर्जा अपनी बस का न होकर 'बरसैंया ट्रांसपोर्ट' वालों की 'दतिया-समथर' बस से टपका लगता है. हफीज मियां डाट लगाते हैं क्योंकि उनकी फिलोसफी यह है कि जो पुर्जा मुफ्त में मिल रहा हो, वह फिर चाहे हवाईजहाज का ही क्यों न हो, महबूब ट्रांसपोर्ट की संपत्ति माना जायेगा. वे कहते हैं कि हो न हो यह पुर्जा 'कारबूरेटर' से टपका क्योंकि 'कारबूरेटर' में एक बड़ा छेद उन्हें साफ नजर आ रहा है. तब महबूब मियां बताते हैं कि उक्त छेद तो वे बचपन से देखते आ रहे हैं. तब हफीज मियां बताते हैं कि तुम्हारी तो बचपन से ही दोनों आंखें खराब हैं! तब महबूब मियां बताते हैं कि हमारे खानदान में तो फूटी आंखों का रिवाज बहुत पुराना चल रहा है, परंतु फिर भी यदि अब्बाजान अपनी 'अंधरी-आंख' पर जोर लगाकर देखें तो यह पुरजा, लगता है कि उस किसी छेद से टपका है जो डीजल टैंक, रेडियेटर, डेल्को,

बैठिये, बैठिये क्या कहा, बोनट गर्म है? तो क्या हुआ. बहुत नाजुक हो तो पाजामा गीला करके बैठ जाओ. बैठो यार, बैठो. आग नहीं लग जाने वाली. ऐसा गर्म भी नहीं है. फफोला पड़ जाये तो कोई बात नहीं. झांसी के बड़े अस्पताल से मल्लम लगवा लेना.

'एक्जास्ट' पाइप तथा फैन-बैल्ट में यहां वहां नजर आ रहे हैं. तब दोनों, किसी एक छेद के विषय में एकमत होकर, पुरजे को उस छेद में लगा देते हैं. बस फिर चल पड़ती है. हफीज मियां पंडितजी को धन्यवाद देते कहते हैं कि आज आपके रहते यह पुर्जा बच गया, वरना तो आजकल ऐसी लापरवाह सवारियां बैठती हैं कि पुर्जे 'छन' 'छन' करके गिरते रहते हैं और नामाकूल बताते भी नहीं. स्वयं हफीज मियां तो गांजा पीने के कारण सुन नहीं पाते, परंतु सवारियों के कारण आधा इंजन तो टपक-टपककर खो चुका है. इतना बताने के बाद वे अल्लाह का शुक्रिया अदा करते हुए कहते हैं कि अल्लाह के फ़जल से आधे इंजिन से भी गाड़ी ठीक चल रही है; बल्कि आधा इंजिन गिर जाने से बस हल्की हो गयी है और पहले की अपेक्षा तेज चलने लगी है.

बस अब छूटने लगी है. पर इतनी आसानी से छूटने वाली नहीं.

राम भरोसे चायवाले का छोकरा आकर बाल्टी भर पानी इंजिन में डाल गया है, जो इंजिन के अलावा यहां-वहां बहकर सीटों के नीचे बहता हुआ फर्श पर बैठे यात्रियों की धोती, पाजामे तथा अधोवस्त्रों में घुस गया है. उधर हफीज मियां भी ड्राइवर की सीट पर बिराज गये हैं. बोनट अब बंद कर दिया गया है. हफीज मियां ने संतोष की दृष्टि से पीछे की तरफ निहारा है. जब तक बस ठसाठस न हो, हफीज मियां गियर पर हाथ नहीं रखनेवाले, बस में आज भी यात्री ठूंस-ठूंसकर भरे जा चुके हैं. चिल्लपों मची है. गावं के लोग टीन की नुकीली पेटियां, झोले, दरी में ठूंसकर बंधे बिस्तरे, बोरों में भरे बर्तन-भांड़े, बकरियां, मुरगियां, गेहूं के बोरे, दूध के बड़े बर्तन, मिट्टी के तेल का कनिस्तर, डीज़ल की कुप्पी, बड़ी लाठियां, कच्ची दारू, नकली दवा आदि लेकर बस में यहां वहां मोर्चा-सा बांधे खड़े-पड़े या बैठे हैं. बस के चप्पे-चप्पे पर यात्रीगण छा चुके हैं. बच्चे रिरिया रहे हैं, बकरी सामने बैठे दादाजी की आधी धोती चबाकर आगे की योजना पर विचार कर रही है और एक बच्चा गेहूं के बोरों पर चढ़कर नीचेवालों की खोपड़ी पर कूद रहा है. गाली-गलौज, हा-हा-ही-ही, रोना-पीटना और चीख-चीख कर आवाजें देना जारी है. दद्दा पेशाब करने के लिए नीचे उतर गये थे और अब घुस नहीं पा रहे हैं, वहीं बाई के पैर पर किसी ने पेटी धर दी है और मास्साब का झोला किसी ने गायब कर दिया है. थानेदार साहब की सवारियां आनेवाली हैं, सो आगे की दो सीटों पर बैठे लोगों को सिपाही की तरफ खदेड़ दिया है. अजीब खौफनाक-सा, खतरनाक, हैरतअंगेज खेल चल रहा है इस बस में.

जो घुस गये हैं वे निकल नहीं सकते. पकड़नेवाला डंडा कब का उखड़ चुका है. लोग फिर भी गिरते नहीं. गिरने की जगह छोड़ने की गुंजाइश हफीज मियां ने छोड़ी नहीं. लोग एक दूसरे के सहारे खड़े हैं. जिसे कहते हैं गचागच, वह मचा है. फिर भी बस के नीचे खड़े महबूब मियां आने-जाने वालों का आह्वान कर रहे हैं कि वे झांसी चलें, 'झांसी-झांसी-झांसी' एक अनवरत पुकार. द्रुत पर चल रही है, और लोग आ भी रहे हैं. जगह बनानी होगी. महबूब मियां भरी बस में जगह निकालने में विशेषज्ञ हैं. बस जितनी भरी हो, वे उतने ही उत्साह से जगह निकालते हैं. अभी बहुत जगह निकलेंगी इस बस में.

"आगे बढ़ो भई आगे बढ़ो."

"आगे कहां बढ़ें?"

"बोनट पर बैठ जाओ, भैया."

"वहां दो बैठे हैं पहले ही?"

"अभी तीन और बैठेंगे भाइजान. बैठिये, बैठिये! क्या कहा, बोनट गर्म है? तो क्या हुआ. बहुत नाजुक हो तो पाजामा गीला करके बैठ जाओ. बैठो यार, बैठो! आग नहीं लग जाने वाली. ऐसा गर्म भी नहीं है. फफोला पड़ जाये तो कोई बात नहीं. झांसी के बड़े अस्पताल से 'मल्लम' लगवा लेना. बैठो, बैठो...आगे बढ़ो. जगह दो दद्दा. पांव सिकोड़ो. ये टीन अपनी गोदी में धर लो. और तुम टीन पर बैठ जाओ बैठा. यार, गियर पर पैर मत रखो. सीधे खड़े रहो भाई. लड़ाई नहीं. लड़ाई-लड़ाई माफ करो. गोदी में बिठा लो भैया. शाबास, चिरगांव तक की बात है. वहां बस तनिक खाली हो जायेगी."

एक दूसरे की गोद में बैठ गये हैं यात्री. मोंठ से झांसी तक के पचास किलोमीटर के रास्ते में ऐसा विश्वबंधुत्व इस बस में चल रहा है कि हफीज मियां को वहां खड़े-खड़े शांति का नोबेल-पुरस्कार देने का जी करता है.

अब हफीज मियां लंबे-लंबे हार्न दे रहे हैं. बस अड्डे की हवा में आमंत्रण तैर रहा है कि जल्दी आयें. झांसी जाने के इच्छुक लोगों को कातर पुकार है यह महबूब ट्रांसपोर्ट की. बस खड़ी है और लोग कमीनगी पर उतारू हैं कि झांसी नहीं जा रहे! अभी दस आदमी तो बोरियों पर बैठ सकते हैं. बकरियां भी स्वस्थ हैं. कुछ उन पर बैठ जायेंगे. पर लोग आयें तो. पें पें पे. चलो भाई, बस चलने को है. जल्दी करो. लोग आते-जाते हैं और न जाने कहां घुसते जा रहे हैं. हफीज मियां से इस बाबत पूछिये तो वे इसे भी अल्लाह का करिश्मा मानते हैं. सच भी है. बिना अल्लाह की सहायता के अब बस में नहीं घुसा जा सकता.

अब बस चल पड़ी है. हफीज मियां ने चलायी या शायद कोई यात्री गियर पर बैठ गया— पता नहीं. पर बस चल पड़ी है. अब चल पड़ी है तो रोकी नहीं जा सकती क्योंकि ब्रेक कमजोर हैं और बस ढलान पर खड़ी थी. अब बस जा रही है. अंदर टिकिट को लेकर झिकझिक चल रही है—

"कहां जाओगे?"

"झांसी."

"निकालो सात रुपये."

"सात काहे के?"

"झांसी के, और काहे के?"

"तीन लेलो यार!"

"सात निकालो! जल्दी करो."

"हमारे पास तो तीन ही हैं. चाहो तो नंगा-झोली से लो."

"अच्छा तीन लाओ. पर बीच में चिरगांव पर उतर जाना."

"चिरगांव पर मत उतारियो खां साहब. उतें हमारी ससुराल है. बदनामी होगी."

"तो जंगल में उतर जाना. शेर पर बैठकर झांसी आजाइयो."

आधी सवारी की बहस तो अनंत है, जो सदियों से इस बस में चल रही है. इस कस्बे का कोई भी बच्चा बड़ा नहीं हो रहा. पर महबूब मियां भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम नहीं. टिकिट काटते हुए, इस भीड़ में भी यात्रियों की एक-एक चाल पर उनकी नजर है और तदनुसार माकूलकाट मौजूद है—

"ढाई टिकिट देना कंडक्टर साब."

"आधी सवारी कौन सी?"

"इस बच्चे की."

"बड़ी बड़ी मूंछें आ गयी हैं इसकी. बच्चा तो मत कहो इसे."

"हमारे लिए तो बच्चा ही है."

"पूरी टिकिट लगेगी इसकी."

"मूंछ निकल आयी तो क्या पूरी टिकिट काटोगे?"

"और नहीं तो क्या?"

"मूंछ पर न जाओ खां साहब. वो तो यह बच्चा लहसुन ज्यादा खाता है सो मूंछें कुछ जल्दी आ गयी हैं. वैसे यह पांच साल का है."

"सोलह साल के लौंडे को पांच साल का बताते शर्म नहीं आती तुमको"?

"काहे की शर्म? शर्म तो तुम्हें आनी चाहिए कि हमने तुम्हें मूंछ वाला बच्चा बिना टिकिट लगाये दिखाया और तुम हमसे ही टिकिट मांग रहे हो?"

लोकसभा की बहस चलती है और बस, देश की तरह किसी तरह चलती जा रही है. धूल उड़ाती. छोटे-मोटे, दिशाहीन तूफान-सी गरजती. बैलगाड़ियों, साइकिल सवारों, पैदल चलने वालों तथा गाय-भैंसों को खदेड़ती. मोटे कांच का चश्मा लगाये हफीज मियां दबाये चले जाते हैं गाड़ी. इंजिन गर्म हो रहा है. बोनट पर बैठे लोगों की अग्नि-परीक्षा चल रही है. वे गर्मी से मचलकर टांगें इधर-उधर करते हैं तो हफीज मियां फटकारते हैं कि 'मियां, गाड़ी भिड़वा दोगे क्या? गर्म लग रहा है तो तेज-तेज सांस लो और काशमीर का खयाल दिमाग में लाओ. गर्मी नहीं लगेगी. चार फफोलों के पीछे सबकी जान मत ले लेना. गाड़ी चलती जा रही है. परंतु गर्म होकर इंजिन बंद हो पाये, उससे पहले ही कोई गांव आ जाता है और पुलिया पर बस रुक जाती है. पुनः लंबे हार्न मारकर हफीज मियां अब इस गांव वालों को बताते हैं कि झांसी जानेवाला तूफान मेल आ गया है. चलो. महबूब मियां नीचे उतरकर 'झांसी चलो आंदोलन' चलाने लगते हैं. पुलिया पर बैठे कुछ लोग बस पर चढ़ जाते हैं. यहां-वहां से बहुत से फुरसतिये छोकरे, नंग-धड़ंग बच्चे और सर्वदा फालतू बूढ़े आकर बस के चारों तरफ मंडराने लगते हैं. हफीज मियां सबको ललकारकर भगाते हैं कि बस को छूकर खराब किया तो खबरदार! एक सज्जन पेशाब के लिए उतरना चाहते हैं, पर महबूब मियां डांट देते हैं कि पेशाब-टट्टी अब सीधे झांसी में ही होगी. बैठनेवाले बैठ गये हैं, पर बस रुकी हुई है. गांव से अभी हफीज मियां को बहुत आशाएं हैं. वे दो-तीन यात्रीनुमा व्यक्तियों को देखते हैं तो उनकी शक्ल से हफीज मियां को लगता है कि इनको झांसी जाना चाहिए. वे उनको झांसी के लिए पुकारते हैं—

"बैठिये बैठिये जनाब, बस झांसी जा रही है."

"नहीं, हमें तो कानपुर जाना है."

"अरे छोड़िये कानपुर को.... झांसी चलिये. महबूब बिठाल इनको रे."

"नहीं दद्दा, हमें कानपुर जाना है."

"भैया, झांसी अच्छा शहर है."

"हमें नहीं जाना झांसी."

" 'शोले' लगी है झांसी में, डमरू टाकीज में. बस अड्डे के पास. देखकर रात में हमारी बस से ही वापस आ जाना."

"हमें नहीं जाना."

"तुम्हारी मरजी. फिर झांसी की ऐसी लगी-बस न मिलेगी."

"न मिलने दो."

"कानपुर बड़ा शहर है. मार तमाम भीड़-भड़क्का. ट्रक के नीचे कुचल जाओगे तब हमारी याद करना."

"कर लेंगे."

"मियां, अजीब ढीठ आदमी हो. झांसी न जाना हो मत जाओ, पर बुजुर्गों से मुंह तो मत लड़ाओ." "हमने ऐसी कौन-सी बात करदी जो नाराज हो रहे हो?"

"नाराजी काहे की. फिर चलो न झांसी. बैठो, बैठो." बीच में ही पड़ता है हफीज मियां का गांव. सड़क पर ही उनका छोटा लड़का खड़ा रहता है, बस की प्रतीक्षा में. बस रोककर वे उसे खाने का खाली टिफिन, सब्जी का थैला, कुछ पुड़ियां तथा एक कलेंडर देते हैं. एक पुड़िया लड़के के हाथ से गिर जाती है तो हफीज मियां बस से उतरकर पुड़िया उठाते हैं, एक जोरदार झापड़ मारकर पुड़िया उसके हाथ में देते हैं और पुनः सीट पर चढ़कर इस प्रकार बातें करते हैं मानों फिर कुछ हुआ ही न हो—

"क्यों रे, स्कूल गया था कि नहीं?"

"आज मास्साब ही नहीं आये शहर से. छुट्टी हो गयी."

"घर पर पढ़ा कि कंचे खेल रहा था?"

"पढ़ा."

"कंचे खेलेगा तो स्साले, मार-मारकर कचूमर निकाल दूंगा."

"जी."

"और रात को सात बजे वापस निकलूंगा. अपनी अम्मी को कहना कि फिर से कद्दू बनाकर न धर दे डिब्बे में, नहीं तो घर पर आकर मारूंगा, चाहे बस लेट हो जाये."

"ठीक."

"फिर भाग यहां से. और सड़क पर मत खेलना. बिना ब्रेक की बसें चलाते हैं हरामी लोग आजकल. बच के जाइयो. शाबास...."

कभी अच्छे या खराब मूड में हों, तो बस को चलता छोड़कर हफीज मियां घर चले जाते हैं और आधे-पौन घंटे से पहले नहीं लौटते. जल्दी न उनको है, न ही सवारियों को. जिनको जल्दी रहती है, वे ऐसी बस में बैठते ही नहीं. गांव के समृद्ध, प्रभावशाली लोग या सरकारी अफसर लंबी दूरी की अच्छी बसों में कोशिश करते हैं. यह बस तो गांव के जानवरनुमा, गरीब, लाचार, फटीचर, बेआवाज, निरीह और बेबस लोगों के लिए हैं जो पैसे देकर भी उचित सुविधा पाने के अधिकारी नहीं हैं इस देश में. इनके समय की कोई कीमत नहीं. इनके लिए बनी हैं पैसिंजर बसें. घड़ी-घड़ी रुकतीं. झींकतीं. टूटी-फूटी. कष्टप्रद. मजदूरों, किसानों को गारे की तरह ढोतीं.

बस फिर चल पड़ी है. मोटे चश्मे से जितना दिख सकता है, उतने की सहायता से ही हफीज मियां भगाये ले जा रहे हैं बस को. बोनट और गर्म हो रहा है. यात्री बढ़ते जा रहे हैं. बस के अंदर हवा बंद है और बाहर जैसे एक तूफान उठा है सड़क पर. दम घुट रहा है. सवारियों के मुंह नीले हो रहे हैं. बकरियों के मुंह से फैन निकल रहा है. पसीने में तर-बतर यात्री मानो गुत्थमगुत्था हो रहे हैं. गाड़ी हर पुलिया पर बैठे लोगों को बटोर रही है. इतना हाहाकारी वातावरण, फिर भी लोग हैं कि इस पर भी हंसते, मजाक करते, ही-ही ठी-ठी करते बैठे हैं. चली जा रही है बस. अभी बस उस पुलिया पर रुकी थी, जिस पर मैं बैठा था. हफीज मियां ने मुझे भी झांसी चलने का आमंत्रण दिया था. मैं नहीं गया. हिम्मत नहीं हुई. मैं शर्मिंदा हूं. धूल का एक बवंडर पुलिया के पास उठाकर महबूब ट्रांसपोर्ट का कारवां गुजर गया है. मैं क्षितिज की छाती पर उठते बवंडर को ताकने के अलावा और क्या कर सकता हूं?" □

चलते-चलते

तलाक का मुकदमा चल रहा था. पति ने जज से कहा, "जज साहब, हमारी शादी को दस साल बीत गये हैं. दस साल बाद जाकर संतान हुई सो भी लड़की. मेरा वंश आगे कैसे चलेगा? मुझे इस औरत से तलाक दिलवा दें!" यह सुनकर पत्नी तुनककर बोली, "जज साहब यह आदमी बकवास कर रहा है. इसके भरोसे बैठी रहती तो....यह लड़की भी न होती!"

—राजेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंस्पैक्टर फोर्ड के कारनामे

वुडी एलन

मामला एक रईस के कत्ल का

इंस्पेक्टर फोर्ड दनदनाते हुए स्टडी में दाखिल हुए. फर्श पर क्लिफर्ड ह्वील की देह पड़ी थी. ऐसा लगता था कि क्लिफर्ड पर किसी ने पीठ पीछे मुग्दर से वार किया था. देह जिस हालत में पड़ी थी, उससे संकेत मिलता था कि मकतूल अपनी सोन मछरी को गीत सुनाकर रिझाने की कोशिश कर रहा था कि अचानक उस पर वार हुआ और वह चारों खाने चित हो गया. इस बात के भी प्रमाण मौजूद थे कि कातिल और मकतूल के बीच खासी कशमकश चलती रही थी, जिसमें दो बार फोन आने से खलल पड़ा था— एक बर एक गलत नंबर लग गया था और दूसरी बार मकतूल से यह पूछा गया था कि क्या उसकी नाच सीखने में कोई दिलचस्पी है?

मरने से पहले ह्वील ने दवात में अपनी अंगुलियां डुबोयी थीं और एक

''सबसे पहले यह नीलम एक सुलतान के पास था जिसकी मौत बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में हुई, वह सूप पी रहा था कि कटोरे में से एक हाथ निकला और उसने सुल्तान का गला घोंट दिया. फिर यह नीलम एक अंग्रेज लॉर्ड के कब्जे में आया और एक दिन उसकी बीवी ने देखा कि लाट साहब खिड़की में उलटे उगे पड़े हैं.

संदेश घसीट मारा था : 'चीजें अनमोल कौड़ियों के मोल—हर चीज बिक के रहेगी!'

''आखिरी दम तक व्यापारी!'' आइव्स ने कहा, आइव्स ह्वील का सेवक था, जिसके ऊंची एड़ी वाले जूते, अजीब बात थी, उसके कद को दो इंच और भी छोटा बनाये दे रहे थे.

टेरेस का दरवाजा खुला हुआ था और वहां से चलकर पैरों के निशान हॉल से होते हुए एक दराज में पहुंचते थे.

''जब यह वारदात हुई, तब तुम कहां थे, आइव्स?''

''किचन में. बर्तन साफ कर रहा था.'' अपनी बात के सबूत के तौर पर आइव्स ने अपने बटुए में से कुछ झाग निकालकर दिखा दिये.

''तुमने कोई आवाज सुनी थी?''

''वहां उनके साथ कुछ लोग थे. उनमें बहस चल रही थी कि उनमें सबसे ऊंचे कद का कौन है. मेरा खयाल है मैंने ह्वील साहब को डिडली-डू गाना शुरू करते सुना था और उनके साझेदार मोस्ले चीखकर बोले थे, ''माइ गॉड, मैं तो गंजा होता जा रहा हूं!'' इसके बाद तो मुझे इतना ही पता है कि वीणा के टंकार-सी हुई और ह्वील साहब का सिर लुढ़ककर लॉन पर आ गिरा. मैंने सुना मोस्ले साहब उन्हें धमकी दे रहे थे. उन्होंने कहा कि अगर ह्वील साहब ने उनके अंगूरों को दोबारा हाथ भी लगाया, तो वे उन्हें बैंक से कर्जा दिलवाने की सिफारिश कतई नहीं करेंगे. मेरा खयाल है, उन्होंने ह्वील साहब का कत्ल कर दिया.''

''टेरेस का दरवाजा अंदर से खुलता है या बाहर से?'' इंस्पेक्टर फोर्ड ने आइव्स से पूछा.

''बाहर से. क्यों?''

''बिलकुल वही जैसा मैंने सोचा था. अब मुझे बोध हुआ कि क्लिफर्ड ह्वील की हत्या मोस्ले ने नहीं, तुमने की है.''

इंस्पेक्टर फोर्ड ने कैसे जाना?

घर के नक्शे को देखते हुए आइव्स चोरी-छिपे अपने मालिक के पीछे तो पहुंच नहीं सकता था. वह आहिस्ता से उसके सामने ही पहुंच सकता था; उसी क्षण ह्वील साहब ने गाना रोक दिया होगा और अपना मुग्दर आइव्स पर चला दिया होगा—यह एक ऐसी परंपरा थी जिससे वे पहले भी कई बार गुजर चुके थे.

अजीब पहेली

जाहिरा तौर पर, वॉकर ने खुदकुशी की थी. नींद की गोलियों की भारी खुराक. फिर भी इंस्पेक्टर फोर्ड को लगा, कहीं कुछ गड़बड़ है. शक शायद शव की स्थिति से हुआ था. शव टीवी सेट के अंदर मिला था, वॉकर बाहर देख रहा था. फर्श पर संक्षिप्त सा आत्महत्या संबंधी रुक्का पड़ा था. ''प्रिय एडना, मेरा ऊनी सूट मुझे खुजली देता है, इसलिए मैंने खुदकुशी करने का फैसला कर लिया है. खयाल रखना कि हमारा बेटा अपने सारे डंड-बैठक पूरे कर ले. अपनी सारी संपत्ति मैं तुम्हारे नाम किये जा रहा हूं सिवा अपने पोर्कचाइ हैट के, जिसे मैं प्लैनिटेरियम को दान कर रहा हूं. मेहरबानी करके मुझे लेकर परेशान मत होना, क्योंकि मृत होना मुझे सुख देता है और मकान का किराया देने से तो मर जाना कहीं बेहतर है. अलविदा, हेनरी. पुनश्च: हो सकता है यह बात इस वक्त नामुनासिक लगे, लेकिन मेरे पास यह मानने के कई कारण हैं कि तुम्हारा भाई एक कोर्निश मुर्गी से इश्क लड़ा रहा है.''

एडना वॉकर घबराहट में अपना निचला होंठ काटते हुए बोली, ''इसका मतलब क्या है, इंस्पेक्टर?''

इंस्पेक्टर फोर्ड ने बिस्तर के सिरहाने के पास रखी छोटी मेज पर पड़ी नींद की गोलियों वाली शीशी को देखा, ''आपके पति कब से अनिद्रा के शिकार थे?''

''बरसों से, मानसिक रोग था उन्हें. उन्हें डर लगा रहता था कि अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आंखें मूंदेंगे तो शहर उन पर सफेद रेखा पोत देगा."

"अच्छा-अच्छा. क्या उनसे किसी की दुश्मनी थी?"

"नहीं– ऐसा तो कुछ नहीं था. कुछ बंजारे जरूर थे, जिनका शहर के बाहर एक डेरा था. मेरे पति ने एक बार उनका अपमान जरूर कर दिया था कानों में फूल लगाकर, उनके त्योहार के दिन उनके डेरे में उछल-कूद मचाकर."

इंस्पेक्टर फोर्ड को मेज पर दूध का आधा खाली गिलास नजर आया, गिलास अब भी गरम था. "श्रीमती वॉकर, क्या आपका बेटा कॉलेज गया हुआ है?"

"नहीं– पिछले हफ्ते उसे अशिस्ट बर्ताव के कारण कॉलेज से निकाल दिया गया है. हमें बड़ी हैरानी हुई. उसे उन्होंने एक बौने को टार्टार सास में डुबोते पकड़ लिया था. आइवी लीग स्कूल में यही यह चीज है जिसे वे बर्दास्त नहीं करते."

"और कत्ल ही अकेली ऐसी चीज है जिसे मैं बर्दाश्त नहीं करता. आपके बेटे को हिरासत में लिया जाता है."

इंस्पेक्टर फोर्ड को यह शक क्यों हुआ कि वॉकर के बेटे ने ही उसकी हत्या की थी?

वॉकर के शव की जांच करने पर उसकी जेबों में नकदी मिली थी. आत्महत्या करनेवाला आदमी निश्चित रूप से क्रेडिट कार्ड लेता और हर चीज के लिए सिर्फ दस्तखत कर जाता.

नीलम की चोरी

काच का केस टूटा हुआ था और बेलीनी नीलम गायब था. अजायब-घर में सिर्फ दो ही सूराग नजर आ रहे थे– एक भूरा बाल और एक दर्जन अंगुलियों के निशान– सब के सब गुलाबी. चौकीदार ने बताया कि वह वहां खड़ा था कि काले कपड़े पहने किसी आदमी ने पीछे से आकर एक भाषण के लिए तैयार किये गये नोट्स से उसके सिर पर चोट की. बेहोश होने से पहले, उसका खयाल था कि उसने एक आदमी को यह कहते सुना था कि 'जेरी, अपनी मां को बुलाओ', लेकिन मुमकिन है, उसने कुछ और सुना हो. जाहिरा तौर पर, चोर छत्त के मोखे से अंदर दाखिल हुआ था कि अपने सक्शन जूतों की मदद से किसी इन्सानी मक्खी की तरह दीवार पर चलता नीचे उतरा था. अजायब घर के चौकीदारों ने ऐसे ही मौकों के लिए एक विशाल मक्खीमार अपने पास रखा हुआ था, लेकिन इस बार कोई उन्हें उल्लू बना गया था.

"बेलीनी नीलम क्यों प्राप्त करना चाहेगा कोई?" अजायब घर के क्यूरेटर ने पूछा. "क्या आप नहीं जानते कि यह नीलम शापित है?"

"क्या कहानी है इस शाप की?" इंस्पेक्टर फोर्ड ने तुरंत पूछा.

"सबसे पहले यह नीलम एक सुल्तान के पास था जिसकी मौत बड़ी रहस्यमय परिस्थितियों में हुई, वह सूप पी रहा था कि कटोरे में से एक हाथ निकला और उसने सुल्तान का गला घोंट दिया. फिर यह नीलम एक अंग्रेज लॉर्ड के कब्जे में आया और एक दिन उसकी बीवी ने देखा कि लाट साहब खिड़की में उलटे उगे पड़े हैं. उसके बाद इस रत्न के बारे के बारे में अरसे तक किसी को कोई खबर नहीं थी; फिर बरसों बाद पता चला कि यह टैक्सास के एक करोड़पती के पास है– एक दिन वह अपने दांतों को ब्रश कर रहा था कि अचानक उसे आग लग गयी. यह नीलम हमने पिछले महीने ही खरीदा था, लेकिन लगता है शाप तब भी अपना असर दिखा रहा था, क्योंकि उसे प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद पूरे ट्रस्टी मंडल ने नर्तकों की तरह पांत बनायी और नाचते-नाचते एक पहाड़ी से नीचे कूद पड़े."

"ठीक है," इंस्पेक्टर फोर्ड ने कहा, "यह नीलम दुर्भाग्यशाली भले हो, पर है तो बेशकीमती; और अगर आप उसे दोबारा प्राप्त करना चाहते हों, तो हैंडलमैन डेलिकैटेसन में जाइये और लेनर्ड हैंडलमैन को गिरफ्तार कर लीजिए. नीलम आपको उसकी जेब में मिलेगा."

इंस्पेक्टर फोर्ड ने कैसे जाना कि नीलम-चोर कौन है?

पिछले दिन ही लेनर्ड हैंडलमैन ने किसी से कहा था, "काश, मेरे पास एक बड़ा-सा नीलम होता, तो मैं इस डेलिकैटेसन के व्यवसाय को छोड़कर चला जाता."

एक विकराल दुर्घटना

बर्फ में पड़ी हट्टे-कट्टे पुरुष की लाल-लाल देह के पास खड़ी सिथिया फ्रीम रोते-रोते कह रही थी, "मैंने अपने पति को शूट कर दिया."

"मगर यह हुआ कैसे?" इंस्पेक्टर फोर्ड ने सीधे अपने मुद्दे पर आते हुए सवाल किया.

"हम शिकार पर निकले थे, क्विसी को शिकार से प्यार था, मुझे भी है. थोड़ी देर के लिए हम एक-दूसरे से अलग हो गये. झाड़ियां बहुत घनी थीं. मैंने सोचा, यह कोई वुडचक (अमरीका में पाया जाने वाला खरगोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा चूहा) है. मैंने गोली चला दी. तब तक बड़ी देर हो चुकी थी. उसकी खाल छीलते वक्त मुझे एहसास हुआ कि हमारी तो शादी हुई थी."

"हूं," बर्फ में बने पैरों के निशानों की ओर देखते हुए इंस्पेक्टर फोर्ड ने कहा, "आपका निशाना तो बहुत अच्छा होना चाहिए. गोली ठीक भवों के बीचोबीच लगी."

"अरे नहीं. मेरी खुशकिस्मती ही रही. इस मामले में मैं एकदम अनाड़ी हूं."

"अच्छा-अच्छा." इंस्पेक्टर फोर्ड ने मृतक के सामान की जांच की. उसकी जेब में एक डोरी मिली, सन 1904 का एक सेब मिला और साथ ही एक निर्देशिका, जिसमें यह बताया गया था कि आप तब क्या करें जब आपकी नींद टूटे और आपको पता चले कि आप किसी आर्मीनियाई के बगल में सो रहे थे.

"श्रीमती फ्रीम, शिकार के सिलसिले में आपके पति के साथ घटी यह पहली दुर्घटना है?"

"हां, पहली जानलेवा दुर्घटना, हालांकि एक बार कनाडा के रॉकी पहाड़ों में एक बाज उनकी जन्म-सनद ले उड़ा था."

"क्या आपके पति हमेशा टोपी लगाये रहते थे?"

"नहीं— मगर वे इसे हमेशा अपने साथ जरूर रखते थे और जब भी बहस में कोई इन्हें चुनौती देता था, तो वे टोपी निकालकर दिखा देते थे... क्यों?"

"लगता है, वे खब्ती थे."

"हां-थे."

"तो क्या इसीलिए आपने उनकी हत्या की?"

इंस्पेक्टर फोर्ड को कैसे पता चला कि यह दुर्घटना नहीं थी?

क्विसी फ्रीम जैसे अनुभवी शिकारी ने केवल अधोवस्त्रों में हिरन का पीछा कभी न किया होता. दरअसल श्रीमती फ्रीम ने घर में ही, जब उसके पति चम्मचों से खेल रहे थे, उन्हें गोली मार दी थी और उनके शव को जंगल में ले जाकर उसे दुर्घटना साबित करने के खयाल से 'फील्ड एंड स्ट्रीम' की एक प्रति शव के पास डाल दी थी. जल्दबाजी में वह उन्हें कपड़े पहनाना भूल गयीं. क्विसी फ्रीम केवल घुटन्ना पहने चम्मचों से क्यों खेल रहे थे, यह रहस्य अब भी रहस्य बना हुआ है. □

जन लेखक

अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

वैसे पेशे से तो वह सरकारी आफिस में बाबू था लेकिन मूलतः लेखक था. आफिस के बाद का सारा समय वह किसानों, मजदूरों व ठेले, खोमचेवालों सरीखे मेहनत-कश लोगों के बीच गुजारता था. उसे समाज के इस वर्ग से बहुत हमदर्दी थी. उसे ऐसा लगता था कि समाज के इस वर्ग के साथ सर्वाधिक अन्याय हो रहा है और समाज में किसी भी व्यापक परिवर्तन के लिए इस मेहनतकश वर्ग का संगठित होना बहुत आवश्यक है. वह इस वर्ग के लोगों को संगठित करने का काम करता तथा उनकी सामाजिक स्थिति पर लेख, कविताएं व कहानियां आदि लिखा करता. वह निम्न, व निम्न मध्य वर्ग के लोगों के बीच काफी लोकप्रिय हो गया था.

उसे लगा कि सरकारी नौकरी में होने की वजह से वह खुलकर ईमानदारी पूर्वक लेखन नहीं कर पा रहा है. अगर उसके व उसके परिवार के रोटी की कोई निश्चित व्यवस्था हो जाये तो वह इस तरफ से निश्चित होकर लेखन करेगा और मजदूर वर्ग में क्रांति ला देगा. उसने यह बात मजदूर संगठन के लोगों को बतायी। संगठन वालों ने खुशी-खुशी उसके परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और वह नौकरी से त्याग-पत्र देकर लेखन में एकाग्रचित्त होने की कोशिश करने लगा.

कुछ दिनों बाद उसने महसूस किया कि उसकी लेखनी तेज होने की बजाय मंद होती जा रही है. उसे लगा कि रहने की कोई निश्चित व्यवस्था न होने के कारण वह एकाग्रचित्त नहीं हो पा रहा है. अगर इसका समाधान हो जाये तो वह लेखन के प्रति पूर्ण-रूपेण समर्पित हो जायेगा. मजदूर संगठन के लोगों ने संगठन के कार्यालय के पिछले हिस्से में उसके रहने की स्थायी व्यवस्था कर दी.

कुछ दिनों बाद संगठन के लोगों ने अनुभव किया कि उसका लेखन कार्य धीरे-धीरे शिथिल तथा मजदूर वर्ग के जीवन से दूर होता जा रहा है. संगठन की एक बैठक में लोगों ने उससे इसका कारण पूछा. उसने बताया कि वह लिख तो खूब रहा है लेकिन पत्र-पत्रिकाओं वाले उसकी रचनाएं छाप नहीं रहे क्योंकि प्रकाशन जगत में पूंजी-पतियों का वर्चस्व है.

संगठन के लोगों ने उसकी इस बात पर गंभीरता पूर्वक विचार किया और उसके चुने हुए लेखों का एक संकलन संगठन के खर्चे पर प्रकाशित कराने का निर्णय लिया. जल्दी ही उसका निबंध-संग्रह प्रकाशित होकर आ गया. पुस्तक काफी चर्चित हुयी तथा उनका नाम देखते ही देखते सुर्खियों में आ गया. फिर धड़ाधड़ उसे दो-तीन पुरस्कार भी मिल गये. अब कई प्रकाशक उसके आगे पीछे मंडराने लगे हैं, वह कस्बे को छोड़कर राजधानी में रहने लगा है और प्रकाशकों की फरमाइश पर लिखने लगा है. अब उसके निबंधों में पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध की जगह पूंजीवादी तथा समाजवाद में सामंजस्य की बात होती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैदराबाद का जो जिक्र किया

मुजतबा हुसैन

साहबो, हमें हैदराबाद को छोड़े हुए तेरह बरस बीत गये. अब हम जिंदगी में ठोकरें खाने के लिए हैदराबाद की नहीं बल्कि दिल्ली की सड़कों को जहमत देते हैं. फिर भी साल में दो-तीन मौके ऐसे जरूर आते हैं जब हम हैदराबाद की सड़कों पर फिर से ठोकरें खाने के लिए आ जाते हैं, क्योंकि ठोकरें खाने के लिए इससे बेहतर सड़कें किसी और शहर में सुलभ नहीं हैं. इन तेरह बरसों में हैदराबाद में क्या तब्दीली आयी और क्या नहीं आयी, यह हम नहीं जानते. बस इतना जानते हैं कि तेरह बरस पहले हमारे घर के सामने मेन होल का जो ढक्कन गायब था, वह अभी भी गायब है. हमारे घर के सामने एक पब्लिक नल भी था बल्कि अब भी है. तेरह बरस पहले आम जनता को इस नल की टोंटी बार-बार खोलने में कठिनाई होती थी लिहाजा किसी ने आम लोगों की सुविधा की खातिर इसकी टोंटी गायब कर दी. यह टोंटी अभी तक गायब है. हमारे घर के सामने बीस बरस पहले एक दीवार पर मंजन बनाने वाली एक कंपनी ने अपने मंजन का इश्तिहार मोटे अक्षरों में लिखवाया था. हम यह मंजन तो इस्तेमाल नहीं करते थे मगर अजनबियों को अपने घर का पता समझाने के लिए इस इश्तिहार को जरूर इस्तेमाल करते थे. यह इश्तिहार अब भी वहीं मौजूद है. यद्यपि मंजन बनाने वाली कंपनी कब की मर चुकी है मगर हमारा पता अभी तक जिंदा है. इस मंजन को इस्तेमाल करने वाले भी शायद अब इस दुनिया में जिंदा नहीं हैं. अगर वे मरे नहीं हैं तो उनके दांत जरूर गिर गये होंगे क्योंकि मंजन की खासियत बल्कि खूबी ही ऐसी थी.

यों तो कहने को हैदराबाद ज्यों का त्यों मौजूद है और सुरक्षित है लेकिन इसके बावजूद इधर चंद बरसों से जब भी हम हैदराबाद आते हैं तो हजरत जिगर मुरादाबादी की तरह हमें भी यहां की हर शय में किसी शय की कमी नजर आती है. हैदराबाद वही हैं. फर्क सिर्फ इतना है कि अब हैदराबाद में हमें खुद हैदराबाद की कमी नजर आती है. तेरह बरस पहले शाम को मुअज्जम जाही मार्केट पर निकलते थे तो हर चंद कदम के बाद कोई मिलने वाला पीछे से हमारे कंधे पर हाथ रख देता था कि– "भैया, कहां चले? कैसे हो? किस हाल में हो?" "अब मुअज्जम जाही मार्केट पर निकलते हैं तो उसकी सड़क वही है मगर वह हाथ, जो पीछे से हमारे कंधे पकड़ लेता था, कहीं गायब हो गया है. बहुत हुआ तो इतना होता है कि कोई रिक्शावाला अचानक हमारे कंधे पर हाथ रखकर धक्का दे देता है कि–"अबे, सड़क पर किधर चलता है, फुटपाथ पर चल!" फुटपाथ पर जाते हैं तो कोई बुजुर्ग हमारे कंधे पर हाथ रखकर कहते हैं–"मियां, क्या अंधे हो गये हो? देखते नहीं, फुटपाथ पर पर्देवाली महिलाएं बैठी हैं. सड़क पर जाओ." इधर कई बरसों से हम हैदराबाद में उस मुहब्बत-भरे हाथ की तलाश में हैं जिसकी अचानक गर्मी हमें इस शहर से जोड़ देती थी.

हमें याद है कि पिछले साल मार्च में लंदन की एक सर्द शाम को आक्सफोर्ड स्ट्रीट से गुजर रहे थे कि हूबहू ऐसा ही एक नर्म-गर्म हाथ हमारे कंधे पर रखा गया. पीछे पल्टे बगैर एक लम्हे के लिए सोचते रहे कि एक अजनबी शहर में यह कैसा अजनबी हाथ है जिसका स्पर्श जाना-पहचाना-सा लगता है हमने पीछे मुड़कर देखा तो क्या देखते हैं कि हमारी नौजवानी का दोस्त मजीद अपने बालों में चांदी सजाये खड़ा है. उसने हमसे बेसाख्ता बगलगीर होते हुए कहा, "अरे तुम! तुम आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर कैसे आ गये?"

हमने कहा, "यार, मैं लंदन की आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर कहां हूं. मुझे तो यों लग रहा है जैसे मैं कई बरसों बाद हैदराबाद की आबिद रोड पर खड़ा हूं. मैं तो तुम्हें आबिद रोड पर ढूंढता रहा, और तुम लंदन में क्या कर रहे हो?"

मजीद बोला, "यार, बीस बरस से लंदन में हूं और तुम मुझे अभी तक आबिद रोड पर ढूंढते हो. अजीब अहमक हो! अच्छा, यह बताओ, लंदन में कहां ठहरे हो? अपना पता दो. एक दिन मेरे घर चलो; खालिस हैदराबादी खाना खिलाऊंगा."

हमने कहा, "यार, लंदन आये हुए बीस दिन हो गये. इन बीस दिनों में इतने हैदराबादी खाने खाये हैं कि खुद हैदराबाद में भी पिछले तेरह बरसों में न खाये होंगे. खिलाना ही हो तो अंग्रेजी खाना खिलाओ. मैं तो अंग्रेजी खाना खाने के लिए तरस गया हूं."

मजीद बोला– "यह कैसे हो सकता है कि दो हैदराबादी परदेस में मिलें और बघरे बैंगन बीच में न आयें!"

यार, लंदन आये हुए बीस दिन हो गये. इन बीस दिनों में इतने हैदराबादी खाने खाये हैं कि खुद हैदराबाद में भी पिछले तेरह बरसों में न खाये होंगे. खिलाना ही हो तो अंग्रेजी खाना खिलाओ. मैं तो अंग्रेजी खाना खाने के लिए तरस गया हूं.

सच पूछिये तो पिछले बरस यूरोप, अमरीका और कनाडा के दौर के बाद ही हमें यह एहसास हुआ कि जिस हैदराबाद को हम हैदराबाद की सड़कों पर तलाश करते फिरते हैं वह तो अब लंदन की सड़कों पर मिलता है, पेरिस की गलियों में पाया जाता है, शिकागो के चंचल गौड़ा में मिलना है, टोरेंटो के बंजारा हिल्स में पाया जाता है.

हमें इस बार पिछले साल 10 मार्च की वह शाम याद आ रही है, जब दक्षिणी लंदन के एक हॉल में हमारे दोस्त हबीब हैदराबादी की बेटी की शादी थी. हम शादी के समारोह में पहुंचे तो यों लगा जैसे हम कई बरस बाद हैदराबाद वापस आये हैं. वे सारे हैदराबादी जिन्हें हम हैदराबाद में ढूंढते फिरते थे या वे सारे हैदराबादी जो हैदराबाद में हमसे मुंह छिपाते थे, वे सब के सब वहां मौजूद थे. हैदराबादी शेरवानियों में सुसज्जित इन हैदराबादियों को दोबारा जिंदा-ओ-सलामत पाकर हमें कितनी खुशी हुई, इसका हाल हम क्या बयान करें, हैदराबादी खानों और तरह-तरह की मिली जुली खुशबुओं में बसे हैदराबाद की पुनप्रप्ति हमारे लिए एक अनोखा अनुभव थी.

हमारे एक हैदराबादी दोस्त जिन की रूह के कल्याण के लिए हम पिछले कई बरसों से दुआ करते आ रहे हैं, वह हमें वहां न सिर्फ जिंदा-ओ-सलामत मिले बल्कि उन्होंने अपनी तीसरी अंग्रेजी बीवी का परिचय भी हमसे करवाया. मालूम हुआ, पिछली दो अंग्रेज बीवियों में से एक तो अल्लाह को प्यारी हो गयी और दूसरी किसी और को प्यारी हो गयी!

हबीब हैदराबादी की बेटी की शादी के जिस समारोह का हम जिक्र कर रहे हैं उसकी विशेषता यह थी कि दूल्हा अंग्रेज था और एक हैदराबादी लड़की से शादी करने की कोशिश में मुसलमान हो गया था.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके असली अंग्रेजी नाम के साथ उसके नये इस्लामी नाम को जोड़ने से उसका नया नाम 'अल्फ्रेड इरफान' बन गया था. शादी इस्लामी तरीके से होती तो कई बात भी थी मगर यहां शादी हैदराबादी रस्मों के अनुसार हो रही थी. दुल्हन के मामा और हमारे दोस्त डाक्टर मुफ्ती तबस्सुम शादी का सेहरा हैदराबाद से खास तौर से बनवाकर ले आये थे. सेहरे को सही-सलामत लाने की कोशिश में मुफ्ती तबस्सुम का सूटकेस सीरियन एयरलाइंस के हवाई जहाज में ही रह गया था और वह जब से लंदन आये थे, एक ही सूट पहनकर शादी की रस्मों में बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे.

इस हैदराबादी सेहरे की खूबी यह थी कि इसमें से दूल्हे का चेहरा बिल्कुल दिखायी नहीं देता था. हमारे हैदराबादी दूल्हे कभी-कभी सेहरे को अपने चेहरे से हटाकर बारातियों को देख भी लेते हैं मगर अल्फ्रेड इरफान ने हैदराबादी रस्मों का इतना लिहाज रखा कि किसी अपरिचित की नजर अपने चेहरे पर पड़ने नहीं दी.

दूल्हे के अंग्रेज रिश्तेदारों और दोस्तों की सुविधा के लिए हैदराबादी रस्मों की नजाकतों के बारे में सरल अंग्रेजी भाषा में एक तकरीर भी की गयी. अंग्रेजों को बताया गया कि निकाह के बाद जब छुहारे उछाले जायें तो उन्हें लूटा जाये. अंग्रेजों का कॉलोनी राज्य जब से खत्म हुआ है, वे लूटमार के आदी नहीं रहे, मगर छुहारों की लूटमार में उनकी प्राकृतिक क्षमता काम कर गयी. हमने दो बादाम, एक खजूर और मिसरी की एक डली लूटी थी. हम लूट का माल हाथ में लिये बैठे थे कि एक अंग्रेज़ ने अचानक हमारे हाथ को जबरदस्ती मरोड़कर यह लूट का माल हासिल किया और भीड़ में गायब हो गया.

निकाह के बाद हमारे दोस्त हबीब हैदराबादी की तरफ से डिनर का इंतजाम था. डिनर क्या था, हैदराबादी खानों की नुमाइश थी. तीन तरह की विरयानी, दही की चटनी, कबाब, बधारे बैंगन, दम का मुर्ग, डबल का मीठा, खूबानियों का मीठा, सेवैया—सब कुछ था. इस डिनर की खूबी यह थी कि यह बिला-लिहाज मजहबी-मिल्लत सबके लिए था. दूल्हे के अंग्रेज रिश्तेदारों की खिदमत में भी यही हैदराबादी खाना पेश किया गया. लिहाजा हमने देखा कि एक अंग्रेज दही की चटनी में डबल का मीठा मिलाकर न सिर्फ खा रहा था बल्कि हैदराबादी पकवान की तारीफ

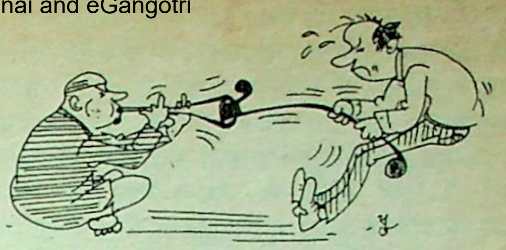

भी कर रहा था. एक अंग्रेज कबाब में बधारे बैंगन मिलाकर खा रहा था. एक और अंग्रेज मुर्ग की टांग की मदद से खूबानियों का मीठा खा रहा था. अंग्रेज जिस तरह हैदराबादी तहजीब को खा रहे थे उसे देखकर हमारे मुंह में पानी भर-भर आ रहा था हमारे दोस्त मुफ्ती तबस्सुम ने कई घंटों की मेहनत के बाद मेहमानों के लिए हैदराबादी पान भी बना रखे थे. ये पान खाने के बाद मेहमानों को पेश किये गये. अंग्रेजों को आसान अंग्रेजी में बताया गया कि अगर पान खाने के बाद मुंह से लाल रंग का थूक निकले तो उससे परेशान होकर डाक्टर के पास जाने की जरूरत नहीं हैं. अंग्रेज थूकने को बहुत बुरा समझते हैं, लकिन उस दिन बहुत अंग्रेजों को पान खाने के बाद पहली बार पता चला कि थूकना किसको कहते हैं और थूकने के हैदराबादी आदाब क्या हैं. एक अंग्रेज देर से महफिल में आया. उसने लोगों को पान खाते देखा तो खाता ही चला गया. हमने सोचा, यह अंग्रेज तो पान का बहुत शौकीन मालूम होता है. मगर जब उसने आस्तीन चढ़ाकर पान पर पान खाना शुरू किया तो हमने डरते-डरते पूछा— "भैया, खानावाना भी खाया या नहीं?" वह बहुत हैरत के साथ हम से पूछने लगा— "क्या इस खाने के अतिरिक्त और भी कुछ खाने का इंतजाम है?"

गर्ज, लंदन में कयाम के दौरान हमने हैदराबादी तहजीब को जिस तरह परवान चढ़ते देखा उससे हमारा दिल बाग-बाग हो गया. हमारे दोस्त आमिर मूसवी और अब्बास जैदी के यहां हैदराबादी निहारी और बकरे की जितनी जबानें खायीं, उतनी कभी और कहीं नहीं खायीं. आमिर मूसवी ने हमें बताया कि हैदराबादियों के लंदन आने से पहले अंग्रेज अपनी जबान की अहमियत से तो परिचित थे लेकिन बकरे की जबान की अहमियत और उसके फायदों से अनजान थे. अंग्रेजों ने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबान के अतिरिक्त बकरे की जबान इज्जत करना हैदराबादियों से ही सीखा.पहले अंग्रेज कसाई बकरे की जबान को फेंक देता था. मगर अब हैदराबादियों के इंतजार में संभालकर रेफ्रीजिरेटर में रखता है. अगर कोई हैदराबादी नहीं आता तो खुद खा लेता है. माना कि अंग्रेजों ने हमें बहुत कुछ सिखाया, मगर तुम यह बात क्यों नहीं स्वीकार करते कि हैदराबादियों ने उन्हें बकरे की जबान खाने का गुर सिखाया, हैदराबादियों के आने से पहले अंग्रेज दुनिया की एक बड़ी लज्जत से वंचित थे. सच तो यह है कि अब बाज अंग्रेज भी सुबह को खिचड़ी, अडों का आमलेट, अचार और इमली की चटनी, पापड़ वगैरा खाने लगे हैं. लंदन में हमारा कयाम कयामुद्दीन के यहां था और वह लंदन में ठहरे ही इसलिए थे कि यहां रहकर खालिस चीजों की मदद से लजीज हैदराबादी खाने बनाये जा सकते है.

लंदन तो खैर लंदन है, पेरिस में हम चार दिन के कयाम के लिए अपने दोस्त मसरूर खुरशीद के यहां पहुंचे तो उन्होंने जाते ही अपना रेफ्रीजिरेटर खोलकर दिखा दिया कि— ''भैया, मैंने इसमें पूरे एक हफ्ते के हैदराबादी खाने पकाकर रख दिये हैं. तुम सिर्फ चार दिन क्यों रहते हो, एक हफ्ता रहो. यह रही निहारी, ये रहे बघारे बैंगन, यह रही दही की चटनी, यह रही खिचड़ी और यह रही...''

हमने अपने और उनके मुंह पर हाथ रखते हुए कहा— ''खुदा के लिए अब हैदराबादी खानों का जिक्र न कीजिए. मुझे उबकाई आ रही है. क्या हैदराबादी तहजीब अब सिर्फ पकवान में ही अटक कर रह गयी है!''

बोले, ''यह बात है तो लो मुझसे मखदूम के शेर सुनो, अमजद हैदराबादी की रुबाइयां सुनो, शाज तिमकनत के शेर सुनो. मैं तो जरूरत पड़ने पर कंवलप्रसाद कंवल के भी शेर सुना सकता हूं.''

मसरूर खुरशीद का घर हैदराबादी अदीबां और शायरों की किताबों से भरा पड़ा है. घर में इतनी किताबें हैं कि उनका पलंग बड़ी मुश्किल से घर में समा पाता है. पेरिस में हमारे पहुंचते ही उन्होंने अपना पलंग हमारे लिए खाली कर दिया था और खुद हैदराबादी अदीबों और शायरों की किताबों पर सो जाते थे हैदराबादी तहजीब उनके लिए सिर्फ खाना ही नहीं बल्कि ओढ़ना-बिछौना भी था.

पेरिस में पहले ही दिन पेरिस की सैर करवाने के लिए हमें भूमिगत ट्रेन मेट्रो से लेकर चले तो बोले—जरा इस स्टेशन का नाम पढ़िये.''

हमने रोमन लिपि में फ्रांसीसी नाम को पढ़ने की कोशिश की तो पता चला कि स्टेशन का नाम 'बवासीर' है. हमने कहा— ''यह स्टेशन है या बीमारी? पेरिस की सैर का आरंभ ही हम गलत स्टेशन से कर रहे हैं!''

बोले, ''कोई फिक्र की बात नहीं. ऐफिल टावर से करीब आप जिस अगले स्टेशन पर उतरेंगे, उससे आपकी परेशानी दूर हो जायेगी.''

ऐफिल टावर से करीब स्टेशन पर उतरे तो मसरूर खुरशीद ने कहा, ''अब इस स्टेशन का नाम पढ़िये.''

हमने नाम पढ़ा तो कुछ इस तरह पढ़ा गया, ''बहरे हकीम!''

वह हंसकर बोले, ''जब हम बवासीर से अपने हैदराबाद के बहरे हकीम साहब के पास पहुंच रहे हैं. तो इसमें डरना कैसा— जो कूए-यार से निकले तो सूए-दार चले!''

हम यूरोप के हैदराबादियों को निबटाकर अमरीका पहुंचे तो एहसास हुआ कि अमरीका में शायद कोई ऐसा शहर होगा जिसमें हैदराबादी आबाद न हों. हम अपने भाई डाक्टर असगर हुसैन और एक पाकिस्तानी डाक्टर फरहत खां के साथ वाशिंगटन से मियामी तट तक के कई हजार मील के सफर पर खाना हुए तो अमरीका के एक राज्य जॉजिया से गुजरते हुए हमें शाम के वक्त एक छोटा-सा कस्बा दिखाई दिया. शायद तलादीगा जैसा कोई नाम था उसका.पेशावर के डाक्टर फरहत खां को यह शिकायत है कि हैदराबादी न सिर्फ सारे अमरीका में फैले हुए हैं बल्कि उनकी तादाद अमरीका के मूल निवासी रेड-इंडियंस से भी ज्यादा हैं, अगर कहीं से पत्थर भी उठाओ तो उसके नीचे से एक हैदराबादी फर्शीसलाम करता हुआ बरामद होता है. हमने कहा, ''इस वक्त हम जिस छोटे-से कस्बे से गुजर रहे हैं उसकी आबादी मुश्किल से डेढ़-दो हजार होगी. इसमें तो कोई हैदराबादी नहीं होगा.''

फरहत खां बोले, ''लगाइये इसी बात पर शर्त..''

हमारे भाई असगर हुसैन ने बीच में टोककर कहा, ''शर्त न लगाइये, आप नुक्सान में रहेंगे. हमें आज की रात इसी कस्बे में रुकना है. मेरा एक हैदराबादी दोस्त डाक्टर असद यहां रहता है.''

डाक्टर असद, जो चंचलगौड़ा के रहने वाले हैं, इसी छोटे से कस्बे में एक ऐसी मकान में रहते हैं जो महल से कम नहीं. घर के बाहर तीन-चार मोटरें खड़ी थीं. मिलकर बहुत खुश हुए. मगर उनसे ज्यादा उनके वालिद हमसे मिलकर खुश हुए जो छह महीने से अमरीका के इस छोटे-से कस्बे में रह रहे थे. कहने लगे, ''छह महीनों से अपने बेटे के सिवाय किसी और हैदराबादी की सूरत नहीं देखी. मैं तो अमरीका के ऐशो-आराम से तंग आ गया हूं. चंचल गौड़ा बहुत याद आता है. एक-दो महीनों में वापस चला जाऊंगा.''

दूसरे दिन सुबह को वह अपने बेटे का मकान और जायदाद तफसील से दिखाने के लिए हमें ले गये. एक टीले पर खड़े होकर उन्होंने कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू किया, "यह जो पहाड़ आप देख रहे हैं, वे मेरे बेटे के हैं. वे जो बादलों के नीचे जंगल नजर आ रहे हैं वे मेरे बेटे के हैं, यह जो झील बह रही है वह भी मेरे बेटे की है..."

हमने बड़े मियां की बात को काटकर कहा, "और वह जो आसमान पर सूरज चमक रहा है, वह किसका है?"

फ़ौरन अपने कानों पर हाथ रखकर बोले, "नऊज़ बिल्लाह! इस सूरज से मेरे बेटे का कोई संबंध नहीं है. यह किसी और का है!"

शिकागो में हम अपने वैज्ञानिक दोस्त मुजफ्फरुद्दीन फारुकी के मेहमान थे. उनकी बीवी ने पहली ही शाम को अंबाड़े का भाजी खिलाकर हमें आश्चर्यचकित कर दिया. पूछा, "अंबाड़े की भाजी, और वह भी शिकागो में?"

बोलीं, "यह कोहीर से आयी है. इसे बेवक्त जरूरत के लिए सुखाकर रख लिया है."

मुजफ्फरुद्दीन फारुकी बोले, "मैं पिछले चंद बरसों से इस भाजी को अपने किचिन गार्डन में उगाने के तजुर्बे कर रहा हूं. इंशा-अल्लाह दो-एक बरस बाद इस तजुर्बे में कामयाब हो जाऊंगा..."

"और इसी के लिए शायद आपको विज्ञान का नोबल पुरस्कार भी मिल जाये!" हमने हंसकर कहा.

शिकागो में ही हमें अपने पुराने दोस्त अजीजुर्रहमान मिले उन्होंने अपनी आत्म-तुष्टि के लिए ठेठ हैदराबादी गालियों का ठेठ अंग्रेजी में तर्जुमा कर रखा है जिन्हें वह आये दिन वहां के स्पानी ड्राइवरों को पाबंदी से देते रहे हैं. हमने पूछा, "स्पानी ड्राइवर नाराज तो नहीं होते?"

बोले, "सच पूछिये तो हैदराबादी गालियों से इतनी विलक्षणता होती है कि ये जब उर्दू में ही बुरी नहीं मालूम होतीं तो तर्जुमे की छलनी से गुजरने के बाद अंग्रेजी में क्या बुरी मालूम होंगी. मैंने तो बस अपनी आत्म-बुद्धि के लिए इनका तर्जुमा कर रखा है कि चलो, अपने ढंग से गाली दे दी अपने वतन से अपना रिश्ता बनाये रखा."

हमें शिकागो के चंचलगौड़ा में भी जाने का मौका मिला. यहां ज्यादातर वही लोग रहते हैं जो पहले हैदराबाद के चंचलगौड़ा में रहते थे. इसमें और हैदराबाद के चंचलगौड़ा में हमें कोई समानता नजर नहीं आयी. एक साहब ने इसी चंचलगौड़ा में हमें खाने पर बुलाया. हमने उनसे पूछा, "यह कैसा चंचलगौड़ा है जहां भैंसे नहीं बंधी हुई हैं?"

बोले, "भैंसे तो हमारे जहनों में बंधी हुई हैं!"

पूछा, "तो फिर दूध भी वहीं देती होंगी?"

एक आह भरकर बोले, "अब इस जिक्र को जाने दीजिए. खाना शुरू कीजिए. अल्लाह दिया है!"

अचानक इस 'अल्लाह दिया' को सुनकर हमें यकीन आ गया कि हम सचमुच हैदराबाद के चंचलगौड़ा में बैठे हैं.

हमने उन साहब से कहा, "मगर जरा सोचिये कि अल्लाह ने आपको जो कुछ भी दिया है वह हैदराबाद से कितनी दूर लाकर दिया है!"

अपनी आंखों में आंसू लाकर बोले, "आप ठीक कहते हैं. अगर अल्लाह ने इसका दसवां हिस्सा भी हमें हैदराबाद में दिया होता तो चंचलगौड़ा की गलियां छोड़कर यहां क्यों आते!"

हमने बात को और आगे नहीं बढ़ाया, क्योंकि आंसू उनकी पलकों पर छलकने को बेकरार थे.

और हमें यों लगा जैसे हैदराबाद एक शहर नहीं, फैलकर पूरी सृष्टि बन गया है! □

अनुवाद : लक्ष्मी चंद्र गुप्त

दीवार और आदमी

श्यामाकांत दुबे सैलानी

एक बहुत बड़ी दीवार थी. सबने उसे इस शर्त पर बनाया था कि वह उनकी हवा का रास्ता नहीं रोकेगी. बाद में वह मुकर गयी (जैसा कि पृथ्वी का इतिहास चलता है, उसी क्रम में) और वह लोगों की सांस घोंटने लगी थी. सारी रोशनी उसने समेट ली व लोगों के मुंह पकड़ लिये गये, अब वे बातें नहीं कर सकते थे. सभी विवश थे क्योंकि सभी को सिर की चिंता थी. कौन दीवार में सिर मारता?

तभी एक आदमी आगे आया. उसने दीवार में लात मारी. दीवार बज उठी, हिल गयी. दीगर आदमी भी उसके साथ चिल्लाने लगे थे. दीवार ने क्रोध में ठूंस दिया ताकि वे सबको दीवार की नींव का रहस्य न बता सकें.

एक दिन दीवार ने सोचा, वह अभेद्य है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता. जनता से हाथ उठवाने वह सड़क पर निकल पड़ी. एक गल्ती दीवार ने यह कर दी कि नींव का रहस्य जानने वालों को उसने छेड़. उन्होंने नींव का रहस्य जनता को बता दिया व दीवार तोड़ डाली गयी.

किंतु जनता का दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ था. नाव में सवार सभी व्यक्ति नाव स्वयं खेना चाहते थे. सभी लड़ पड़े व जनता असमंजस में पड़ गयी. दीवार से लड़ाई का अगुवा चिल्लाते-समझाते मर गया. नाव के सवार लड़ते रहे और, अवसर पाकर दीवार ने जनता को फुसला लिया एवं पुनः खड़ी हो गयी.

हवा तो पर्याप्त अब भी नहीं मिलती, रोशनी भी खास जगह ही है और भूखों की संख्या अब भी बढ़ रही है. मगर दीवार को अब कोई डर नहीं क्योंकि वह सतर्क है. दीवार अब मुंह नहीं पकड़ती दिमागों पर काबिज हो रही है (क्लीन कर रही है) और आदमी भूखा है पर उसे अर्जुन नहीं शिखण्डी दिखते हैं. दीवार सुरक्षित है क्योंकि उसके पास शिखण्डियों की काफी संख्या है.

फिर भी सबसे बड़ी बात यह है कि दीवार से लड़ाई का अगुवा कुछ असफल अवश्य हुआ हो लेकिन उसने यह आशा अवश्य उत्पन्न कर दी कि दीवार से टकराया जा सकता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ता, क्रांति और ट्रैजिडी

यशवंत व्यास

वह भौंक रहा था और लगातार भौंके जा रहा था. इस मुहल्ले से उसके ताल्लुकात सिर्फ नौ महीने से थे. कुछ लोगों का विचार था कि वह गुप्ताजी द्वारा पालित है और कुछ सज्जनों का ख्याल था कि शर्माजी की बिटिया द्वारा प्रदत्त रोटियों से उसका स्नेह सूत्र जुड़ गया था. बिटिया शास्त्रोक्त बिधि से वर पाने वास्ते गुरुवार का व्रत करती थी और इसमें किसी कृष्णवर्णी श्वान को रोटियां खिलाने का आवश्यक विधान था. बहरहाल, इन दिनों, वह कुत्ता इसी मुहल्ले का था और आज अपनी औकात पर उत्तर आया था. बार-बार भौंक रहा था और स्त्रियों पर झपटने की मुद्रा भी अपना रहा था.

कुत्ते आमतौर पर तभी भौंकते पाये जाते हैं जब मुहल्ले से नाजायज ताल्लुकात बनाने का इच्छुक कोई व्यक्ति उधर आये. आज वह अपने ही मुहल्ले वाले/वालियों पर झपट रहा था. उसकी सखी कुछ देर उसे देखती रही, फिर कुछ क्षण वह भी कर्तव्य के अंतर्गत भौंकी, लेकिन अंततः चुप होकर उसके पास पहुंच गयी.

कुतिया क्रांति के फेर में पड़ी थी और कुत्ता उसे पेट भरने के लिए उकसा रहा था. उसे अंदाजा होने लगा कि क्रांति का संबंध भूख से है. और वह टुकड़े टटोलकर पेट भर लेने के चक्कर में क्रांति से महरूम रह जायेगी. उसके कान खड़े हो गये, पूंछ हिलना बंद हो गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर को भौंकना स्थगित हो गया, जैसे शर्माजी की बिटिया से मिलने आया नौजवान चारदीवारी कूदकर वापस चला गया हो. कुत्ते ने कुतिया को देखा, आश्वस्त हुआ कि उसकी मुद्राओं में शील-तत्व का प्राधान्य बराबर बना हुआ है. हालांकि उसे बुरा लगा था कि वह बीच भौंकने में चली आयी थी. राष्ट्रीय अखंडता का नारा लगाते हुए मंत्री के करीब यदि सेक्रेटरी आ जाये, तो राष्ट्र के अहित का क्षण आ पड़ता है. ऐसे में मंत्री, सेक्रेटरी को देश की अखंडता की खातिर प्रथमतः मंच से और अंततः अपने निजी सार्वजनिक जीवन से भी धक्का मारकर भगा सकता है. लेकिन कुत्ता, मंत्री नहीं था. वह कुतिया को निहारने लगा. कुतिया ने जिज्ञासुभाव से उसे देखा.

'क्योंजी? क्यों भौंक रहे हैं?'

'मैं देख रहा हूं कि बूर्जुआ ताकतें इकट्ठी हो रही हैं. पूंजीवाद के नाखून तेज हो रहे हैं. क्रांति की सख्त जरूरत है.'

कुतिया समझी कि क्रांति कोई नई किस्म की डबलरोटी है, जो बड़ी सख्त होती है. बच्चूमल ने बेकरी का अटाला साफ किया होगा तो कभी धूरे के ढेर में पड़ी होगी. आज उसी की तलब लगी है.

'क्रांति का ही मामला है? चलो पड़ौस के मुहल्ले में जो नई बेकरी खुली है, उसके सामने पड़े ढेर में तलाश लें.'

कुत्ता नाराज हो गया, कुतिया की बुद्धि पर उसे तरस आया. उसे पहले एक जनवादी लेखक के यहां पलने का मौका मिला था. वह लेखक पहले कुत्ते पालने के विरुद्ध था. तीन गोष्ठियों, चार वर्कशापों और सौ से ज्यादा चर्चाओं में वह श्वान विरोध को मार्क्सवाद के समर्थन का पर्याय सिद्ध कर चुका था. कुत्ता पूंजीवाद का प्रतीक है, इस पर वह नियमपूर्वक बहस करता था, चाहे लघुपत्रिका में हो या चर्चा गोष्ठी में.

महानगर के सेठ रामधन कालेज का राजनितिशास्त्र विभाग संभालते हुए भी,जनवादी होने में कामयाब लेखक तमाम श्वान संदर्भों से संघर्ष कर रहा था। सही मायनों में यह अस्मिता का संघर्ष था. संघर्ष का यह लावा टी.वी. पर 'यू एंड योर पेट्स' देखते समय भी उबलता रहता था. वह चाहता था कि ऐसे घोर अश्लील कार्यक्रम बंद कर दिए जाएं, मगर उसका पुत्र मानता न था. लेखक मानव स्वतंत्रता के अधिकारों का कायल था. बच्चा कुत्ते देखना चाहता था, जनवाद के हामी लेखक को आपत्ति नहीं होनी थी, तो नहीं हुई. टी.वी. चलता रहता, दोनों अपने अपने हिसाब से कुत्ते देखते।

बच्चा कुछ समय बाद किसी बोर्डिंग स्कूल में चला गया, ताकि देश के लायक बना रह सके. अब धर पर पत्नी अकेली रह गई. कॉलेज के ट्रस्टियों का जनवाद से कोई लेनदेन नहीं था, इसलिए कॉलेज– परिसर में लेखक को चार घंटे उपस्थित रहना अनिवार्य था. ये मौजूदा सड़ीगली व्यवस्था का दोष था, मगर उसे बदलने के लिए लंबे संघर्ष की जरूरत थी. लेखक, एक तदर्थ प्राध्यापक के तौर पर ऐसे संघर्ष करने के विरुद्ध था. लिहाजा उसने व्यवस्था बदलने का संघर्ष सेवानिवृत्ति तक के लिए स्थगित कर दिया. इधर जनवाद की आग बराबर सुलगी हुई थी, उधर घर पर पत्नी अकेली रहकर असुरक्षित कम, बोर ज्यादा महसूस करती थी.

चूंकि लेखक श्वान विरोधी रहा था, उसने पत्नी की श्वान ले आने की सलाह को पहले त्याग दिया किंतु फिर, कॉफी हाउस में उसने गहन विचार किया तो पाया कि जनवाद, कुत्ते, कुत्ते को घर लाने की इजाजत देता है, बशर्ते उसके गले में पट्टा हो. जंजीर, मूल्यों के हिसाब से छोटी-बड़ी करके उसे बराबर अपने बस में रखा जा सकता है. बूर्जुआ ताकतों से संघर्ष के लिए, उन्हीं के मंच को उन्हीं के खिलाफ इस्तेमाल कर लेना क्रांतिकारिता का ही एक अंग है. अगर वह एक श्वान को घर लाये, उसे जनवादी के रूप में प्रशिक्षित करे और जब उसकी पूंछ जनवादी तरीके से हिले, कान और नाम जनवाद सुनने तथा सूंघने लगे, तब ऐसे प्रतिबद्ध श्वान को वह शेष श्वानों की टोली में छोड़ दे, तो ये एक काम जनवाद के पक्ष में एक पर्चा पढ़ने से बड़ा होगा. एक जनवादी कुत्ता, कई कुत्तों को जनवादी बनायेगा. इन कुत्तों की पीढ़ियां जनवादी

पैदा होंगी और आहिस्ता-आहिस्ता श्वानों का जनवाद भले घरों की स्त्रियों की गोद से लेकर मर्सिडीज़-मारूति की सीटों तक पहुंच जायेगा. यह क्रांति का सूत्र था और प्राध्यापक लेखक गद्गद हो गया. उसने बैरे को टिप दी थी और भागते-हांफते एक पिल्ला लाकर बीवी की गोद में डाल दिया. क्रांति का बीज पड़ गया. लेखक प्रसन्न था, जनवाद की एक वफादार फसल के लहलहाने की बाट जोहता हुआ.

मगर कुत्ता कुछ बड़ा हुआ तो पता चला कि व्यवस्था ने धोखा कर दिया था. लेखक की बीवी ने पहचान लिया कि वह दोगली नस्ल का है. नस्ल पहचानने में, प्रतिबद्ध व्यक्ति की पत्नी पारंगत होती है. लेखक फिर एक ऐसी साजिश का शिकार होते-होते बच गया, जो जन विरोधी तत्वों की बनायी हुई थी. धर्मपत्नियां, मार्क्सवादियों को ऐसे संकट के समय अवश्य बचा लेती है. जनवाद में दोगलेपन को जगह नहीं है. लेखक ने दोगले श्वान को हरावल दस्ते से बाहर कर दिया. वह उसे घर से निकाल, दुनिया में फेंक आया.

व्यवस्था के चक्रव्यूह को भेदने की जो थोड़ी-बहुत अदा उक्त श्वान ने वहां सीखी थी, वह उसके जवान होते-होते ठाटें मारने लगी. क्रांति जैसे जबर्दस्त शब्द उसने लेखक के वहां सीख लिये थे, तभी आज वह अपने सम्मुख बड़ी कुतिया की बुद्धि पर तरस खाने लायक हो पाया था.

कभी वह कुतिया के पीछे नाक सुंसुआता चिचियाता घूमता रहता था, पर क्रांति शब्द ने कुतिया को उसका फासला एहसास करा दिया था. कुत्ता अब चिंतक था. आज वह अकड़ रहा था और कुतिया क्रांति का अर्थ जानने के लिए घिघिया रही थी.

उसने स्पष्ट किया कि कुत्ता नैतिकता और यथार्थवाद का असली फॉलोअर है. महाभारत में भी वह पांडवों की तरफ था और कौरवों के विरुद्ध. अत्याचारी अनाचार के विरुद्ध उसने अपना लहू ठेठ हिमालय में जाकर ठार कर दिया. कुतिया को लगा, कुत्ता मुहल्ले में ठार होना चाहता है. लेकिन इस संदर्भ में जो उपयुक्त माहौल चाहिए था, वह बन नहीं पाया है. माहौल बनाने की गरज से उसने पूछा:

"क्यों ये धूरे का ढेर हिमालय नहीं लगता?"

कुत्ता दुम सख्त करके बोला, "तुम्हारा दिमाग इस देश के लोगों की तरह ठस और बोदा हो गया है. तुम समझो कि साम्यवाद, विश्वसनीयता, ईमानदारी और क्रांति के लिए भौंका जाना चाहिए. जो इनके विरुद्ध जाये उसके सीने में दांत गड़ा दो."

कुतिया के दिमाग का कार्यक्षेत्र एक नेता की अंगुली काट खाने की जानकारी से अधिक नहीं रहा था. दो वरिष्ठ नेताओं के कुत्ते एक दूसरे पर गुर्रायें और एक का कुत्ता दूसरे को काट ले तो अखबार में हेडलाईन बनती हैं, यह जानकारी उसे नहीं थी. उसे बस इतना पता था कि जिस कुत्ते ने मुहल्ले में पिछले साल सुलभ शौचालय का उद्घाटन करने आये एक नेताजी को काट लिया था वह, बाद में पागल हो गया. इस ऐतिहासिक दुर्घटना का सत्य कुतिया पर काबिज हो गया था. तब से काटने का जिक्र आते ही, वह एकदम ठंडी हो जाती, उसकी आंखें ठहर जातीं, कान लटक जाते, फकत पूंछ तेजी से हिलने लगती.

कुतिया की हिलती पूंछ ने सख्त पूंछवाले कुत्ते का मन करूणा से भर दिया. साम्राज्यवादी शिकंजों में फंसी कुतिया की निरीहता पर भर आये गले से उसने कहा, "तुम्हें मालूम है भूख ऐसी चीज है जो साम्यवाद और कुत्ते में फर्क नहीं करती. भूख से वफादारी पैदा होती है. तुम्हारी दुम बताती है कि तुम वफदार हो रही हो. तुम्हें भूख लगी है. मुझे भौंकने दो, तुम धूरे में कुछ बासी रोटी-सब्जी के टुकड़े टटोलो. सामने के सफेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकानवाली ने फेंके हैं, मैं पहले जब भौंक [illegible] था.

कुतिया क्रांति के फेर में पड़ी थी और कुत्ता उसे पेट भरने के लिए उकसा रहा था. उसे अंदाजा होने लगा कि क्रांति का संबंध भूख से है. और वह टुकड़े टटोलकर पेट भर लेने के चक्कर में क्रांति से महरूम रह जायेगा. उसके कान खड़े हो गये, पूंछ हिलना बंद हो गयी. कुत्ते की आंखों में चमक आयी. तुमने भूख को जीत लिया है. अब वफदार बने रहने की कोई जरूरत नहीं है. ये वफा झूठ है, वो क्रांति सत्य है. अब तुम मेरे साथ भौंक सकती हो."

तभी एक सुंदर हृष्टपुष्ट नौजवान कुत्ता अपनी जंजीर पकड़े हुए मालिक के साथ तफरीह करता हुआ गुजरा. कुतिया उसके सौंदर्य पर तनिक आकर्षित हुई, क्रांतिवादी कुत्ता अथड़ गया. उसने हिकारत से देखते हुए कुतिया को समझाया, "वॉचडाग्स है, बंधुआ कहीं के!" ऐसा कहकर मन ही मन उसने ऐसी संतुष्टि महसूस की जैसे उस नौजवान कुत्ते की खूबसूरती मिट्टी में मिल गयी हो. कुतिया उससे सहमत दिखी. कुत्ते ने जमीन पर पंजा मारकर कुछ मिट्टी खोद दी. फिर गुरगुराया. कुतिया ने उसका अनुसरण किया. दोनों के दोनों गुरगुराने लगे.

तभी प्रोफेसर आर्य का कुत्ता सत्यप्रकाश बंद गेट के ऊपर पैर रखकर खड़ा हुआ और थूथन ऊंचा करके रोने लगा. कुत्ता पर्याप्त झबरीला था और भारतीय संस्कृति का पोषक होकर प्रोफेसर बना. सिर पर चंदन का ताजा तिलक लगवाये हुए था. कुमारी आर्य उसे 'प्लीज डियर, स्टॉप इट!' कहकर रोने से निरंतर मना करने लगी. अंदर से आवाज आयी, "व्हाई सत्यप्रकाश इज वीपिंग? — ये अपशकुन होता है. प्लीज स्टॉप हर."

क्रांतिवादी कुत्ते ने साथी कुतिया को देखा, "प्रतिक्रियावादी है! रोता है!! क्रांति करने के लिए गेट तोड़कर घूरे के पास आना पड़ता है जो घर की रोटियां तोड़ता है, वो घर का गेट नहीं तोड़ सकता!"

कुतिया ने जमीन पर एक और पंजा मार दिया. उसे नये शब्द समझ नहीं आते थे, पर इतना जरूर समझ में आ गया था कि क्रांति कोई निहायत जरूरी किस्म की चीज है. सत्यप्रकाश को गोद में उठाकर कुमारी आर्य अंदर ले गयी और कुतिया ने धरती में दूसरा पंजा मार दिया.

कुत्ता खुश हो गया, उसे कुतिया पर फख्र हो आया. कुछ मामलों में कुत्ते फख्र जल्दी करने लगते हैं, कभी सरकारी दूधरोटी पर या कभी उस [illegible] नहीं बैठ सकते थे. कुत्ता जानता था कि बड़े लोगों की गोद पाने के लिए कुत्तापन एक आवश्यक विशेषता है. कुतिया के ताजा कर्म से उसे लगा जैसे मुहल्ले से राजधानी तक कि गोदें कुत्तों से भर गयी हैं और नतीजे में हर गोदवाला बड़ा आदमी बन गया है.

हुलककर कुत्ते ने कहा, "ये देश बदलने वाला है. जनयुग आयेगा, तब कोई आदमी छोटा न रहेगा. हम चोरों और बेईमानों पर भौंकनेवाले, सदा से स्वामी के चौकीदार, अब नये जमाने के आगमन की राह बना डालेंगे.

कुतिया को लगा, कुत्ता कुत्तापन भूलकर कुछ और हो गया है. वह कुछ पास खिसक आयी. "फिर हमें घूरे में डबलरोटी ढूंढ़ने की जरूरत न होगी? रोटियां आसानी मिल जाया करेंगी? फिर ही चौकीदारी क्यों करेंगे? भूख खत्म, भौंकना खत्म."

दोनों की दुम सख्त होकर उठ गयी. इधर उधर घूमते हुए कुछ कुत्ते ने-और कुंकुआते पिल्ले भी उनके करीब इकट्ठे हो गये. कुत्ते ने पिछले पैर से जमीन खोदी और एक परिवर्तनकारी भाषण का मूड बना लिया. जिन दोनों वह लेखक के घर में रह रहा था, उन दिनों वह क्रांतिकारी साहित्य की एक जबर्दस्त अनियतकालीन लगुपत्रिका के रैपर पर अक्सर बिस्किट खा लिया करता था. शब्दों के सुसंस्कार जाग उठे: "दोस्तो, अब पूंजीवादी टुकड़े खाकर पेट भरने का समय नहीं रहा. कमीशन, शोषण, बंधुआ, स्वामी भक्ति जैसे लफ्जों में आग लगा दो."

पिल्लों ने कुंकुआना बंद कर दिया. श्रोता श्वानों के रोम-रोम खड़े हो गये. उन्हें विषय पता नहीं था, पर प्रस्तुतिकरण के चमत्कार ने उन्हें जकड़ लिया था. क्रांतिकारी कुत्ता समझा कि सब प्रतिबद्ध हो चले हैं. वह विषय निगल गया, सिर्फ आवाज उगलने लगा.

पहले सिर्फ— क्रांति! क्रांति!! भौं-भौं!!!

फिर— क्रांति! भौं-भौं!!

— क्रान्! भौं-भौं!!

— क्रा! भौं-भौं!!

— क्रा! भौं-भौं!!

— क! भौं-भौं!!

— भौं-भौं!!! भौं-भौं!!!

... और सब श्वान सबके सब प्रतिबद्ध, चिल्लाने लगे भौं-भों! पूरा मोहल्ला गूंज उठा— भौं-भौं! माहौल भौंकने लगा भौं-भौं! प्रोफेसर आर्य, मुहल्ला सुधार समिति के चेयरमेन, का फोन ठीक काम कर रहा था. व्यवस्था, कुछ मौकों पर अपनी साजिश के लिए फोन जैसी चीजों का तुरंत इस्तेमाल कर लेती हैं. प्रोफेसर ने फोन का इस्तेमाल कर लिया. नगर निगम ने षड्यंत्र को अपना संपूर्ण सहयोग दिया. व्यवस्था की यही विशेषता होती है कि आग लगने के बाद फायर ब्रिगेड तुरंत नहीं आ सकता, पर क्रांति होने के वक्त कुत्तागाडी विद्युत गति से आती है. वह आ गयी. कुत्ते और तेजी से भौंकने लगे. शर्माजी की बिटिया को लगा, अगले गुरुवार, वह कृष्णवर्णी श्वान को वर-व्रत के अंतर्गत रोटी नहीं खिला पायेगी. शादी की शास्त्रीय संभावना पर नगर निगम कर्मियों के गंडासे और कैंचियां/दरोगाओं-जमादारों की वर्दियां छाने लगी. वह मुंडेर पर उदास हो गयी. उदासी मुंडेर पर फैल गयी और चौराहे पर क्रांति का अगुवा ज्यों का त्यों भौंकने पर प्रतिबद्ध था.

अब वे ऐसे भौंक रहे थे, गोया विरोध में नारे लगा रहे हों. एक एक करके कई प्रतिबद्ध गर्दनें व्यवस्था के हाथों ने दबोच ली और देखते-देखते पूरी कुत्तागाड़ी में क्रांतिकारी श्वानों का समूह समा गया. कुछ पिल्ले अलबत्ता इधर-उधर भाग खड़े हुए, जिन्हें नेता श्वान ने क्रांति-बीज की सुरक्षा की जरूरत के रूप में लिया. कुत्तागाड़ी चल पड़ी. उस पर सवार था कुत्ता, कुतिया..... ढेर सारे कुत्ते ढेर सारी कुतियां..... सब भौंक रहे थे..... सबके सब कह रहे थे - भौं - भौं.

कुमारी आर्य ने अपने कुत्ते सत्यप्रकाश को फिर डांटा, "प्लीज डियर, स्टॉप इट!" सत्यप्रकाश ने कुमारी आर्य को गोद में ही, मुंह आसमान की ओर किया और रोने लगा... ऊं-ऊं ऊं-ऊं! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिकेट्रिया

राशिद आकाश

क्रिकेट्रिया रोग भारत में ही नहीं, पाकिस्तान में भी काफी गुल खिला रहा है. पेश हैं पाकिस्तानी व्यंग्यकार द्वारा वहां के क्रिकेट्रिया के हाल

जुम्मा का दिन है. मस्जिद से अजान की ऊंची आवाज घर-घर सुनाई पड़ रही है. लेकिन हर घर में चौके-छक्के की ताल पर लोग नाच रहे हैं. छोटी रेहाना चटखारे लेकर आती है, ''हाय आपा, कितनी मजेदार चटनी है. किसने बनायी है यह चटनी?''

आपा रशीदा दीदे फाड़कर टी.वी. देखने में लगी हैं. वह चटनी को सेंचुरी समझती हुई खुशी से चिल्लाती हैं, ''अरे छोटी, सेंचुरी और कौन बनायेगा? अपने इमरान ने बनायी है.''

अम्मी कहती हैं, ''बेटे वाजिद, नमाज पढ़ आओ, वरना जुम्मा निकल जायेगा.'' वाजिद मियां जवाब देते हैं, ''बस अम्मी, ये आखिरी ओवर देख लूं, फिर जाता हूं'' अम्मी के बार-बार कहने पर वाजिद मियां झुंझलाये अंदाज में कहते हैं, ''जाने दीजिए अम्मी, अगले जुम्मा पढ़ लूंगा. इस बार जबर्दस्त मैच है.'' हैरान-सी अम्मी सोचती हैं कि वाजिद, जो बिला नागा नमाज पढ़ता था, उसे यह क्या हो गया है? हमसे पूछें तो उन्हें बतायें कि वाजिद को क्रिकेट्रिया हो गया है. खुदा दुश्मन को भी यह मर्ज न लगाये.

खुदा झूठ न बुलवाये, हमने खुद अपनी गुनहगार आंखों से इस मर्ज में मुब्तला एक मरीज को खयाली ख्वाब में अंपायर से लड़ते-झगड़ते देखा. हमें उस बेचारे की हालत पर बहुत तरस आया था. हमने उसके लिए दुआ की, ''या खुदा, ये मेरा दोस्त अब तेरी पनाह में है. तू इसे बचा ले. इस मर्ज को उसके दिमाग से ऐसे निकाल दे जैसे मक्खन में से बाल निकलता है या हमारी कैंटीन में से मक्खियां निकलती हैं.''

आमतौर पर जब असर (तीसरे पहर की नामाज) का वक्त होता है, ठीक उसी वक्त मैच बहुत नाजुक मोड़ पर होता है. ऐसी हालत में भला कौन दीवाना क्रिकेट मैच छोड़कर नमाज पढ़ने जायेगा? किसी भी दफ्तर में चले जायें. आपकी बात कोई नहीं सुनेगा. सभी लोग ट्रांजिस्टर से कान लगाये बैठे मिलेंगे. अगर कोई मुसीबत का मारा उन्हें 'डिस्टर्ब' करता है, तो जी भर गालियां सुनेगा. उसे धक्के खाकर वापस निकलना पड़ेगा. इसलिए खुदा के लिए जब क्रिकेट मैच हो रहा हो, तो गलती से भी अपने काम के लिए किसी दफ्तर में मत जाइए—सरकारी दफ्तर में तो हर्गिज-हर्गिज नहीं.

आप किसी थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने चले जाइए. आपकी रिपोर्ट उस वक्त तक नहीं लिखी जाएगी, जब तक कि इमरान खां, या जावेद मियांदाद छक्का नहीं लगाते. अगर ऊपरवाले अफसर के पास ट्रांजिस्टर नहीं होगा तो आपकी शिकायत सुनने के बजाय सबसे पहले पूछेंगे, ''अजी छोड़िए शिकायत-विकायत को, झगड़े-झपट तो रोज ही होते हैं. यह बताइए कि स्कोर कितना हुआ?''

कालेज-स्कूल की तो पूछें ही नहीं, हर तालिबइल्म (छात्र) की जुबान पर कोर्स की किताबों में पढ़े गये सबक से बजाय यही होता है-''यार देखा, इमरान खां ने कितनी जबर्दस्त बैटिंग की. कमाल कर दिया उसने.'' दूसरा कहता है, ''वैसे सलीम जाफर की बॉलिंग भी देखने लायक थी.'' तीसरा कहता है, ''वैसे जावेद मियांदाद ने भी अच्छी बैटिंग की.'' क्लास में आते ही टेस्ट हो तो नतीजा सिफर (शून्य) यानी इमरान खां की गेंद जैसा निकलता है.

एक घर का किस्सा-मैच बहुत ही सनसनीखेज मोड़ से गुजर रहा था. तालियों और नारों का शोर बुलंद हुआ. एक लड़की बौखलायी-सी चाय की ट्रे हाथ में पकड़े ड्राइंगरूम में घुसी और बेताबी से पूछने लगी, ''नजमा, क्या हुआ?'' नजमा ने खुशी से चिल्लाते हुए कहा, ''अरे, हमारे मियां ने छक्का मारा है. हमारे मियां ने यानी जावेद मियांदाद ने. सच, चाय की ट्रे उसके हाथों से छूट पड़ी, हमारा मियां है ही ऐसा यार''. (आमतौर पर मियां का मतलब शौहर होता है.)

शायद डेढ़ सौ साल पहले भी यही कुछ होता होगा, जो आजकल होता है. लेकिन जैसा कि मीर ने कहा है कि जमाने की कैंची इस तरह चलती है कि कतरनें तक नहीं छोड़ती है. आज हम अपनी कौम को, अपने वतन को देखते हैं तो दिल से एक आह निकल आती है. आज जहां देखो, क्रिकेट ही क्रिकेट है. बड़ी-बड़ी शर्तें लगायी जाती हैं कि फलां टीम जीत गयी तो यह सारी रकम तेरी वरना मेरी. इस तेरी-मेरी में अक्सर सिर कट जाते हैं. धमाके होते हैं. पुलिस-कचहरी तक की नौबत आ जाती है. अरे मियां, यह तो शैतानी खेल है, बड़े बूढ़े कहते हैं.

क्रिकेट के बारे में हम दानिशबरों (बुद्धिजीवियों) के पास गये सन्यासियों से पूछा, बुजुर्गों से पता किया. खुद विचारों के समुद्र में गोते लगाये. जब बाहर निकले तो जवाब मिला कि क्रिकेट्रिया एक खतरनाक मर्ज है. इससे बचो. एक बार यह मर्ज किसी से चिपट जाये तो वह न दीन का रहता है, न दुनिया का.

शायद आपको मालूम होगा कि हिटलर ने क्रिकेट मैच देखने के लिए जर्मनी में तीन दिन की छुट्टी दी थी. मैच ड्रा हुआ तो उसने सारे क्रिकेटरों की छुट्टी करा दी थी. उसके बाद जर्मनी में क्रिकेट खेला ही नहीं गया. आज अमरीका, रूस, जापान और जर्मनी में क्रिकेट नहीं होता है, इसीलिए वे सुपर पावर बने बैठे हैं.

हमारे यहां आज अब्बाजी बेटे को पढ़ाई पर ध्यान देने के बजाय क्रिकेट खेलने के लिए उकसाते हैं. उन्हें मालूम है कि सोलह साल स्कूल-कालेज में झख मारने के बाद बच्चे को क्लर्क ही बनना है. लेकिन अगर किस्मत ने साथ दिया तो क्रिकेट खेलकर बेटा खानदान की सात पुश्तों की तकदीर बदल देगा. बस, एक छक्का मारने की देर है, घर में दौलत का ढेर लग जायेगा. कार, बंगला अलग से होगा. पढ़ने से सिवा दाल-रोटी के और कुछ नहीं मिलता है. एक वक्त ऐसा आयेगा जब मुल्क में, हर तरफ क्रिकेटर ही क्रिकेटर नजर आयेंगे. कौम को सांइस दां, इंजिनियर, डॉक्टर मिले न मिले, क्रिकेटर जरूर मिलेगा. □

■ अनुवाद : फीरोज अशरफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा मुख्य अतिथि हो जाना

लतीफ घोंघी

आजादी के बाद देश की विकासशील रंमपराओं में मुख्य-अतिथि बनाने वाली परंपरा मुझे सबसे अच्छी लगती है.

सुबह कालेज के कुछ छात्र आये. बोले, "कालेज में हिंदी साहित्य परिषद का उद्घाटन हमें करवाना है और हम चाहते हैं कि आप इस समारोह के मुख्य-अतिथि बनना स्वीकार करें."

मेरी इच्छा तो हुई कि छात्रों के चरण पकड़ लूं और कहूं, "अच्छा किया तुम लोगों ने. आखिर देश को आगे बढ़ाने का भार तुम्हारे ही कंधों पर है. सच कहता हूं, मैं तो कई दिनों से मुख्य-अतिथि बनने के लिए फड़फड़ा रहा था.. जिन लोगों को हाथ धोने की तमीज भी नहीं है वे पिछले चालीस सालों में कई बार मुख्य-अतिथि बन गये लेकिन मेरा नंबर आज तक नहीं आया. आज मुझे पता चला कि अपने यहां वास्तव में छात्र-शक्ति महान है. उतारो अपने जूते और मुझे बताओ कि तुम्हारे चरण कहां हैं?"

लेकिन मैंने ऐसा नहीं कहा. ऐसा कहना मुख्य-अतिथि की गरिमा के विरुद्ध है. मैंने कहा, "मैं इस लायक नहीं हूं.. नगर में और भी बुद्धिमान लोग हैं, जो मुझसे वरिष्ठ हैं."

वे बोले, "पिछले कई सालों से हम बुद्धिमानों को ही मुख्य-अतिथि बनाते आये हैं लेकिन इस बार आपके पास आये हैं. आशा है आप छात्र-जगत को निराश नहीं करेंगे."

वैसे उन्हें निराश करने की इच्छा भी नहीं थी मेरी. लेकिन डर मुझे इस बात का था कि छात्रों के इस गुट के जाने के बाद दूसरा गुट आयेगा और कहेगा, "हम स्टूडेंट पेनलवाले हैं और इस समारोह का विरोध कर रहे हैं इसलिए आपसे निवेदन है कि आप मुख्य अतिथि बनना स्वीकार न करें... आप यदि मुख्य-अतिथि बने तो हमें आपके हाथ-पैर तोड़ने के लिए विवश होना पड़ेगा... यह निर्णय हमने स्टूडेंट पेनल की कार्यकारिणी समिति की बैठक में सर्वसम्मति से पारित किया है. आशा है आप छात्र-जगत के विपक्ष की भावनाओं का आदर करते हुए हमें निराश नहीं करेंगे."

उनके जाने के दो घंटे बाद भी छात्रों का दूसरा गुट नहीं आया तब मैं समझ गया कि अपने कालेज में विपक्ष की भूमिका उतनी ठोस नहीं है. जितनी मैं सोच रहा था. अलबत्ता, हिंदी विभाग वाले डा. त्रिपाठी जरूर आये. मैं समझ गया कि वे बताने आये होंगे कि उन्होंने मुझे मुख्य अतिथि बनवा दिया वर्ना मैं हिंदी साहित्य में इसी तरह सड़ जाता और पूरी उम्र एक पुष्पहार के लिए तरस जाता.

मैंने उन्हें आदर के साथ बिठाया. हिंदीवाले थे और हिंदी के लेखकों की सामाजिक प्रतिष्ठा का आकलन उन्हें था. उन्होंने जेब से बीड़ी निकाली तो मैंने कहा, "मैं सिगरेट मंगवाये देता हूं.. आपने हिंदी की इतनी सेवा की है कि आपका बीड़ी पीना मुझे अच्छा नहीं लगेगा."

वे मुस्कराये. निश्चितरूप से कुटिल मुस्कान नहीं थी जो हिंदी वालों के चेहरों पर होती है. डा. त्रिपाठी की यही विशेषता है. हर परिस्थिति में वे अच्छा मुस्करा लेते हैं. कुछ दिनों तक कविताएं लिखीं, मुस्कराते रहे. फिर हास्य-व्यंग्य भी लिखा, मुस्कराते रहे. फिर आलोचना की ओर भी मुड़े. मुस्कराते रहे. मुस्कराते-मुस्कराते ही उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं को निपटा दिया. शायद इस बार उनके मन में विचार आया हो कि अब क्षेत्रीय साहित्यकारों को भी प्रोत्साहन देने का काम निपटा ही देना चाहिए. एक-एक कर बना दो सालों को मुख्य अतिथि ताकि लोग यह न कहें कि हिंदी विभाग में रहकर भी उन्होंने साहित्य से जुड़े लोगों को सम्मान नहीं दिलवाया.

वे बोले, "रहने दीजिये.. सिगरेट से खांसी आती है."

मैंने भी सिगरेट मंगवाने का विचार यह सोचकर त्याग दिया कि शायद इसके पीछे भी उनकी कोई साहित्यिक दृष्टि काम कर रही हो.

मुख्य अतिथि बनने का यह मेरा पहला अवसर था इसलिए मन में बड़ी जिज्ञासाएं थीं. मैं कोई पेशेवर मुख्य-अतिथि तो था नहीं कि चुपचाप बैठा रहता. मैंने त्रिपाठी जी से पूछा, "क्यों हो गुरु, आप तो साहित्य से जुड़े हो.. मुझे ये तो बताओ कि कोई ऐसी किताब नहीं मिलेगी जिसमें सफल मुख्य-अतिथि बनने पर कुछ विस्तार पूर्वक लिखा गया हो? मेरा मतलब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है कि मुख्य-अतिथि को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, कार्यक्रम के पहले और कार्यक्रम के बाद लोगों से किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, किस अवसर पर क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए आदि..."

त्रिपाठी जी फिर मुस्कराये.

शायद वे सोच रहे थे कि मैं उन पर व्यंग्य कर रहा हूं. यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि कुछ साल पहले त्रिपाठीजी ने हिंदी साहित्य में अभिनंदन-पत्र लिखने और मुख्य-अतिथियों के भाषण लिखने का काम भी प्रारंभ किया था. इस तरह की साहित्य सेवा बिरले लोग ही करते हैं. लेकिन इसके पीछे व्यंग्य करने की भावना आज मेरी नहीं थी. आज यदि वे मुझे भाषण लिखकर दे देते तो मैं समारोह में मुख्य अतिथि की तरह उसे इस तरह पढ़ देता जैसे पूरा भाषण मैंने ही लिखा है. जब खुद पर आती है तब व्यंग्य का मतलब समझ में आता है.

इस बीच बीड़ी बुझ गयी थी. त्रिपाठी जी ने जेब से माचिस निकाली. तीलियां समाप्त हो गयी थीं. वे बोले, "बीड़ी के साथ यही तो दिक्कत है.. बार-बार बुझ जाती है."

मुझे यह कहने में ज़रा संकोच हो रहा था कि मैं माचिस ला देता हूं. यह इसलिए कि शायद त्रिपाठी जी अपनी बीड़ी सुलगाने के लिए दूसरों की तीलियां पसंद न करें. हिंदीवाला वैसे भी बहुत संवेदनशील होता है. संवेदना के अलावा होता भी क्या है हिंदी वाले के पास? मुझे अपने एक आंचलिक कवि मित्र की याद हो आयी जो जेब में अपनी बीड़ियां तो रखते थे लेकिन तीलियां हमेशा दूसरों की ही प्रयोग करते थे. इसके पीछे उनका दर्शन क्या था, यह मेरी समझ में नहीं आया लेकिन इसी सृजनात्मक प्रवृत्ति के कारण वे बाद में आंचलिक साहित्य में स्थापित भी हो गये.

त्रिपाठी जी खुद ही बोले, "माचिस मंगवाइए."

मुझे अच्छा लगा कि उन्होंने मुझे कम से कम इस योग्य तो समझा. यदि भविष्य में कभी अपनी आत्मकथा लिखने का मूड बना तो इस बात का उल्लेख मैं अपनी आत्मकथा में जरूर करूंगा.

त्रिपाठी जी बोले, "लड़के मुझसे सलाह लेने आये थे.. हिंदी परिषद का गठन हुआ है कालेज मे. जब गठन हुआ है तो उदघाटन होना ही चाहिए. लड़कों ने कहा कि किसी नेता को मुख्य अतिथि बना देते हैं उद्घाटन भी करेगा और साहित्य परिषद को हजार-बारह सौ का अनुदान देने की भी घोषणा करेगा." मैं डर गया: मुझे लगा कि कहीं मेरा मुख्य आतिथ्य खतरे में न पड़ जाये.

तब तक छोटी बच्ची किचन से माचिस ले आयी थी. त्रिपाठी जी ने पहले माचिस को उलट-पलटकर देखा. इसे हिंदी साहित्य में आब्ज़रवेशन कहते हैं. फिर उन्होंने एक तीली निकाली. वे थोड़ी देर तक तीली को भी देखते रहे. तीली की बनावट, तीली की लंबाई, उस पर लगे बारूद की क्वालिटी. कुछ सोचकर उन्होंने तीली सुलगायी नहीं. बोले, "लेकिन मैंने कहा कि साहित्य परिषद का उद्घाटन नेता के बदले कोई साहित्यकार करे तो कार्यक्रम गरिमामय लगेगा और हिंदी साहित्य भी सार्थक होगा. यही सोचकर मैंने आपका नाम सुझा दिया. आप इतने दिनों से लिख रहे हैं.. आपको यह सम्मान मिलना ही चाहिए. इसे मैंने नैतिक जिम्मेदारी के रूप में लिया है.. आप अन्यथा न लें."

मैं भला क्या अन्यथा लेता. त्रिपाठीजी की नैतिक जिम्मेदारियां मैं कोई पहली बार तो नहीं देख रहा था. वे तो पिछले कई सालों से साहित्य में नैतिक जिम्मेदारियां निभाये चले जा रहे थे. कविता की जिम्मेदारी, व्यंग्य की जिम्मेदारी, आलोचना की जिम्मेदारी. सभी जिम्मेदारियां उन्होंने निपटा दी थीं. मैंने उनसे परिषद के लिए अनुदान दिये जाने की बात पर इसलिए भी कुछ कहना उचित नहीं समझा कि वे इस मामले में खुद भी समझदार हैं और देश के कई लेखकों के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हैं. और मेरे व्यक्तित्व से तो वे अच्छी तरह इसलिए भी परिचित हैं कि मैंने अपने इस अल्प जीवनकाल में केवल लेने में ही अपनी आस्था रखी है, कुछ देने में नहीं.

> **आज वे मुझसे लगभग वैसा ही व्यवहार कर रहे थे जैसा एक मुख्य अतिथि को दूसरे मुख्य अतिथि के साथ करना चाहिए, वैसे वे शालीन भाषा के पक्षधर कभी नहीं रहे लेकिन आज उनकी वाणी में शालीनता थी, बोलचाल की भाषा में विदेशी संदर्भ थे.**

त्रिपाठीजी के जाने के बाद एक मित्र आ गये. मुझे पहली बार इतना गंभीर देखकर वे सकते में आ गये कि कहीं कोई ग़मी तो नहीं हो गयी घर में. बहुत साहसकर उन्होंने पूछा, "क्या बात है? इतना गंभीर पहले मैंने आपको कभी नहीं देखा."

मैंने कहा, "एक कार्यक्रम में मुख्यअतिथि बना दिया है लोगों ने मुझे. मैं तो मना करता रहा लेकिन वे माने ही नहीं."

मैंने यह बात इतनी गंभीरता से कही थी कि मित्र को भी लगा कि मैं सच बात ही कह रहा हूं, जरूर मैंने कई बार मना किया होगा.

मित्र बोले, "कल मेरे पास निराश्रित संघ के सचिव आये थे. कहने लगे कि उनके संघ ने भिखमंगों के मौलिक अधिकारों पर एक चर्चा गोष्ठी का आयोजन किया है और वे चाहते हैं कि मैं इस गोष्ठी में मुख्य-अतिथि की आसंदी स्वीकार करूं. मैं भी कई बार मना करता रहा लेकिन वे नहीं माने. कहने लगे कि इस गोष्ठी के लिए मुझसे योग्य मुख्य अतिथि कोई नहीं हो सकता."

वे थोड़ी देर के लिए चुप हो गये. गंभीर भी लगने लगे थे. मैं समझ गया कि वे मुझे यही बताने आये हैं कि मैं इस मुगालते में न रहूं कि वे मुख्य-अतिथि बनने योग्य नहीं हैं. समाज में यह सम्मान उन्हें बराबर मिल रहा है. पिछले दिनों एक आयोजन में हम दोनों आमंत्रित थे.आयोजन के बाद स्वल्पाहार भी था. जिस गरिमामय ढंग से उन्होंने स्वल्पाहार में भाग लिया था उसे यदि आप देखते तो उनके बारे में यह राय निश्चित रूप से बना लेते कि यह व्यक्ति किसी निराश्रित संघ के आयोजन के मुख्य-अतिथि के योग्य ही है.

वे बोले, "आपके पास इसलिए आया था कि भिखमंगों पर कोई साहित्य हो तो मुझे दीजिए. मैं चाहता हूं कि कुछ अध्ययन कर लूं.. कोई दूसरा आयोजन होता तो यूं ही निपट जाता.. कुछ भी बोल देता लेकिन मौलिक अधिकारों की बात है तो मुख्य-अतिथि के रूप में मुझे कुछ तैयारी कर ही लेनी चाहिए. है आपके पास कोई किताब?"

मैंने कहा, "कोई ऐसी किताब तो मेरे पास नहीं है."

वे बोले, "भिखमंगों पर अच्छा साहित्य कहां मिलेगा? आप कुछ सलाह दीजिये. मेरे पास समय बहुत कम है. मुख्य-अतिथि की हैसियत से हो सकता है इस परिचर्चा गोष्ठी को मुझे ही 'कनक्लूड' करना पड़े. वैसे मैं तो हमेशा विदेशी साहित्य ही पढ़ने में रूचि रखता हूं. लेकिन अब महसूस कर रहा हूं कि हमें अपने देश का साहित्य भी पढ़ना चाहिए."

आज वे मुझसे लगभग वैसा ही व्यवहार कर रहे थे जैसा एक मुख्य-अतिथि को दूसरे मुख्य-अतिथि के साथ करना चाहिए. वैसे वे शालीन भाषा के पक्षधर कभी नहीं रहे लेकिन आज उनकी वाणी में शालीनता थी, बोलचाल की भाषा में विदेशी संदर्भ थे, मौलिक अधिकारों के प्रति चिंता का भाव था, अपने देश की हर वस्तु के लिए समर्पण की भावना थी. और क्या चाहिए एक मुख्य-अतिथि होने के लिए? ललाट तो उनका पहले से ओजस्वी था. क्यों और कैसे हो गया, यह तो वे भी नहीं जानते.

उन्होंने आज बड़ी गंभीर बातें कीं. व्यवस्था के बारे में चिंतन किया, समाज की विसंगतियों पर अपनी चिंता प्रकट की, गिरते मानवीय मूल्यों को भी नहीं छोड़ा. आज वे किसी को छोड़ने के पक्ष में नहीं लगे. मुझे भी नहीं छोड़ते यदि मैं उनसे यह नहीं कहता कि मुख्य-अतिथि की हैसियत से मुझे भी अपनी तैयारी करना है.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालेज मेरे घर के पास ही था.तय हुआ [illegible] तीन बजे रखा जाये. कालेज के कुछ लड़के मुझे सूचना देने आये कि समय निर्धारित हो गया है और मैं तैयार रहूं. मैं तो सुबह से ही तैयार बैठा था. सूचना नहीं आती तो मैं दोपहर एक बजे ही चला गया होता.

लगभग दो बजे कर पचास मिनट पर त्रिपाठीजी ने सूचना भिजवायी कि मैं न आऊं. एक बार तो मेरा कलेजा धक रह गया कि कहीं कार्यक्रम स्थगित तो नहीं हो गया? छात्रों का क्या भरोसा. इसी बात पर मारपीट हो गयी हो कि उन्होंने मुझे मुख्य-अतिथि क्यों बनाया. पहली बार मुख्य अतिथि बनने पर कई प्रकार की शंका-कुशंका आना स्वाभाविक भी है. लेकिन छात्रों ने कहा, ''त्रिपाठी सर ने कहा कि वे आपको लेने आयेंगे.. प्राचार्य साहब की हम लोग वेट कर रहे हैं.. वे आ जायें तो आपके पास त्रिपाठी सर आयेंगे.''

मैं आश्वस्त हुआ. मुझे लगा जैसे कोई बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते रह गयी. अब मेरे समक्ष मूल-प्रश्न यही था कि देखें, त्रिपाठी जी कब आते हैं.

आ ही गये त्रिपाठीजी बोले, ''चलिये.''

मैंने कहा, ''आपने व्यर्थ कष्ट किया.. मैं तो ऐसे ही आ जाता.''

वे बोले, ''हम मुख्य-अतिथि के पद की गरिमा समझते हैं. हमें कालेज के लड़कों को भी सिखाना है कि वे मुख्य-अतिथि को चिल्लहर न समझें. आखिर आगे चलकर उन्हें भी तो समारोहों में मुख्य-अतिथि बनना है. आज नहीं सीखेंगे तो कब सीखेंगे. चलिए.''

हम दोनों कालेज तक आये. त्रिपाठी जी बोले, ''अब आप आगे हो जाइए.. मुख्य-अतिथि हमेशा आगे रहता है.''

मुझे लगा कि आगे चलकर त्रिपाठीजी अच्छे गाइड सिद्ध होंगे. हिंदी में अच्छे गाइडों की वैसे भी कमी है.

मुझे एक अच्छे कमरे में बिठाया गया. यह कमरा प्राचार्य का था. प्राचार्य ने निवेदन किया कि मैं सामनेवाली कुरसी पर बैठूं. त्रिपाठीजी ने लड़कों को बुलाकर कहा, ''अब रिकार्डिंग बंद करो और एनांउसमेंट करो कि मुख्य-अतिथि पधार चुके हैं तथा थोड़ी ही देर में हमारा कार्यक्रम प्रारंभ होने जा रहा है.''

एक बड़ा लड़का, जो साहित्य परिषद का अध्यक्ष भी हो सकता है, बोला, ''सर, ये मुकद्दर का सिकंदर का गाना पूरा हो जाने दो फिर 'एनउंसमेंट' कर देते हैं.''

समारोह जिस कालेज के कमरे में आयोजित था, वहा कोने में मां सरस्वती का एक फोटो रखा गया था. उसके आगे एक दीप था.

सामने के टेबिल पर एक हारमोनियम था. आप सोच रहे होंगे कि हारमोनियम की क्या जरूरत थी साहित्य परिषद के उद्घाटन में? मैं भी यही सोच रहा था. मैंने त्रिपाठी जी से पूछा तो वे बोले, ''लड़के हारमोनियम पर 'वर दे वीणा वादिनी' गायेंगे.. तब आप दीप प्रज्जवलित कर साहित्य परिषद का उद्घाटन करेंगे.''

मैंने पूछा, ''फिर क्या करना होगा?''

वे बोले, ''छात्र जगत को रचनात्मक कार्य करने के लिए उद्बोधन देना होगा.''

कार्यक्रम प्रारंभ हुआ. पुष्पहारों से मुख्य-अतिथ का स्वागत किया लड़कों ने. त्रिपाठी जी ने इतने पुष्पहार इस बहाने पहनवा दिये कि मुझे भी लगने लगा कि शेष जीवन में किसी पुष्पहारों की मुझे आवश्यकता नहीं रहेगी.

अध्यक्षता प्राचार्य कर रहे थे. त्रिपाठीजी. ने उन्हें भी नहीं छोड़ा.

फिर संचालन कर रहे छात्र ने त्रिपाठी जी से निवेदन किया कि वे मुख्य अतिथि का परिचय दें.

त्रिपाठी मुस्कराये. मेरी ओर इस तरह देखा जैसे कहना चाहते हों— ''क्यों बे मुख्य अतिथि, दे दूं परिचय?''

लेकिन माईक पर आने के बाद उन्होंने मुझे महान सिद्ध करने की पूरी कोशिश की. अंत में उन्होंने यह भी जोड़ दिया कि मैं हास्य-व्यंग्य सम्मेलनों में भाग लेने शीघ्र ही विदेश भी जाने वाला हूं. ऐसा उन्होंने क्यों जोड़ा यह तो मैं उनसे बाद में पूछूंगा, लेकिन हिंदी के डाक्टर होने के नाते जब उन्होंने यह जोड़ा है, तो जरूर इसमें भी कोई साहित्यिक महत्व की ही बात होगी.

त्रिपाठीजी मेरे पासवाली कुरसी पर ही बैठे. बीच-बीच में मुझसे कहते रहे कि मैं कभी-कभी मुस्करा लूं. इससे मुख्य-अतिथि की गरिमा बनती है. मैं बीच में पुष्पहारों की तरफ देख रहा था तो त्रिपाठीजी ने मुझे टोका.

अंत में मुझसे निवेदन किया गया कि मैं कालेज में हिंदी साहित्य परिषद के उद्घाटन अवसर पर छात्रों को उद्बोधन दूं.

मैं बहुत धीरे-धीरे चलकर माईक तक आया. कमरा छात्र-छात्राओं से भरा था. समारोह गरिमामय ढंग से निपट रहा था. आप जानना चाहेंगे कि मैंने उद्बोधन में क्या कहा? लेकिन भाई साहब, मुख्य अतिथि बनने के बाद किसे होश रहता है कि वह क्या कह रहा है. बाद में त्रिपाठी जी ने मुझे बताया कि मैंने भाषण अच्छा दिया.

धन्यवाद ज्ञापन के लिए प्राचार्य खड़े हुए. कार्यक्रम की गरिमा बनाये रखने के लिए धन्यवाद ज्ञापन में उन्होंने मेरी बड़ी तारीफ की. उन्होंने साहित्य में कथनी और करनी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए मेरे व्यक्तित्व को उभारा.

मैंने त्रिपाठीजी को समारोह के बाद एक कोने में ले जाकर पूछा, ''कोई चूक तो नहीं हुई इस मुख्य-अतिथि से?''

वे बोले, ''आप कुछ जरूरत से ज्यादा शर्मा रहे थे.''

मैंने कहा, ''मेरा पहला मौका था. पहली बार शर्म तो लगती है.''

वे मुस्कराये. बोले, ''अभी स्वल्पाहार बाकी है. आशा है आप इसमें भी खरे उतरेंगे... चलिए, इसे भी गरिमामय ढंग से निपटा दीजिए.''

मैंने उनके निर्देशानुसार चेहरे पर मुख्य-अतिथि हो जाने के भाव बनाये और उस कमरे की ओर बढ़ गया जहां प्लेटें सजी थीं. □

सखेद श्रीमान अय्यर...

एन. कुंजू

यों तो हर लेखक की चाह होती है कि उसकी रचना छपे पर बंगलौर के सत्यनारायण अय्यर जब किसी भी पत्रिका को अपना लेख या कार्टून भेजते हैं, तो उनकी आकांक्षा यही होती है कि वह संपादक के खेद पत्र के साथ लौट आये. हो सकता है शुरू-शुरू में उन्हें अपनी रचना के लौटने पर दुख होता होगा पर बाद में खेद 'पत्र एकत्र करने का उन्हें शौक हो गया. एक बार 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के तत्कालीन संपादक श्री खुशवंत सिंह ने उनकी रचना एक साल तक नहीं लौटायी तो वे उनसे रचना लौटाने का आग्रह करने के लिए खुद बंबई पहुंच गये. यह अलग बात है कि उस रचना और खेद पत्र के लिए उन्हें एक साल और इंतजार करना पड़ा.

एक बार अय्यर साहब ने गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्डस के संपादक को पत्र लिखा कि सर्वाधिक खेदपत्र एकत्र करने के लिए उनका नाम गिनेस बुक में दर्ज किया जाना चाहिए. उसके संपादक ने उनका आग्रह तो स्वीकार नहीं किया लेकिन अय्यर साहब के खेद पत्रों की संख्या में एक का इजाफा जरूर हो गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष-विलाप

सूर्यबाला

कालिदास के विरही यक्ष का आज के युग में एक विलाप

मेहरबानों, कद्रदानों. यक्ष फिर से बदकिस्मती का मारा है. वही हाल-बेहाल, वही चिर-विरही यक्ष. इस बार बिछोह उसकी यक्षिणी का नहीं, उसकी आत्मा का है. आत्मा ही गायब हो गयी है उसकी. अब आत्मा के बिना कैसी बेगैरत जिंदगी. तो जाहिर है, उसे एक अदद मेघदूत की तलाश है. किसी जमाने में वह उसका खासा खैरखाह हुआ करता था लेकिन अब कहां का खैरखाह और कैसी मदद. सदी के इस सबसे बड़े सूखे-भूखे दिनों में मेघ के कहा दर्शन. उसके पास इस देश के लिए, यक्ष के लिए फुर्सत ही नहीं.

और इधर यक्ष है कि खटवार-पटवार लिये पड़ा है. हालत नाजुक है. होनी भी चाहिए. सालों-साल से आत्मा गायब है बेचारे की. यूं,बेवफाई तो पिछले कई सालों से चालू थीं, उसकी लेकिन इस तरह एकाएक विन चड्ढा हो जायेगीं, इसकी उम्मीद नहीं यक्ष को.

बहरहाल जो ईश्वर हाल-बेहाल करता है, वही संदेशवाहक भी मुहैया करता है. ऐसी हालत में यक्ष को सूझा, क्यों न एक के बाद एक दिल्ली में एयर डैशिंग करते वायुदूतों के जरिये संदेशा भेजा जाये.

अथ यक्ष संदेश : हे दम पर दम दिल्ली के आकाशमार्ग पर मंडराते हुए वायुदूत, जब तुम दिल्ली की, अलकापुरी से भी सुंदर, गगनचुंबी अट्टालिकाओं के ऊपर से गुजर रहे होंगे तो जरा बाढ़ निरीक्षण के लिए प्रयोग में लाये जानेवाले वाइनाकुलर से देखना - बहुत संभव है, उन अट्टालिकाओं में से किसी एक के वातानुकूलित ड्राइंगरूम में फैली, पसरी मेरी आत्मा तुम्हें दिख जाये. यूं तो उसने सरकारी आवासों में भी दो-तीन फ्लैटस अलग-अलग फर्जी नामों से बुक करा रखे हैं लकिन वहां तो वह कभी-कभार ही, चेकिंग करनेवालों की आखों में धूल झोंकने के निमित्त ही जाती है. अतः मित्र, ज्यादा उम्मीद तो यही है कि करोड़ों से सुसज्जित किसी भव्य अट्टालिका में ही वह अपनी अगली विदेश यात्रा के दरम्यान लायी जानेवाली साड़ियां, घड़ियों परफ्यूमें और बिस्कुटों की लिस्ट बना रही होगी.

मित्र, पहली नजर में तो उसे देखकर तुम पहचान भी नहीं पाओगे. धोखा खाने की पूरी पूरी संभवना है. क्योंकि तुम्हें तो सालों साल पहले की देखी, उसकी गेरू खंचाई तस्वीर का ही स्मरण होगा. उन दिनों वह कैसी सिड़ी-सिड़ी सिलबिल्ली-सी हुआ करती थी. हर बात में सही-गलत, उचित-अनुचित और सच-झूठ को लेकर मुझसे उलझती रहती थी. अपने छोटे-छोटे आदर्शों-उसूलों को लेकर भी वह बड़ी टची हुआ करती थी. लाख समझाओ, राई-रत्ती टस से मस होने को तैयार नहीं. उन दिनों वह मेरी आत्मा, बड़े झमेले खड़े किया करती थी. चाय और निष्ठा की दुहाई देती बला की हठी और अभिमानिनी. सच को सच और झूठ को झूठ कबूलवाकर ही रहती, चाहे उसके पीछे फांके ही क्यों न करने पड़ जायें.

सखे, उन दिनों उसे मेरे साथ फांके-मस्ती में भी मजा आता था. कर्ज भी पीते थे. गालिब और समझते थे कि रंग लायेगी हमारी फांकामस्ती एक दिन?.... लेकिन वही फांकेमस्त आत्मा, दिल्ली की ऐशगाह में जाकर ऐसे रंग जमा बैठेगी कि अपनी पहली सारी पहचान ही भुला बैठेगी, इसका जरा भी इल्म नहीं था मुझे.

लेकिन उसे दोष भी क्या दूं बंधु? दिल्ली जगह ही ऐसी है बिलकुल गुड़ की भेली जैसी और चींटियों-सी तमाम आत्माएं उसका चूरा झाड़ने में मस्त हैं.

सो सखें, उसका गेरू उकेरी तस्वीर से तो तू

मिलान करना मती. अब इतने बरसों में तो वह घाट-घाट का पानी पी, सिखी-पढ़ी सयानी हो गयी है. अपना भला बुरा, नफा-नुक्सान समझने लगी है. अब वह बात-बात में उड़ती भी नहीं. सच को सच और झूठ को झूठ ही साबित करने की मगजमारी और बेवकूफी भी नहीं करती. इशारा समझकर भ्रम दे डालती है, वक्त को बदल डालती है, खारिज कर डालती है. नुक्सान के आंकड़ों को नफे में बदलने में तो उसे महारत हासिल है.

लेकिन इतना सब होने पर भी मित्र तू उससे मेरी गयी-गुजरी हालत का बयान मत करना क्योंकि वह तो मुझे, तेरी तबाही को, पूरी तरह कब की भूल चुकी होगी. सालों हो गये, उसकी जीप को इस रास्ते पर गर्द-गुबार उड़ाये. अरसा हुआ उसके हेलीकॉप्टर को यहां पूंछ फटकारे - जब वह हाथ जोड़े उतरती, हाथ जोड़े ही चढ़ती. चढ़ते, उतरते, बस एक ही रट लगाये रहती, 'मुझे सेवा का अवसर दीजिए' तब किसी को यह नहीं मालूम था कि वह किसकी सेवा का अवसर मांग रही है.

बेसोचे-समझे, मूरख लोगों ने दे डाला, सेवा का अवसर. उसने लपककर झपट्ठा मारा और जा बैठी हेलीकॉप्टर में. बस, तबसे आज तक उसका अता-पता नहीं मिल पाया. भूखा-प्यासा, थका-हारा मैं ढूढ़-ढूढ़कर हारा.

सुना है, अब तो हमेशा दस पाच की मंडलियों से घिरी बैठी रहती है. राय-बात चलती रहती है - आज किस एरिया को दंगे के सामानों की सप्लाई की जाये, किस शहर का कौन-सा डेलीकेट एरिया छांटा जाये, कौन-सा क्षेत्र काफी दिनों गड़बड़ीवाला नहीं घोषित हो पाया.. उस वाली गली में आग लगवानी ठीक रहेगी या इधर वाली सब्जी मंडी में?.... फलाने कॉलेज में छात्रनेता को फांसा जाये या ढमकाने कारखाने के यूनियन लीडर को?..... कारखाने से बस डिपो भी पास है, दो-चार प्राइवेट गाड़ियों को भी फूंकने का सुभीता रहेगा.

हथगोले अगले हफ्ते बंटवाना. लेकिन ठीक से प्रशिक्षित करके. बेकार सामानों की बरबादी न होने पाये और सभी संप्रदायों में समान रूप से बांटे जायें. किसी को कोई शिकायत न रहे. जो मूर्ख, अपढ़, अज्ञानी हैं, उन्हें प्रशिक्षित, ट्रेंड किया जाना जरूरी है.

तो सखे, जहां कहीं तुम इस प्रकार की सरगर्मी और विशिष्ट बैठकें देखना, समझ लेना वहीं मेरी सालों की बिछड़ी आत्मा का निवास हैं वहीं बेचारी फैली-पसरी घर फूंक तमाशा देखती आराम के क्षण गुजार रही है. हो सके तो उससे तुम सिर्फ इतना कहना कि अब भी समय है. बहुत हो चुका. कुछ तो सोच, उस गेरू खींची तस्वीर और अपने उस विरही यक्ष के बारे में! लौट जा... वैसे वह सुनेगी और लौट के आयेगी, इसकी मुझे तो, कोई उम्मीद नजर नहीं आती....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टैनिसी की पत्रकारिता

मार्क ट्वेन

डॉक्टर का कहना था कि दक्षिण की जलवायु मेरी सेहत के लिए अच्छी रहेगी, इसलिए मैं टेनिसी जा रहा पहुंचा और वहां के अखबार 'मॉर्निंग ग्लोरी एंड जॉन्सन कांउटी वॉरकूप' में मुझे संयुक्त संपादक की नौकरी मिल गयी. जब मैं पहले दिन ड्यूटी पर पहुंचा तो मैंने देखा, प्रधान संपादक महोदय तीन टांग की कुर्सी में पसरे हुए हैं और उनकी अपनी टांगे मेज पर टिकी हुई हैं. कमरे में एक मेज और भी थी और एक अन्य घायल कुर्सी भी— और दोनों चीजें अखबारों और कागजों और पांडुलिपियों के नीचे आधी-आधी दफन थीं. इन से भरा एक लकड़ी का बक्सा भी वहां था, जिसमें सिगार के टोटे, राख और तस्वीरों के टुकड़े भरे पड़े थे. एक अंगीठी भी थी, जिसकी खिड़की एक तरफ को झूल रही थी.

प्रधान संपादक ने काले कपड़े का लंबा दुमदार फ्रॉक कोट पहन रखा था और सफेद लिनन की पैंट. उनके जूते छोटे थे, लेकिन बड़ी सफाई से पॉलिश किये हुए थे. उनके बदन पर फूली-फूली सी कमीज थी, हाथ में बड़ी सी मुहर वाली अंगूठी थी, पुरानी चाल का उठा हुआ कॉलर था और गले में चारखाने वाला रूमाल, जिसके सिरे नीचे लटक रहे थे. पोशाक की तिथि 1848 के आसपास. वे एक सिगार पी रहे थे और किसी शब्द के बारे में सोच रहे थे; सोचते-सोचते, अपने बालों को नोचते-नोचते, उन्होंने अपना हुलिया बिगाड़ रखा था. उनके चेहरे पर गुस्से के लक्षण थे और मैंने निष्कर्ष निकाला कि वे कोई उलझा हुआ-सा संपादकीय बनाने की फिराक में थे. उन्होंने मुझसे कहा कि मैं कतरनें लूं और 'टेनसी की पत्रकारिता की आत्मा' पर एक ऐसा लेख लिखूं जिसमें सारी की सारी जरूरी दिलचस्प बातें आ जायें.

मेरा लेख इस प्रकार था :

'टेनसी का पत्रकारिता की आत्मा'

'बैलीहैक रेलवे को ले कर 'अद्ध-सासाहिक अर्थक्वेक' के संपादकों ने जो कुछ लिखा है, जाहिरा तौर पर कुछ आशंकाओं के बोझ तले दब कर लिखा है, बजईवील को अलग छोड़ का कंपनी का कतई इरादा नहीं है, बल्कि तो उसे रेलमार्ग का सबसे अहम स्थल मानती है. इसलिए उसे नजरअंदाज करने का कोई सवाल ही नहीं उठता. 'अर्थक्वेक' के भद्र जन अपनी गलती को सुधारें, और उसका सुख भी लें.

हिंगिसवील के अखबार 'थंडरबोल्ट एंड बैटल क्राइ ऑफ फ्रीडम' के माननीय संपादक जॉन डब्ल्यू. ब्लॉसम कल यहां पधारे. वे वॉन ब्यूरेन हाउस में रुके हुए हैं.

'हमारा ख्याल है कि मड स्प्रिंग्स के 'मॉर्निंग हाउस' में काम करने वाले हमारे समकालीनों ने यह मानने की भूल की है कि वॉन वर्नर का

दोनों पिस्तौलें एक साथ गरजीं. संपादक के बालों की एक लट उड़ गयी और कर्नल की गोली के जीवन का अंत मेरी जांघ में हुआ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनाव तयशुदा तथ्य नहीं है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि इस पत्र के उन तक पहुंचने से पहले ही उन्हें अपनी भूल का पता चल चुका होगा. उन्होंने चुनाव के अधूरे नतीजों से ही अपना निष्कर्ष निकाल लिया था.

'यह देखकर खुशी हो रही है कि ब्लाथर्सवील नगर न्यूयॉर्क के किसी भद्र लोक से संपर्क स्थापित कर रहा है जो यहां की टूटी-फूटी सड़कों की मरम्मत कर सके. 'डेली हुर्रा' ने इस कदम की सफलता की कामना की है और उसे सफलता की उम्मीद भी है.''

अपनी पांडुलिपि मैंने प्रधान संपादक को थाम दी— वे उसे स्वीकृत करें, उसमें परिवर्तन करें, चाहें तो उसे नष्ट कर दें. उन्होंने उस पर एक नजर डाली और उनके मुखमंडल पर बदली-सी छा गयी. जैसे-जैसे वे पढ़ते गये, उनकी मुखाकृति पर ऐसे लक्षण उभरते गये जो किसी अपराकुन के द्योतक थे. साफ लग रहा था कि कुछ गड़बड़ है. आखिर में वे उछल कर खड़े हो गये और बोले, 'खुदा की मार! तुम क्या सोचते हो कि मैं इन ढोरों के बारे में ऐसा दूंगा! तुम क्या सोचते हो हमारे पाठक इस तरह की लचर बात पचा पायेंगे! इधर लाओ कलम!'

मैंने किसी कलम को इतनी बुरी तरह कांट-छांट करते या किसी दूसरे की क्रियाओं और विशेषणों की छज्जियां उड़ाते पहले कभी नहीं देखा था. संपादक महोदय अपनी कारगुजारी में लीन थे कि अचानक किसी ने खिड़की से उनपर गोली चला दी और मेरे कानों की सम भी बिगाड़ दी.

'आह!' वे बोले, 'जरूर यह 'मॉरल वोल्कैनो' में काम करने वाला बदमाश स्मिथ ही होगा— उसे तो कल आना था' और उन्होंने अपने कमरबंद से नेवी रिवॉल्वर निकाला और गोली दाग दी. गोली स्मिथ की जांघ में लगी. वह गिर पड़ा. इससे स्मिथ का निशाना भी चूक गया, क्योंकि वह दूसरी बार गोली चलाने जा रहा था— और उसने एक अजनबी को अपंग बना दिया. वह अजनबी और कोई नहीं मैं था. मेरी एक अंगुली उड़ गयी थी.

इसके बाद संपादक महोदय फिर अपनी कतर-ब्योंत में गुट गये. जैसे ही उन्होंने अपना काम खत्म किया कि अंगीठी के पाइप से एक हथगोला लुढ़कता हुआ आया और उसने अंगीठी को हजारों परखचों में बांट दिया. बस, इतना ही हुआ. और कोई नुकसान नहीं हुआ— सिवा इसके कि एक दिशाहारा परखचे ने मेरे दो-एक दांतों को उखाड़ फेंका.

''अंगीठी का सत्यानाश हो गया.'' प्रधान संपादक बोले.

मैंने पाडुलिपि ली. उसमें इतनी कांट-छांट, रद्दोबदल हो चुकी थी कि उसकी मां भी यह न जान पाती कि यह उसी की अपनी संतान है. अब वह आलेख इस प्रकार था :

'टेनिसी-पत्रकारिता की आत्मा'

''अर्द्ध-साप्ताहिक अर्थक्वेक' के झूठे और चोट्टे लोग बड़े साफ तौर पर एक उच्च और बहादुर कौम का अपना एक और गंदा और हिन्न झूठ थोपने की कोशिश कर रहे हैं जिसका संबंध उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक गौरवशाली अन्वेषण यानी बैलीहैक रेलमार्ग से है. यह ख्याल कि बजर्डवील को अलग छोड़ दिया जायेगा, उनके अपने कूड़ा दिमागों की उपज है— या यों कहते हैं. वैसे तो वे इस लायक हैं कि उनकी खाल उनके गंदे बदन पर जस की तस बनी रहे, तो बेहतर हो वे अपने इस झूठ को खुद ही निगल लें.

'वह गधा हिगिंसवील के 'थंडर बोल्ट एंड बैटल क्राइ ऑफ फ्रीडम' वाला ब्लॉसम यहां आया हुआ है और वॉन ब्यूरेन में दारू में गोते लगा रहा है.

'हम देख रहे हैं कि मड स्प्रिंग्स के 'मॉर्निंग हाउला का पिचक्कड रखवाला अपनी झूठ बोलने की पुरानी आदत के मुताबिक ही यह कह रहा है कि वॉन वर्टर चुने गये हैं. पत्रकारिता का स्वर्ग-जनित मिशन है सच का उद्घाटन; भूलों का उन्मूलन; जनता की नैतिकता और शिष्टता का परिष्कार और उसे शिक्षित-जागरूकता बनाना; सभी लोगों को भद्रतर, ज्यादा अच्छाई भरा, ज्यादा दयावान, और सभी तरह से बेहतर इनसान बनाना— ज्यादा पवित्र, ज्यादा प्रसन्न; इसके बावजूद यह काले दिल वाला बदमाश झूठ कुप्रचार, विषवमन और अश्लीलता द्वारा

उनका ख्याल सही निकला. एक ही पल बाद कर्नल दरवाजे में खड़े नजर आये. उनके हाथ में एक ड्रैगून रिवॉल्वर था.

वे बोले, ''श्रीमान जी, क्या मैं उस मूढ़मति से मुखातिब होने का गौरव प्राप्त कर रहा हूं जो इस घटिया से अखबार का सपादन करता है?''

अपने उच्च पद को लगातार निम्नस्तरीय बना रहा है.

'ब्लादर्सवील को निकल्सन पैदल पथ की जरूरत है— उसे एक जेल तथा एक और निर्धन गृह की भी जरूरत है! पूरे शहर में एक तो घोड़ा है, दो चक्कियां हैं, एक लुहार की दुकान है— और वह पीला-प्लास्टरी अखबार है 'डेली हुर्रा!' ऊपर से पैदल पथ के सपने! वह रेंगने वाला कीड़ा बकनर जो 'हुर्रा' का संपादन करता है अपनी पुरानी आदत के मुताबिक हिनहिना रहा है और यह सोच रहा है जैसे वह कोई बड़ी अक्ल की बात कर रहा हो.''

''यह है तरीका लिखने का— मिर्च-मसालेदार और सटीक सीध-सादा लेखन मुझे बोर कर देता है.''

इसी क्षण एक ईंट खिड़की से उड़ती हुई अंदर आयी और मेरी पीठ के पास गिरी. मैं भौचक्का रहा गया. पता नहीं कैसे मैं उसकी जद से दूर रह गया.

संपादक बोले, ''ये जरूर कर्नल रहे होंगे. मैंने पिछले दो दिनों से उनके आने की उम्मीद कर रहा हूं.

''जी हां! तशरीफ रखिए, श्रीमान. कुर्सी पर जरा संभल कर बैठिएगा. इसी एक टांग टूटी हुई है. मेरा ख्याल है मैं सड़ांध भरे झूठे कर्नल ब्लादर स्काइट टेकुम्से से मुखातिब होने का सम्मान पा रहा हूं?''

''जी श्रीमान, मुझे आप का एक छोटा-सा हिसाब बराबर करना है. आपको फुर्सत हो तो हम शुरू करें!''

मुझे अमरीका के नैतिक और बौद्धिक विकास के प्रोत्साहन पर एक लेख पूरा करना है, लेकिन कोई जल्दी नहीं है. शुरू कीजिए.''

दोनों पिस्तौलें एक साथ गरजीं. संपादक के बालों की एक लट उड़ गयी, और कर्नल की गोली के जीवन का अंत मेरी जांघ में हुआ. कर्नल के बायें कंधे पर खरोंच आयी. उन्होंने फिर फायर किया. दोनों अपना-अपना निशाना चूक गये, लेकिन मेरा हिस्सा मुझे मिल कर रहा. मेरी बांह में लगी. तीसरी बार के वार में दोनों भद्रजन थोड़ा-थोड़ा जख्मी हुए और मेरी एक अंगुली घायल हुई.

फिर अपनी-अपनी पिस्तौलों में दोबारा गोलिया भरने के दौरान वे चुनावों और फसलों की बातें करते रहे और मैं अपने जख्मों पर पट्टियां बांधता रहा. लेकिन थोड़ी ही देर बाद वे फिर एक-दूसरे पर गोलियां चलाने लगे और हर गोली असरदार रही— बस, इतना जान लीजिए कि छह में से पांच गोलियां मेरे हिस्से में आयीं. छठी कर्नल को लगी और वे गंभीर रूप से घायल हो गये. उन्होंने मजाक में कहा कि अब उन्हें शुभ प्रभात करना पड़ेगा, क्योंकि उन्हें शहर में कुछ जरूरी काम है. उसके बाद उन्होंने कब्र खोदने और ताबूत बनाने वालों का पता पूछा और चलते बने.

प्रधान संपादक मेरी ओर घूमे और बोले, ''खाने के समय मेरे कुछ मित्र आने वाले हैं. मुझे अब तैयार होना पड़ेगा. तुम्हारा मुझ पर एहसान होगा अगर तुम प्रूफ पढ़ लो और ग्राहकों से भी निबट लो.''

ग्राहकों से निबटने की बात पर मैं थोड़ा दुखी हुआ, लेकिन मेरे कानों में गोलियों की गूंज अब भी इतनी जम कर बैठी हुई थी कि मैं कुछ भी सोचने या कहने लायक नहीं रह गया था.

वे कहते रहे, ''जोंस 3 बजे यहां आयेगा— उसकी खाल उधेड़ देना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिलेस्पी शायद पहले आयेगा– उसे खिड़की के बाहर फेंक देना. फर्गुसन 4 बजे के करीब आयेगा– उसकी हत्या कर देना. मुझे लगता है, आज इतना ही काम रहेगा. अगर किसी किस्म का दिक्कत हो तो तुम पुलिस पर एक फनफनाता हुआ लेख लिख सकते हो– चीफ इंस्पेक्टर की ऐसी तैसी कर देना. शस्त्र वगैरह दराज में हैं– कारतूस वहां उस कोने में; पट्टियां वगैरह वहां कबूतरखाने में. कोई दुर्घटना हो जाये, तो लैंसेट के पास जाना; वह नीचे की मंजिल पर मिलेगा, सर्जन है. वह विज्ञापन देता है– हमारी अदला-बदली चलती रहती है."

वे चले गये. मैं कांप उठा. अगले तीन घंटों के दौरान मैं इतने भयानक खतरों से गुजर गया कि मेरी सारी मानसिक शांति और प्रफुल्लता मेरा साथ छोड़ कर चली गयी. जोंस आया. मैंने इंटर उठाया. उसने इंटर मेरे हाथ से छीन लिया और मेरी धुनाई करके चलता बना. एक अजनबी आया और मेरे बाल झिंझोड़ कर चलता बना. एक और अजनबी, जिसका नाम टाॅप्सन था, मुझे पूरी तरह लुंज-पुंज बना गया. आखिर में, मैं एक कोने में दुबका रह गया था जबकि मेरे सिर पर संपादकों, गुंडों, राजनीतिज्ञों और लुटेरों की क्रुद्ध भीड़ खड़ी हुई थी. वे मुझे गालियां दे रहे थे. चीख चिल्ला रहे थे और अपने हथियार चमका रहे थे, मुझे मार-धमका रहे थे. मैं अपना त्यागपत्र लिखने ही जा रहा था कि प्रधान संपादक लौट आये. इनके कुछ अच्छे, खुशमिजाज किस्म के उनके मित्र भी थे.

अब वहां एक ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया, जिसे दुनिया की कोई लेखनी बयान नहीं कर सकती, चाहे वह लौह-लेखनी ही क्यों न हो. गोलियां चलीं, तलवारें चलीं, अंग-भंग किये गये लोग, उनके शरीर उड़ गये, उन्हें खिड़की से बाहर फेंका गया.

दफ्तर जैसे युद्ध का मैदान बन गया था. वहां युद्ध-नृत्य चल रहा था. फिर सब खत्म हो गया. पांच मिनट में ही सब तरफ शांति छा गयी.

अब मैं और प्रधान संपादक अकेले रह गये थे. संपादक महोदय खून से लथपथ थे. सब तरफ घायल शरीर थे, खून था.

हम दोनों उस दृश्य का गहन सर्वेक्षण कर रहे थे.

वे बोले, "जब तुम इस के आदी हो जाओगे, तो तुम्हें यह जगह रास आने लगेगी."

मैंने कहा, "मुझे आपसे माफी ही मांगनी पड़ेगी. मेरा ख्याल है, मुमकिन है कुछ अरसे बाद मैं वैसा ही लिखने लगूं, जैसा आपको ठीक लगता हैं– मैं कुछ अभ्यास कर लूं, यहां की भाषा सीख लूं; उसके बाद मैं जरूर-जरूर वैसा ही लिखने लगूंगा, मुझे पूरा भरोसा है. लेकिन मैं साफ सच बताऊं– अभिव्यक्ति की ऐसी ऊर्जा की अपनी दिक्कतें हैं... और फिर यहां खलल भी पड़ता रहता है. आपने खुद भी यह महसूस किया होगा. इसमें कोई शक नहीं है कि जोशीला लेखन जनता की भावनाओं को उभारता है, लेकिन मैं क्या करूं, मुझे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना मुझे जरा भी पसंद नहीं है. जितनी बार आज यहां खलल पड़ा है, उसे देखते हुए मुझे लगता है मैं यहां आराम से लिख ही नहीं पाऊंगा. मुझे नौकरी जरूर पसंद है, लेकिन मैं ग्राहकों की गुलामी करता रहूं, यह मुझ से नहीं होगा. मैं मानता हूं, यहां के अनुभव मेरे लिए नये हैं, और रोचक भी हैं एक तरह से, लेकिन उनका बंटवारा सही है. कोई आदमी खिड़की से आप पर गोली चलाता है और अपंग मैं हो जाता हूं; एक बम अंगीठी के पाइप से आपको संतुष्ट करने के लिए आता है और अंगीठी के दरवाजे को मेरी गर्दन की तरफ उछाल देता है; आपका एक दोस्त आपका हालचाल पूछने आता है और मुझपर इतने छर्रे उगल देता है कि मेरी खाल मेरे सिद्धांतों को अपने गीता बनाये रखने के लायक ही नहीं रह जाती; आप खाना खाने चले जाते हैं और जोंस इंटर लिये चला आता है, गिलेस्पी मुझे खिड़की के बाहर फेंक देता है, टाॅप्सन मेरे सारे कपड़े फाड़ देता है, और एक अजनबी मेरी खोपड़ी को इतनी आजादी से झिंझोड़ देता है, जैसे वह मेरा पुराना परिचित हो; और फिर पांच मिनट से भी कम समय में मुल्क के सारे गुंडे युद्ध के रंग पोते आते हैं और मुझमें जो कुछ भी बाकी बचा होता है, उसे भी अपनी बंदूकों से इतना जस्त कर देते हैं कि मुझे मौत अपनी आंखों के सामने नाचती नजर आने लगती है. कुल मिलाकर देखा जाये, तो इतने कम समय में इतनी उत्तेजना मैंने अपनी पूरी जिंदगी में नहीं भोगी है. नहीं; आपसे मुझे कोई शिकायत नहीं हैं और जिस तरह बिना उत्तेजित हुए आप अपने ग्राहकों के सामने चीजों का खुलासा करते हैं, वह भी मुझे पसंद है, लेकिन आप जानें, मैं इन चीजों का आदी नहीं हूं. दक्षिण वालों का दिल कुछ ज्यादा त्वरापूर्ण है. दक्षिण वालों का अतिथि सत्कार अजनबियों के लिए भी बड़ा खुला और विशाल है. जो पैराग्राफ मैंने आज लिखे और जिनके ठंडे वाक्यों में आपके हाथों ने टेनिसी की गरम आत्मा भरी, उससे भिड़ों का एक और छत्ता छिड़ जायेगा. तमाम संपादकों की भीड़ आयेगी– वे भूखों की तरह आयेंगे और चाहेंगे कि कोई आदमी नाश्ते के रूप में उनके सामने परोस दिया जाये. मुझे आपको अलविदा कहना ही पड़ेगा. उस भोज-समारोह में उपस्थित रहने की. मेरी कोई इच्छा नहीं है. दक्षिण में मैं अपनी सेहत बनाने आया था. इसी उद्देश्य से मैं वापस जा रहा हूं. टेनिसी की पत्रकारिता कुछ ज्यादा ही हिला देने वाली है."

इसके बाद हमने विदा ली. एक-दूसरे से, खेद सहित. और मैंने लौट कर अस्पताल में कमरा ले लिया. □

रूपांतर : विजया सुदीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला का पारखी

कन्हैया लाल कपूर

जालंधर के मसखरों को क्या सूझी, उन्होंने मेरा नाम एक मुशायरे की अध्यक्षता के लिए प्रस्तावित कर दिया, इसकी सूचना तब दी गयी जब पानी सिर से गुजर चुका था. उन्होंने मुशायरे की घोषणा समाचार पत्रों में भी करा दी. निमंत्रण पत्र, जो कवियों और शायरों के आतंकवादी संघ के सचिव की ओर से पाया था, इस प्रकार था :

महोदय,

चूंकि भारत विभाजन के बाद मुशायरों के स्थायी अध्यक्ष मौलाना नजीबाबादी हमसे छिन गये हैं, इसलिए निराश होकर आपको कष्ट दिया जा रहा है, मुशायरे की अध्यक्षता स्वीकार कर सेवक को कृतज्ञ कीजिये.

भवदीय

सचिव

इस कविता में इक्कीस बंद थे, क्योंकि उन्होंने यह कविता इक्कीस वर्ष की आयु में लिखी थी. यह भी अच्छा ही रहा कि कविता की रचना का विचार उन्हें तीस बरस की उम्र में नहीं आया.

मैंने जल्दी-जल्दी अध्यक्ष बनने की स्पीच तैयार की. कालिज से एक दिन की छुट्टी ली. मैं काले-काले बादलों के पीछे प्रकाश की परंपरागत सुनहरी किरण की कल्पना करके मन ही मन प्रसन्न हो रहा था कि जीवन में पहली बार रेलवे स्टेशन पर मेरा स्वागत होगा, संभवतः पुष्प मालाएं भी पहनायी जायें पुष्प मालाओं के विचार के साथ ही मुझे अपनी ऐनक का ध्यान आ गया. ऐनक की विशेष रूप से रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि पुष्प मालाओं वाले महानुभाव ऐसी तेजी से मालाएं पहनाते हैं कि शीशे तो शीशे, कमानियां तक टूट जाती हैं. ये मैं सोच ही रहा था कि कमाल साहब आ पहुंचे. कमरे में प्रवेश करते ही बोले, "एक खुशखबरी सुनेंगे?"

मैंने कहा, "बड़े शौक से सुनाइये."

"मेरे अलावा शमन को भी जालंधर से बुलावा आया है."

मैंने पूछा, "यह शमन साहब कौन हैं?"

कमाल साहब, "यह शमन साहब नहीं साहिबा हैं.

कमाल साहब, "यह शमन साहब नहीं साहिबा हैं. पूरा नाम है शमन कुमारी. हिंदी में लिखती हैं. बच्चों की कवयित्री हैं."

मैंने कहा, "लेकिन मुशायरा तो नौजवानों के लिए हो रहा है. इसमें बच्चों की कवयित्री का क्या काम?"

हंसकर बोले, "आप भी बच्चों की ही बातें करते हैं. उन्हें मुशायरे में कुछ नूतनता लाने के लिए बुलाया गया है."

गाड़ी चलने में अभी दो-तीन मिनट शेष थे कि कमाल साहेब एक मोटी, भद्दी और बदसूरत स्त्री के साथ डिब्बे में आये. उस महिला का परिचय कराते हुए बोले, "ये शमन कुमारी हैं."

शमन कुमारी के नख-शिख का विस्तृत वर्णन मैं इसलिए नहीं करना चाहता कि आपको पढ़कर कोफ्त होगी. सारांश यह कि आप किसी ऐसी स्त्री की कल्पना कीजिये जिसे देखकर पुरुष जाति की कंपकंपी छूट जाये. आप एक अजीब ठस्से से मेरी बगल की सीट पर बैठकर मुझसे संबोधित हुईं.

"आप हिंदी जानते हैं?

"आप हिंदी जानते हैं?"

मैंने कहा, "बस पढ़ लेता हूं, लिख नहीं सकता."

"आपने शमन पिटारी देखी है?"

"नहीं."

"शमन क्यारी?"

"नहीं."

"शमन चिंगारी?"

"नहीं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"खैर कोई बात नहीं, मेरे पास तीनों मौजूद हैं." यह कहते ही अपने बैग में से हिंदी की तीन छोटी-छोटी पुस्तकें निकालीं, "कविता सुनेंगे आप?"

मैंने विवशतावश हामी भर दी.

यह एक कविता है उन्होंने शमन पटारी खोलते हुए कहा, "मैंने इसे इक्कीस वर्ष की आयु में लिखा था. यह यूं शुरू होती है :

शूं-शूं करती/शौ-शौ करती/मक-मक करती/शक-शक करती/चली आ रही है इक गाड़ी."

मैंने शिष्टता के नाते प्रशंसा करते हुए कहा, "शुरूआत तो बहुत अच्छी है."

हाथ के टहोके से मुझे हटाते हुए बोली "अजी छोड़िये, आपने तो हमें बनाना शुरू कर दिया. पहले पूरी कविता तो सुन लीजिये :

खरड़ खरड़ खड़/खड़ खड़ करती/धरड़ धरड़ धड़/धड़ धड़ करती/भरड़ भरड़ भड़/भड़ भड़ करती/चली आ रही है/इक गाड़ी."

इस कविता में इक्कीस बंद थे, क्योंकि उन्होंने यह कविता इक्कीस वर्ष की आयु में लिखी थी. यह भी अच्छा ही रहा कि कविता की रचना का विचार उन्हें तीस बरस की उम्र में नहीं आया. जब कविता समाप्त हुई तो मैंने कमाल साहब की ओर अर्थपूर्ण नजरों से देखा, उन्होंने मेरी विवशता का आनंद लेते हुए कहा, "कहिये, क्या खयाल है?"

कहना पड़ा, "शमनजी ने तो कमाल ही कर दिया है."

शमन जी तुरंत बोल उठीं, "अजी छोड़िये, इसमें कमाल की क्या बात है, खैर अब सुनिये 'कोयल और कौवा' :

एक था कौवा/एक थी कोयल/कोयल कूकी/कू कू कू कू/कौवा बोला/कायं कायं/कोयल अब के कुछ न बोली/कौवा बोला कोयल प्यारी/घिर आयी बदरिया कारी/आओ चलें जमना तट जायें/नाचें, कूदें, शोर मचायें/कोयल कूकी/कू कू कू कू/कौवा बोला 'कायं कायं'/मैंने उन दोनों को डांटा/क्या करते हो हाय-हाय."

इस पर मुझे कहना पड़ा, "बहुत ही खूब."

कुमारी शमन मचल उठी, "अजी छोड़िये, अभी आपने सुना ही क्या है, जरा दो-चार कविताएं सुन लीजिये. फिर जी भरकर प्रशंसा कीजिये, वैसे कविताओं की हमारे यहां कमी नहीं है. और आवश्यकता पड़ने पर मंच पर खड़े-खड़े तैयार कर सकती हूं."

मैं इतना उकता गया कि सोचने लगा कि चलती गाड़ी से छलांग लगा दूं लेकिन फिर खयाल आया कि मुशायरे की अध्यक्षता कौन करेगा.

भगवान-भगवान करके जालंधर स्टेशन आयो. हम तीनों प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े संघ के सदस्यों की प्रतीक्षा करने लगे. लेकिन कोई भी व्यक्ति आता हुआ दिखाई नहीं दिया. शमन ने कहा, "चलिये, तांगा लेकर कार्यालय चलते हैं."

वहां पहुंचकर मालूम हुआ कि शायरों के आतंकवादी संघ को अवैध घोषित कर दिया गया है. और संघ के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये हैं.

शमन कुमारी कहने लगी, "चलो अच्छा ही हुआ, किसी काफी हाउस में चलते हैं, वहां आपको 'शमन चिंगारी' सुनाऊंगी.

काफी हाउस में पहुंचकर मेरी इच्छा हुई कि दीवार से मारकर सिर फोड़ लूं या जोर-जोरसे रोना शुरू कर दूं.

शमन कुमारी अपनी पुस्तक सुनाने में धुत थी. जब आधी पुस्तक पढ़ गयी तो मुझसे पूछा, "आप उकता तो नहीं गये, बस अब तीस कविताएं और हैं."

मैंने शिष्टता से काम लेते हुए कहा, "उकताया तो नहीं हूं. हां, एक जरूरी काम याद आ गया है. अगर आज्ञा हो तो सामने की दूकान पर जाकर फोन कर आऊं."

"बड़े शौक से." शमनजी ने कहा, "मैं इतने में कमाल साहब को 'डम डम डिग' पर कविता सुनाती हूं.

मैंने दो-तीन लंबे-लंबे श्वास लेने के बाद सामने की सड़क की ओर देखा. सहसा मेरी नजर एक पुलिस इंस्पेक्टर पर पड़ गयी.

वह काफी हाउस की ओर आ रहा था. ज्यों ही वह मेरे निकट पहुंचा. मैंने बड़े दयनीय स्वर में उनसे कहा, "आप पुलिस इंस्पेक्टर हैं?"

"जी हां."

"मुझे गिरफ्तार कर लीजिये."

"गिरफ्तार कर लूं. लेकिन आपका अपराध क्या है?"

"मेरा अपराध है कि मैं कला का पारखी हूं." □

मतदान

पृथ्वीराज अरोड़ा

गांव के प्राईमरी स्कूल के एक कमरे में मतदान-केंद्र की व्यवस्था कर ली गयी थी. बाहर रंग-बिरंगे कपड़ों में स्त्री-पुरुष कतार में खड़े थे. कुछ दूरी पर छोटे-छोटे बच्चे उत्सुकता से इस नजारे को देख रहे थे.

मतदान का समय हो गया. लोग एक-एक करके आने और

मतदान का समय हो गया. लोग एक-एक करके आते और वोट डालकर चले जाते.

एक सांवली भोली-सी लड़की जब अलटर्नेट प्रिजाईडिंग अफसर के पास पहुंची तो उसने धीरे-से पूछा, "तुम्हारी उमर क्या है?" लड़की ने उत्तर नहीं दिया और सिर झुकाए खड़ी रही. अफसर ने दोबारा पूछा, "तुम्हारी उमर क्या है?"

"जी, वाह वाह ही है."

"यानि पंद्रह-सोलह साल." लड़की घबरा गयी. उसने इधर-उधर देखा. अफसर ने फिर कहा, "मैं किसी को बताऊंगा नहीं. तुम सच-सच बता दो."

"जी, सोलहवें में हूं."

"तुम्हें मालूम है, इस उमर के नागरिक वोट नहीं डाल सकते."

"जी, पता है."

"फिर तुमने ऐसा क्यों किया? जानती हो तुम्हें इस जुर्म में कैद भी हो सकती है."

लड़की रुआंसी हो गयी, "जी, मेरा भाई पढ़-लिखकर भी बेकार घूम रहा है. मेरे बाप को कहा गया है कि अगर वह सारे परिवार के वोट फलां उम्मीदवार को डलवा दे तो उसके बेटे को नौकरी दिलवा देंगे. इसलिए मुझे भी....."

अफसर ने लड़की को वोट डालने की अनुमति दे दी. लड़की वोट डालकर भारी कदमों से आगे बढ़ गयी. अफसर कुछ क्षण उसे जाते देखता रहा. फिर उसांस छोड़ अगले मतदाता की ओर उन्मुख हो गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमर्थ

राजेंद्र सिन्हा

जिस चपरासी की ड्यूटी बंगले पर लग जाती है, वह दूसरे चपरासियों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है. बंगले पर बर्तन मांजने और कपड़े धोने के एवज में उसे अफसर से दूसरों की बुराई करने की सुविधा मिल जाती है.

प्रतीक्षा की लंबी घड़ी समाप्त हो गयी. नये साहब आ गये हैं. दफ्तर के प्रवेश द्वार पर बैठा मिट्ठू चपरासी बाबूओं को सूचना देने लपका. बाबू कुर्सियों को छोड़ बरामदे में से होते हुए प्रवेश द्वार की ओर दौड़े. जब तक बाबू दरवाजे तक पहुंचे साहब जीप से उतर चुके थे... एकटक नये दफ्तर की ओर निहार रहे थे. नये अफसर देखने में कैसे होंगे—जिज्ञासा समाप्त हो गयी. वे एकटक रियासती जमाने की इस खंडहर नुमा इमारत की ओर टकटकी लगाये हुए थे. खासे ऊंचे पूरे... चेहरे का रंग काला चिकना.. मोटे लेंस का चश्मा, ऊंची उठी हुई नाक पर टिका हुआ था. मटमैले रंग का सफारी पहने हुए. ऊंचे ललाट पर बिखरी हुई बालों की लटें प्रशासकीय अनुभव की झलक दर्शा रही थी.

"नमस्कार....स्वागत है". सबसे आगे बढ़कर हेड्क्लर्क बिदल बाबू ने झुके हुए हाथ जोड़कर नये अफसर का अभिवादन किया. हड़बड़ाकर दौड़े हुए चले आये थे. जल्दी में कोट के नीचे वाले बटन को ऊपरी काज में अटका लिया था... नये अफसर समझ गये, जरूर दफ्तर का बड़ा बाबू है. दरवाजे के इर्दगिर्द अन्य बाबू हाथ जोड़कर खड़े हुए थे. महिला कर्मचारी बाहर नहीं आयी थीं. इसी बीच सबसे पीछे खड़े चपरासियों की

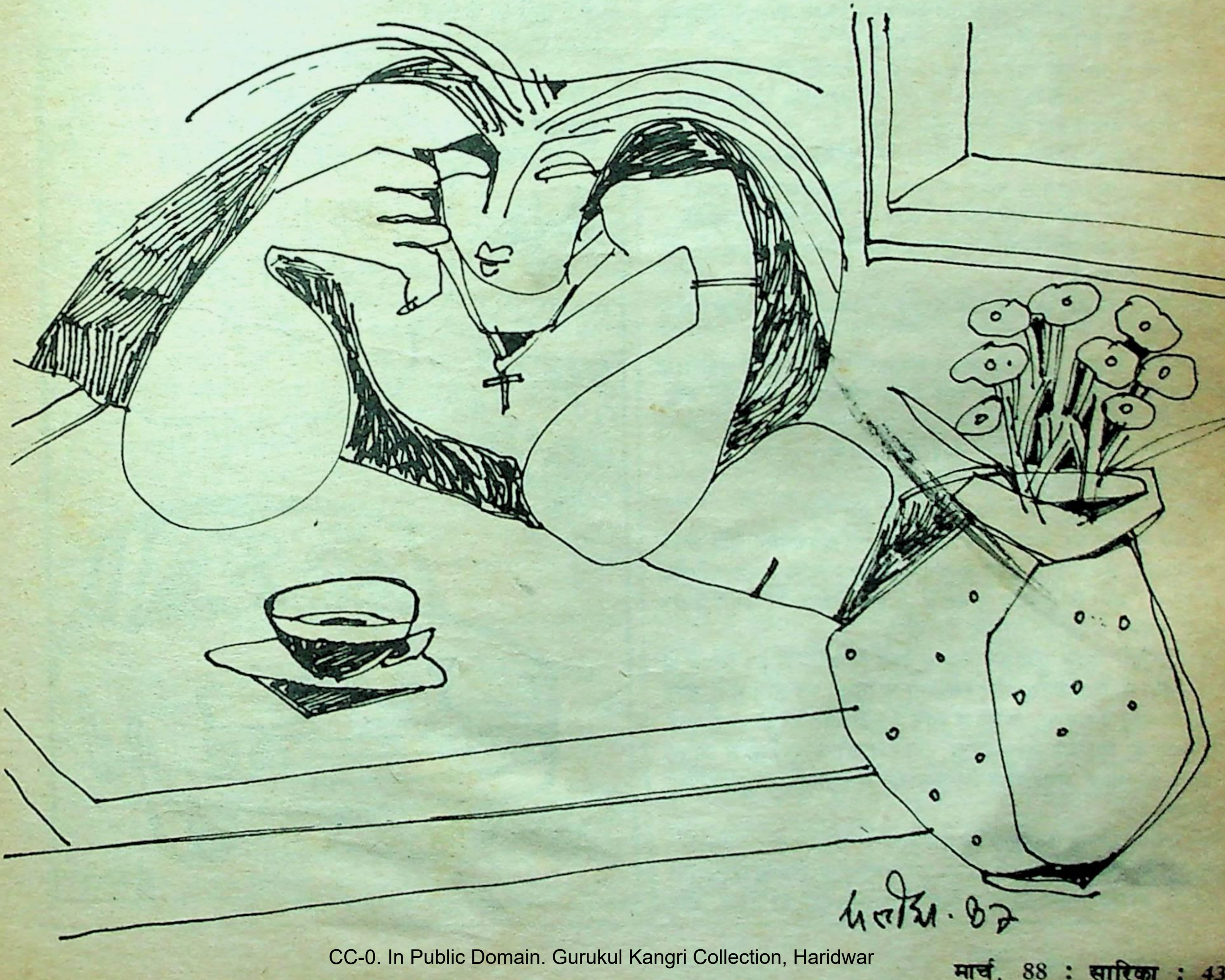

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कतार में शरीक छोटे लाल चपरासी ने आगे बढ़ने की चेष्टा की. क्लर्क रमेश ने उसे हाथ बढ़ाकर डपरते हुए रोक दिया, "अपनी औकात में रहो छोटे लाल." तिलकधारी बाबू ने भी उसे गुस्से की नजर से देखा.

भन्ना गया....औकात....! कल का नौकरी पर लगा हुआ यह लड़का मेरी औकात बतलाने लगा है. पत्थर की तरह जड़ बना हुआ छोटे लाल सोच रहा था— मैं इस दफ्तर का संबसे पुराना चपरासी हूं... अब तक हर अफसर की मूंछ का बाल बना रहा.... मेरी औकात..., और तुम बाबू लोगों की क्या औकात है? कोई दफ्तर में घुसा नहीं कि एक चाय और कचौरी के लिए पीछे पड़ जाते हो... और यह भिखमंगा लड़का हर महीने प्रपन्न से पैसे लेकर अपने बालों की कटिंग करवाता है... तंबाकू खाने के लिए सबसे सुबह से शाम तक दो-दो, चार-चार पैसे की भीख मांगता है. इनकी औकात? "कल तक कहते थे—छोटेलालजी... जमादार छोटे भय्या... साहब से कहकर हमारा ग्रेन लोन मंजूर करवा दो. हमारा जी.पी.एफ. मंजूर करवा दो.

टनन्-जोर की घंटी बजी. छोटे लाल को आवाज लगायी जा रही थी. एच.के.राय, जो राय साहब के नाम से जाने जाते थे, अपनी नयी कुर्सी पर विराजमान हो चुके थे, मोटे लेंस का चश्मा टेबल पर झुकाये हुए, उंगली से टेबल ग्लास पर चढ़ी धूल पोंछ रहे थे. बड़े बाबू दस्तखत के लिए कैशबुक और चार्ज रिपोर्ट संभाले हुए चापलूसी भरी बातें सुनाते जा रहे थे— "सर, एम.एल.ए. साहब का फोन आया था. कह रहे थे साहब, आ जायें तो हमसे बात करवा देना. कलेक्टर साहब गुप्ता साहब से खुश नहीं थे. अक्सर कहा करते थे, कैसे हैं तुम्हारे साहब? काम-धाम तो करते नहीं, बस तंबाकू खाकर डाक-बंगले में पड़े रहते हैं?"

छोटे लाल चुपचाप भीगी बिल्ली बना एक कोने में सिमट कर खड़ा हो गया, देखा-साहब मंद-मंद मुस्कराते हुए टेबल ग्लास की धूल पोंछ रहे हैं. सूरत से तो अफसर रोबदार नजर आता है.

चपरासी के आने की आहट पा बड़े बाबू ने उसकी ओर गर्दन फेरकर डांटते हुए कहा, "क्या देख रहे हो, समझ में नहीं आता, जाओ, कपड़ा लेकर आओ और टेबल की धूल साफ करो."

फिर आवाज में नरमी लाते हुए साहब की ओर देखते हुए कहा, "क्या करें साहब, गुप्ता साहब के जमाने में काम में बहुत ढिलाई आ गयी है."

बहुत ही शांत स्वर में राय साहब ने कहा था, "सब ठीक हो जायेंगे."

साहब ने इच्छा जाहिर की, "दफ्तर के सब बाबुओं को बुलाओ. हम बात करना चाहते हैं."

हाल में जाकर छोटेलाल ने हांक लगायी—चलो-चलो, सबको साहब बुला रहे हैं."

सभाकक्ष में उस समय बिलकुल सन्नाटा था. कर्मचारी एक-एक करके कुर्सी पर बैठते जा रहे थे, एक तरफ महिलाएं आकर बैठ गयीं. दूसरी ओर पुरुष एक ठिगनी-सी लड़की जायसवाल जब अंदर दाखिल हुई तो साहब से नहीं रहा गया, आश्चर्यजनक स्वर में कहा, "ओ हो, इस बच्ची को किसने नौकरी पर रख लिया."

"हा.हा.हो.हो.हा!" सब ठकहा मारकर हंस दिये.

साहब ने उस पर बहुत प्यार जिताया, पीठ थपथपायी और अपने पास बिठाया. तत्पश्चात बहुत ही गंभीर होकर उन्होंने अपना परिचय दिया था— "आप सभी लोग जानते हैं, मैं इस विभाग का सबसे कठोर अफसर समझा जाता हूं." (कुछ देर मौन)

फिर उन्होंने गर्दन घुमाकर कहना शुरू किया, "मैं हर विषय में दखल रखता हूं. एकाउंट्स और स्थापना के नियम भी जानता हूं. कोई मुझे धोखा नहीं दे सकता. अच्छे के साथ अच्छा और बुरे के साथ बुरा, मगर किसी का नुकसान नहीं करता. (फिर कुछ रूककर) तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं, अनुशासन का उल्लंघन मैं कतई पसंद या बर्दाशत नहीं करूंगा...."

आगे उन्होंने अपनी सेवाकाल का एक किस्सा सुनाकर दृष्टांत दिया— "बालाघाट के दफ्तर में नरहरी नाम का एक बाबू था. सैकड़ों शिकायतें की उसकी. शराब पीकर लोगों से गाली गलोच करता था. टी.ए. और मेडिकल पास करवाने के भी लोगों से पैसे लेता था. मैंने उसे बहुत समझाया— नरहरी, मैं दूसरे किस्म का अफसर हूं. एक मिनिट में तुम्हें ठीक कर दूंगा. नहीं माने, वही हरकतें. रिपोर्टों-रिपोर्टों, जांच-वांच, ये तो सब फिजूल की प्रक्रियाएं हैं, मैंने उसकी बंद कमरे में एक दिन धुलाई कर दी. भय्या, उस दिन से रास्ते पर आ गये."

दवे आदतन लेट लतीफ था. इस मीटिंग में भी वह देर से पान चबाता हुआ पाया. राय साहब क्या भिनके हैं. भय्या, एकदम गुस्से से थर्रा गये ओ हो, बाबूजी की खटिया खड़ी कर दी. डांटते हुए पूछा, "हू आर यू? मिस्टर नोट कर लो. मुझे अनुशासन-हीनता रत्ती भर बर्दाश्त नहीं. खिड़की से उठाकर फेंक दूंगा."

सन्नाटा. भयंकर सन्नाटा. राय साहब ने साफ-साफ उपस्थित कर्मचारियों को जता दिया— किसी के भरोसे मत रहना. मैं किसी नेता या पत्रकार से नहीं डरता हूं.

इस परिचय बेला में राय साहब ने एक मूलमंत्र कर्मचारियों को भेंट स्वरूप किया. इतना करो जितना आटे में नमक समाये.

मीटिंग समाप्त होने के पश्चात रायसाहब ने बिदल बाबू को रोक लिया. कुछ महत्वपूर्ण बातें करनी थीं, "बड़े बाबू जरा रूकिये."

बिदल बाबू रूक गये.

कितना नाटकीय स्वभाव था उनका. कहां, शोर की तरह बाबुओं की ओर दहाड़ते हुए राय साहब, कहां बड़े बाबू के सामने मेमने की तरह मिमियाते हुए— "अरे यार, बड़े बाबू, कल हमारी फैमिली आ जायेगी... बंगले पर एक चपरासी का इंतजाम तो कर दीजिये. जरा ढंग का हो, समझे."

बड़े बाबू फल के कुप्पा हो गये. हाथों की दोनों हथेलियां घुमा दीं, "हां साब... आज ही लीजिये."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी समय उन्होंने अपने व्यक्ति[illegible] जानकारी भी दी- ईश्वर ने उन्हें सबकुछ दिया है... संपन्न परिवार, जमीन-जायदाद सबकुछ. किसी भी बात की कोई कमी नहीं. बड़े भाई ऊंचे आड़तिया हैं, लेकिन ऊपरवाले ने एक कसर रख दी. नहीं दी है तो केवल संतान."

मोटे लेंस का चश्मा टेबल पर रखा हुआ था. स्थिर आंखों में आंसू झलकते हुए दिखे. एक दुःखी इंसान— बहुत ही दुःखी इंसान.

काम में बंटवारे की फाइल निकालकर बड़े बाबू कुर्सी पर आकर बैठ गये. आज की तारीख का सबसे महत्वपूर्ण काम बंगले पर चपरासी की व्यवस्था उन्हें करनी थी. बहुत ही पेचीदा काम था. इस दफ्तर में कोई ढंग का चपरासी है ही नहीं. मिट्ठू लाल-कामचोर. उसके मुंह की मक्खी ही उससे नहीं उड़ती. दिन भर दफ्तर के दरवाजे पर बैठा हुआ बीड़ी फूंका करता है. गणपत-चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी यूनियन का नेता है. उससे तो कोई काम कहना ही बेकार है. हमेशा नेतागिरी की डींगें हांका करता है. छोटेलाल-चुगलखोर. अफसर से दफ्तर की चुगलखोरी. गुप्ता साहब के साथ बदनाम भी हो चुका है. रसूलबेग-अरझरे. सबके सब बेकार. बड़े बाबू का दिमाग काम ही नहीं कर रहा था. शाम हो गयी. कोई निर्णय नहीं ले पाये.

साढ़े-पांच बज गये. दफ्तर का समय खत्म हो गया. घर चलने का उपक्रम शुरू हुआ. जैसा कि सदैव इस दफ्तर में होता आया है, एक-दो बाबू जिनकी निगाहें पांच बजे से ही घड़ी पर टिक जाती हैं, एकदम गायब नजर आये, महिला कर्मचारी साड़ी का पल्लू और मनीपर्स संभालती हुई नजर आती हैं. फर्राश के हाथों में झाड़ू होता है. दफ्तर के बाहर बड़े बाबू का कदम सबके बाद निकलता है. आज ऐसा नहीं हुआ. सभी गंभीर थे. दिमागों में प्रश्नों के अंबार थे. बहुत सोच रहे थे. कुछ ही दूर पी.एच.आई. का दफ्तर था. बड़े बाबू वहां तक पहुंचे ही होंगे कि पीछे से आते हुए दो साइकिल सवार बाबू उनके साथ हो लिये. फिर एक छोटी सी गली पार करके मैदान आता था. गली के नुक्कड़ पर ही एक बड़ा पीपल का पेड़, उस पर माताजी का मंदिर और ओटला बना हुआ था. कुछ बाबू रूककर इनका इंतजार कर रहे थे— नया अफसर कैसा है?

आसपास वहां केवल दो दुकानें थीं. एक मूंगफलीवाली कुछ दूर अपनी टोकरी लेकर बैठती थी. और एक गुमटीवाला चाय बनाता था. रूमाल झटकारता हुआ रमेश मूंगफली ले आया. मीटिंग शुरू हो गयी— एकता के लिए. अफसर कैसा भी हो, यदि हममें एकता है तो हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता. दूसरी बात सभी बिदलबाबू से यह जानना चाहते थे कि हम लोगों के बाहर आने के बाद राय साहब ने बड़े बाबू को रोककर क्या कहा?

बड़े बाबू बुजुर्ग थे. प्रशासनिक कार्य प्रणाली में ढीले होने के बाबजूद कर्मचारी हितों के रक्षक जाने जाते थे. उन्होंने अपने सभी कर्मचारी, साथियों को आश्वासन दिया, "अफसर ऊपर से जरूर कठोर दिखता है, मगर हृदय से बहुत दयालु है. मैं जहां तक समझा हूं— मार लेगा, चिल्ला लेगा, मगर कभी किसी का नुकसान नहीं करेगा. पत्रकारों और नेताओं का चाटुकार है."

सबने यह जानना चाहा, "आखिर तुम्हें आज रोककर कहा क्या था?"

बड़े बाबू बड़प्पन में और फूल गये. एक महत्वपूर्ण काम सौंपकर उन्हें जो सम्मान प्रदान किया गया था उसके स्मरण मात्र से ही उनकी आंतरिक प्रसन्नता बढ़ गयी. बताया, "कल उनकी फैमिली आ रही है. बंगले पर चपरासी का इंतजाम करना है."

जिस चपरासी की ड्यूटी बंगले पर लग जाती है, वह दूसरे चपरासियों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है. बंगले पर बर्तन मांजने और कपड़े धोने के एवज में उसे अफसर से दूसरों की बुरायी करने की सुविधा मिल जाती है. छोटे लाल ने यह सब किया है. उसके कारनामे बहुत ऊंचे हैं. यदि वह गुप्ता साहब के साथ बदनाम नहीं हो जाता तो उसकी योजना विरोधी बाबुओं और चपरासियों को सस्पेंड करवाने की थी. महिलाओं के प्रति तो उसके हृदय में रत्तीभर भी सम्मान की भावना नहीं थी. श्रीमती चंदाणी कुछ अधिक बनाव श्रृंगार करके आती हैं. उन्हें देखकर तो वह जाने कैसी शक्लें बनाने लगता है. सभी के सामने इस समय एक ही खतरा था— छोटेलाल.

अब तक भटनागर बाबू चुप थे. वह अफसर चरित्र के पूर्ण मर्मज्ञ एवम ज्ञाता समझे जाते थे. उनके निष्कर्म तर्कपूर्ण, अकाट्य और अंतिम होते थे. चुप्पी तोड़ते हुए उन्होंने चेतावनी दी, "अफसर को अच्छी तरह समझने में आप लोग बहुत गलती कर रहे हैं."

कुछ क्षणों के लिए मौन छा गया. सबकी निगाहें भटनागर बाबू की आंखों पर टिक गयी. उन्होंने बात आगे बढ़ायी— "साथियो, शायद आप लोग नहीं जानते हमारे अफसर की एक बहुत बड़ी कमजोरी है."

फिर कुछ क्षणों के लिए मौन छा गया. आखिर भटनागर साहब कहना क्या चाह रहे हैं.

उन्होंने स्पष्ट किया, "और वह कमजोरी है औरत. साहब बालाघाट में प्रशिक्षण केंद्र की एक व्यवस्थापिका को लेकर बदनाम हो चुके हैं. सुबह साढ़े दस से साढ़े पांच बजे शाम तक इनका दिन केंद्र पर ही गुजरता था. इस दफ्तर में दूसरा गुप्ता आ गया है."

गुप्ता अर्थात पूर्व अफसर, जो गांव की एक सहायिका के घर पर रात को रंगे हाथ पकड़े गये थे. क्रुद्ध भीड़ उन्हें जान से मार डालना चाहती थी. छोटे लाल की मदद से बच निकले, बात अखबार तक में छप चुकी थी.

रमेश आवेश में आ गया. बुरी तरह चिल्लाया, "बड़े बाबू, आपने यदि छोटे लाल की ड्यूटी बंगले पर लगायी तो दफ्तर रंडीवाला बन जायेगा."

"चु...प," प्रसन्न ने उसे बुरी तरह डांटा, "रमेश, अब तुम स्कूली बच्चे नहीं हो. एक सरकारी दफ्तर के बाबू हो. तुम्हें अपनी बोलचाल की भाषा सुधारनी चाहिए."

भटनागर बाबू की इस गंभीर चेतावनी ने कर्मचारियों के रोंगटे खड़े कर दिये. नये सोच में पड़ गये. पुराने अफसर गुप्ताजी चरित्र के जरूर गिरे हुए थे. किंतु दफ्तर में सदैव मर्यादा से रहे. किसी भी महिला कर्मचारी की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं. गांव की घटना यदि उजागर नहीं होती तो कोई नहीं जानता, यह चरित्र का इतना गिरा हुआ है. भटनागर बाबू ने कहा, "राय साहब को तो लोकलाज का विचार नहीं."

एकता— यदि कर्मचारियों में एकता रही तो आने वाली कठिनाइयों से निबटा जा सकता है. घर के भेदियों से सावधान रहा जाये. यदि अफसर कच्चे कान का हुआ तो मामूली-सी शिकायत भी किसी का कोई भी नुकसान कर सकती है. छोटे लाल को अफसर से दूर रखना बहुत जरूरी हो गया है. लेकिन इसका तरीका?

महफिल में उसका तरीका भी खोज निकाला गया— चौकीदार अरझरे करता क्या है? रात को आकर दफ्तर में सो भर जाता है. दिन भर पार्ट टाइम दो-तीन घरों के बरतन साफ करके ऊपरी कमाई कर रहा है. उसकी ड्यूटी दफ्तर में लगाकर छोटे लाल को चौकीदार बना दिये जाये. वह साहब और दफ्तर दोनों से अलग-थलग पड़ जावेगा.

वाह जनाब. क्या सुंदर उपाय ढूंढा है. बाबू लोग खुशी से नाच उठे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान की जय बोलो. बजरंग बली की जय के इस निर्णय के साथ कुछ शंका और कुशंकाओं को लेकर आज की मीटिंग समाप्त हो गयी.

जैसा कि कुशंका थी, इस उलटफेर से असंतुष्ट होकर अरझरे जरूर कुछ न कुछ उठापटक करेगा. वह भी कोई कम माया नहीं है. दफ्तर के जरूरतमंद बाबुओं और चपरासियों को ब्याज पर उधार पैसे देता है— ऐसा नहीं हुआ. रमेश ने उसे घुर दे दी— नया अफसर बहुत खर दिमाग का आया है. तूने अपनी सर्विस बुक में अपनी उमर दस साल कम लिखा रखी है. सो किसी ने शिकायत कर दी तो नौकरी से सफा हो जावेगा.'' चुप हो गया.

इसके बाद इस दफ्तर में कुछ समय बहुत सुख और शांति से बीता. एक अद्भुत श्रद्धा और विश्वास का वातावरण बनता जा रहा था.

दफ्तर में काम की गति ठीक प्रकार से चल निकली थी.अफसर की ओर से कोई रूकावट नहीं, दफ्तर का काम तो बाबू लोग ही करते हैं. राय साहब से सब बेहद खुश थे. अफसर कागजों पर दस्तखत आंख मूंदकर करता है. उनके लिए होली पर दी जानेवाली उपाधियां भी ढूंढी जाने लगी थी, लेकिन तभी राय साहब दफ्तर में एक हरकत कर बैठे.

फील्डवर्कर श्रीमती शरण इतनी सुंदर तो नहीं थीं, किंतु उनका इकहरा बदन और लंबा कद विशेष आकर्षक था. शरीर का रंग काला होते हुए भी बड़ी-बड़ी आंखें बरबस उन्हें देखने के लिए मजबूर करती थीं. रायसाहब अपने कमरे के कुर्सी पर बैठे हुए परदे की आड़ से देख रहे थे, बरामदे में परेशान-सी एक महिला इधर-उधर घूम रही है, घंटी बजाकर चपरासी को बुलाया और पूछा, ''मिट्ठूलाल यह बाई यहां क्यों चक्कर लगा रही है?''

बताया गया, ''साहब, यह गांव की फील्डवर्कर शरण बाई है. दफ्तर में अपना टी.ए. मंजूर करवाने आयी है.''

तेवर बदल लिया. गरम हो गये, ''सेंटर से ड्यूटी छोड़कर दफ्तर में आयी है तो क्या छुट्टी लेकर आयी है? बुलाइये इन्हें. साहब के सामने श्रीमती शरण की पेशी करवा दी गयी. चुपचाप आकर खड़ी हो गयी. पूछा गया, ''सेंटर से आप क्या छुट्टी लेकर आयी हैं?''

चुप. बोलबंद.

साहब हावी हो गये, ''तो बिना छुट्टी लेकर दफ्तर में कैसे चली आयी? वैरी बैड-वैरी बैड, आपका गांव कितनी दूर है?''

अटकते-अटकते जवाब दिया, ''येई-अढ़ाई कोस.''

''हूं, आप लोग सेंटर पर रहती ही नहीं हैं. चलिये, हम आपका सेंटर देखेंगे.''

उसी क्षण राय साहब श्रीमती शरण को जीप में बगल में बैठाकर सेंटर चैक करने के लिए रवाना हो गये.

खी.खी.खी. दफ्तर में नयी उम्र की लड़कियां डेनी, कल्पना और जायसवाल मुंह पर रूमाल रखकर जोर-जोर से हंसने लगीं. अन्य कर्मचारियों में विशेषकर महिला कर्मचारियों में इस निर्लज्जता की तीव्र भर्त्सना हुई. इनकी मां-बहनें नहीं हैं क्या? गुंडा. सरकार कितनी बेवकूफ है! दफ्तरों में महिलाओं के बीच ऐसे व्यक्तियों को भेज दिया जाता है. दफ्तरों में अधिकतर संभ्रांत घरों की महिलाएं काम करती हैं. खुल्लम-खुल्ला जिसके मन में जो आया अनापशनाप बोला. अनुसूया बाई जिनके पति की मृत्यु के पश्चात उन्हें इस दफ्तर में नौकरी पर रख लिया गया था, जो आजतक एक शब्द नहीं बोली थीं. उनसे भी बिना बोले नहीं रहा गया. ''हमारे जेठ तो औरतों को दफ्तर में मर्दों के बीच नौकरी करने के सख्त खिलाफ हैं.'' श्रीमती चंदाणी, जिनके पति बेकरी चलाते हैं बोलीं, ''चंदाणी साहब तो रोज कहते हैं, तुम्हें किस बात की कमी है? छोड़ो इस झंझट को. घर में बैठकर राज करो.'' राष्ट्रीय विचार धाराओं से ओतप्रोत कुमारी मालविका का, जिनके लेख महिलाओं की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे, आक्रोश अपनी चरम सीमा पर था, ''देखिये, देखिये, आजादी के चालीस साल बाद देश इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ता जा रहा है. राम, बुद्ध और गांधी के देश की धरती पर आज भी ऐसे दृश्य उपस्थित हो रहे हैं. नारी आज भी कितनी असहाय... बेबस है! नारियों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण में आज भी कोई बदलाव नहीं.''

साढ़े पांच बज गये. दफ्तर की छुट्टी हो गयी. पी.एच.ई. के दफ्तर के सामने से होकर मैदान पार करके गली के नुक्कड़ पर पीपल के पेड़ के नीचे इस दफ्तर के कर्मचारी इकट्ठा होने लगे. आज फिर मीटिंग होगी— एकता— आज एकता की पहले से अधिक जरूरत है. एक के बाद एक कर्मचारी आते जा रहे थे. होनेवाली इस मीटिंग में विशेषता यह थी कि महिलाएं और चपरासी भी उपस्थित थे. दफ्तर में इस घटना के विरोध में एकजुट होकर उठकर मुकाबला किया जाना था.

प्रायः सभी लोग आ गये. मीटिंग की कार्रवाई शुरू हो गयी. सर्वप्रथम महिलाओं की ओर से गुमटी से चार मंगवायी गयी. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नेता गणपत सिंह रघुवंशी की ओर से प्रस्ताव आया, ''तृतीय श्रेणी कर्मचारी संघ और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी संघ की ओर से ज्ञापन तैयार किया जाये. इंटरवैल में दफ्तर के सामने खड़े होकर सब कर्मचारी चपरासी, नारे लगायें— गुंडागर्दी नहीं चलेगी, नहीं चलेगी. एच.के.राय मुर्दाबाद-मुर्दाबाद.''

किसी निर्णय तक पहुंचने के पूर्व बीच में ही एक निरर्थकवाद उत्पन्न हो गया. कर्मचारियों में एकता का नितांत अभाव है. जबकि यह तय हो चुका था छोटे लाल का पूर्णतय बहिष्कार किया जाये, अनावश्यक रूप से बड़े बाबू उसे क्यों मुंह लगाते हैं? परसों बड़े बाबू उसकी खुशामद कर रहे थे— छोटे, थोड़े दिन चौकीदारी कर ले, फिर तुझे दफ्तर में बुला लूंगा. क्या जरूरत है ऐसी लल्लो-चप्पों करने की. डरते हो? छोटेलाल क्या गर्वनर है, जो हम सबको नौकरी से निकलवा देगा!'' सभी बड़े बाबू पर पिल पड़े, ''सर्वथा नियंत्रण का अभाव....छोटेलाल रात को दफ्तर में ताला लगाकर गायब रहता है, कोई देखनेवाला, सुननेवाला नहीं, दफ्तर के बाहर की बिजली सुबह नौ-नौ बजे तक जलती रहती है. उससे स्पष्टीकरण पूछा जाना चाहिए.''

''दो मिनट,'' इस शोरगुल के बीच में उठकर बिदल बाबू ने कुछ करने की इजाजत चाही.

मूल्यांकन

राजेंद्र परदेसी

बस का कहीं पता नहीं था. अन्य लोगों की तरह वह भी बस-स्टेशन पर बस का इंतजार कर रहा था. समय काटे नहीं कट रहा था. चाय पीने से कुछ समय कट जाये, इसी विचार से वह चाय की दुकान पर चला गया. बैठने की जगह खाली नहीं थी, इसीलिए खड़े-खड़े चाय पीने लगा. पास ही एक दस-बारह वर्ष की लड़की हाथ पसार कर सबसे भीख मांग रही थी. कुछ लोग पांच-दस पैसे दे रहे थे तो कुछ लोग सिर्फ नसीहत. लड़की शायद यह सब सुनने की आदी थी. जो पैसा देता उसके सामने तथा जो न देता उसके सामने भी उसी भाव से जाती. मांगते-मांगते वह उसके पास भी आयी. लड़की की दयनीय स्थिति देखकर उसका हृदय कुछ ज्यादा ही पिघल गया और अपनी जेब से एक पांच का नोट निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया. लड़की ने पहले नोट को देखा फिर उसकी ओर फेंकते हुए कहा, ''स्साला नोट दिखाता है.''

लड़की की बात सुनकर वह किंकर्तव्य-विमूढ़ खड़ा-खड़ा सोचता रहा. ''क्या उसकी भावनाओं का यही मूल्यांकन है?'' वह सोचता ही रहा और लड़की उसके पास से कब चली गयी, उसे पता भी न चला.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी एक नहीं सुनी गयी. सब अपनी अपनी हांके जा रहे थे. यह बड़े बाबू की कमजोरियों का ही परिणाम है कि अफसर इतना निडर हो गया है. निकम्मे और बेईमान मजे मार रहे हैं और बेचारे कर्तव्यनिष्ठ बाबू और चपरासी पिसे जा रहे हैं.

"दो मिनट, खड़े होकर बिंदल बाबू ने फिर कुछ बोलने की इजाजत चाही.

"आप बैठ जाइये, सब जानते हैं, आप कहना क्या चाहते हैं. यही न राय साहब बहुत सज्जन हैं. किसी का नुकसान नहीं करना चाहते आपके विचारों से हम सब अच्छी तरह वाकिफ हैं."

"दो मिनट." वे चिल्लाते रहे, लेकिन उनकी एक नहीं सुनी गयी. इस शोर-शराबे में प्रपन्न को बार फिर रमेश ने डांटना पड़ा, "रमेश!" वह एकटक डैनी को घूरता जा रहा था. समझ गया. निगाहें फेर लीं.

आज की मीटिंग यहीं समाप्त हो गयी. किसी ठोस प्रमाण के अभाव में भावी योजना नहीं बन सकी. इस बात पर सभी सहमत थे कि छोटेलाल की गतिविधियों पर अंकुश आवश्यक है. किसी भी सूरत में उसे अफसर के निकट नहीं पहुंचने दिया जाये. अत्यधिक हल्के स्तर का आदमी है.

ऐसा नहीं हुआ. यह कुछ ही दिन बाद शाम की घटना है. दफ्तर के सब लोग रवाना हो चुके थे. छोटेलाल अपना चौकीदारी चार्ज संभाल चुका था. दफ्तर के ताले, बिजली का लटटू, अन्य सामान वह चेक कर रहा था. उसी समय बरामदे का दरवाजा किसी ने थपथपाया. पोस्टमैन था. इस वक्त. बेसमय. छोटेलाल उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा.

हाथ में एक बिना पते का लिफाफा थमाते हुए उसने कहा, "लो छोटे भयुया."

उलट-पुलटकर लिफाफा देखते हुए वह कुछ समझने का प्रयत्न करने लगा.

पोस्ट मैन ने माजरा स्पष्ट किया, "छोटे भयुया, यह लिफाफा आज डाक निकालते वक्त लेटर बाक्स से निकला है. इस पर अता-पता कुछ नहीं लिखा है. केवल भेजनेवाले की जगह तुम्हारे दफ्तर की सील है. बेचारा पोस्टमास्टर बहुत भला है. बोला-दे आओ कल्लू वरना यह लिफाफा महीनों इधर-उधर चक्कर काटेगा."

पोस्टमैन के रवाना होते ही छोटेलाल ने गजब की फुर्ती जतलायी, जैसे उसके हाथ जादुई चिराग लग गया हो. फट साइकल उठायी और दौड़ चला बंगले की ओर.

अगले ही दिन राय साहब ने दफ्तर में घुसते ही सबसे पहले बड़े बाबू की खबर ली, "बुलाओ बड़े बाबू को."

"सर.....", बिंदल बाबू आकर खड़े हो गये.

उन्होंने चश्मा उतारा, रूमाल से पोंछा और टेबल पर रखते हुए धिक्कार भरे शब्दों में पूछा, "बड़े बाबू, इस दफ्तर में जावक कौन करता है?"

"रामकृष्ण तिलकधारी."

'कमाल है. लैटर बाक्स में लिफाफे बिना पते लिखे ही डाल दिये जाते हैं!"

बड़े बाबू चुप.

राय साहब ने छोटेलाल का दिया हुआ वह लिफाफा जेब से निकालकर टेबल पर रख दिया. देखिये न, देखिये, ए.जी. को जाने वाले कितने महत्व के कागजात हैं. बिंदल बाबू को किस्सा समझ में आ गया. तिलकधारी ने आज तक कभी जिम्मेदारी से काम नहीं किया. सेवानिवृति में केवल दो वर्ष शेष हैं. आश्चर्य है आवक-जावक भी ढंग से नहीं कर सकते! दिन भर दफ्तर में ज्योतिष की बात किया करते हैं...शनि की साढे साती शुरू हो गयी है, केतु वक्री हो गया है.

बिंदल बाबू को आश्चर्य तब हुआ, जब उन्होंने पाया कि अफसर ने इतनी बड़ी गलती गंभीरता से नहीं ली है. शांत स्वर में पूछने लगे, "बड़े बाबू, छोटे लाल को तुमने चौकीदारी में पटक रखा है. वह तो बहुत काम का आदमी है."

बड़े बाबू ने आदेशित हां– में हां मिलायी, "जी हां, है तो बहुत होशियार चपरासी."

मंतव्य प्रकट किया, "कल बंगले पर यह लिफाफा लेकर आया था. बड़ा फुर्तीला नजर आया. बगीचे का काम भी जानता है. रसोई भी बना लेता है. ऐसा आदमी तो बंगले पर होना चाहिए. तुमने किसे भेज दिया."

फौरन बात बना दी, "बहुत होशियार आदमी है, सर पीर बावरची.... हर काम में उस्ताद, लेकिन एक बात है जिसकी वजह से वह बंगले पर नहीं रखा जा सकता."

"..........?"

बड़े बाबू ने गर्दन झुकाकर इस तरह जैसे कि बहुत ही गोपनीय बात उजागर कर रहे हों, कहा, "हमने सब पता लगा लिया है, सर. दरअसल वह जात का नाई है, अपने को जाट बतलाता फिरता है."

राय साहब खुश हो गये, कहा, "वैरी गुड, वैरीगुड. आपने बहुत अच्छा किया बड़े बाबू, ऐसे आदमी को बंगले पर नहीं भेजा. हमारे घर में बहुत ही पुराने विचारों की हैं, चौके-चूल्हे तक पटकने नहीं देतीं. इतना परहेज-कोल्ही, चमार, कायस्थ मुसलमानों के तो चाय-पानी के बरतन अलग कर दिये हैं."

बड़े बाबू ने आज की बात तो संभाल ली. किंतु इस हादसे का दुष्परिणाम सामने नजर आ रहा था. शंका सत्य में परिणत हो गयी. पता नहीं यह खबर दफ्तर में किसने पहुंचाई. उस दिन दफ्तर खत्म होने के बाद जब सभी लोग जा चुके थे, दियाबत्ती लगे दफ्तर में छोटेलाल साहब का पैर दबा रहा था. और दूसरे दिन दफ्तर में हुआ विस्फोट...

दफ्तर में कदम रखते ही इधर-उधर फाइलों को फेंककर राय साहब ने आतंक फैलाना शुरू कर दिया. बड़े बाबू बुलाये गये.

उनसे जवाब तलब किया गया, "यह क्या बड़े बाबू, दफ्तर में गोपनीयता नाम की कोई चीज ही नहीं रही?"

उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया, "हमने चपरासियों की वर्दी देने के लिए खादी भंडार को लिखा है. छोटे लाल कल जिद कर रहा था, हम टैरीकाट की वर्दी लेंगे. आखिर यह पता कैसे चल जाता है, हम किसे और क्या आर्डर दे रहे हैं?

हुं! इसमें गोपनीयता भंग होने की क्या बात है. चपरासी अपनी वर्दी नाप देने खादी भंडार जायेगा और वर्दी का कपड़ा हम खरीदेंगे नावल्टी स्टोर से. बड़े बाबू चाहते तो जवाब देकर उन्हें चुप कर सकते थे, किंतु गुस्से के वक्त अफसर से जिरह करना मूर्खता है. वे चुप रहे.

थोड़ी ही देर बाद अल्लाह की गाय बन गये. शांत निवम्र स्थितप्रज्ञ बड़े बाबू को बुलाकर जानना चाहा– "बड़े बाबू श्रीमती चंदाणी के पास क्या काम है?"

"सर... शिकायत और जनरल सैक्शन दे रखा है?"

"टाइप भी जानती है?"

"सर......"

"बुलाइये उन्हें......"

एक अधेड़ उम्र की महिला को इतना बनाव-श्रृंगार कुछ अच्छा नहीं लगता. श्रीमती चंदाणी कुछ जरूरत से ज्यादा ही लिपस्टिक और पाउडर का उपयोग करती थी. अफसर के सामने चुपचाप आकर खड़ी हो गयीं– सर"...

कनखियों से ऊपर से नीचे तक देखते हुए राय साहब ने पूछा, "आप टाइप तो जानती हैं ना?"

"सर..."

"देखिये, मुझे आपसे आज एक जरूरी लेटर टाइप करवाना है."

"सर..."

"और देखिये, इस दफ्तर में कोई बात गोपनीय तो रहती नहीं है..."

"सर..."

आदेशित किया, "आपको आज आफिस टाइम के बाद रूकना होगा".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबराती हुई श्रीमती चंदाणी पलटकर अपनी कुर्सी पर वापस आकर बैठ गयीं. सांस जोर-जोर से चलने लगी. पसीना आ गया था. साड़ी के पल्लू को हिलाकर हवा करने लगीं. जिज्ञासु बाबुओं ने आकर घेर लिया. "क्यों... क्या हुआ? क्यों बुलाया गया था? कुछ ही मिनटों में खबर सारे दफ्तर में फैल गयी. लो गोपनीय काम के लिए आफिस टाइम के बाद बुलाया जाने लगा. देख लिया छोटे लाल की कला का कमाल. कितनी जल्दी अपना जौहर दिखा दिया. सलाह मशवरा– काना-फूसी, खुसर-पुसर शुरू हो गयी. निश्चित रूप से बेशर्मी सीमा लांघ चुकी है.

अपनी कुर्सी पर सिकुड़ी हुई श्रीमती चंदाणी कुछ देर तक तो पसीना पोंछती रहीं. फिर उठी और डरते-डरते साहब के कमरे तक पहुंची. दबी जबान से कहा, "सर..."

"कहिये?"

"वो...."

"जी हां, कहते जाइये."

"वो..जरा..गेट... मैं कुछ देर के लिए घर हो आऊं."

राय साहब ने घर जाने की स्वीकृति दे दी, "शौक से जाइये, पर देखिये, आफिस टाइम खत्म होते-होते जरूर आ जाइएगा."

ऐसा अनुमान था कि निश्चित ही श्रीमती चंदाणी अफसर को झांसा देकर घर चली गयी हैं. सेर को सवा सेर. बाबू लोग बहुत खुश थे. आज फिर मीटिंग होगी. मेमोरेंडम तैयार कर लिया जायेगा. सेक्रेटरी, चीफ सेक्रेटरी, सबको प्रेषित किया जायेगा. मांग की जायेगी कि ऐसे गिरे हुए चरित्र के अफसर को यहां से तत्काल हटाया जाये.

साढ़े पांच बज गये. बड़े बाबू पी.एच.ई. के दफ्तर पहुंचे ही होंगे कि दो साइकल सवार बाबू पीछे से आकर उनके साथ हो लिये. कुछ माताजी के मंदिर तक पहुंच कर उनका इंतजार कर रहे थे. आश्चर्य. देखते क्या है, सामने से श्रीमती चंदाणी हाँफ्ती हुई द्रुत गति से चली आ रही हैं.

रास्कल..... किसी ने किसी को नहीं देखा. वह तीर की तरह सीधी गर्दन किये हुए साड़ी का पल्लू संभालती हुई पास से गुजर गयीं. कितनी वाहियात औरत है. कथनी और करनी में कितना अंतर. कहती क्या है और करती क्या है. सब इधर-उधर बिखर गये. आज की मीटिंग नहीं हुई.

छोटे लाल के लिए आज खुशी का सबसे बड़ा दिन था. यह चंदाणी उसे देखकर सदैव किस तरह मुंह बिचकाया करती थी. दरवाजे के सामने से निकलकर आज सामने से कैसे अकड़कर जा रही है. बीड़ी के कश पर कश खींचते हुए आज तो उसने भी उन्हें झुककर सलाम किया. कुछ अंधेरा-सा हो चुका था दौड़कर उसने अफसर के कमरे की ओर टाइम रूम की बत्ती जलायी.

आज उसकी मानसिक प्रसन्नता चरम सीमा पर थी. वह दफ्तर के दरवाजे पर नहीं अपनी महत्वपूर्ण सफलता की दहलीज पर खड़ा हुआ था. आसमान की ओर मुंह करके बीड़ी का धुंआ छोड़ते हुए वह सोच रहा था– इस दफ्तर के बाबू लोगों ने उसकी हस्ती नहीं पहचानी. अफसर बदलते ही तेवर बदल लिये. छोटे लाल से दुश्मनी.. हा-हा...... .

रात हो चुकी थी. बरामदे से अफसर का कमरा दिखता था. खिड़की से बिजली की तेज रोशनी में अफसर का परेशान चेहरा साफ नजर आ रहा था. वह अच्छी तरह जानते हैं, जब तक दरवाजे पर छोटे लाल खड़ा है, इस दफ्तर में परिंदा भी पर नहीं मार सकता. टाइप कक्ष से टप-टप टाइप की आवाज लगातार आ रही थी.

छोटेलाल सोच रहा था– बड़े बाबू समझ रहे होंगे छोटेलाल को चपरासी से चौकीदार बनाकर बदला ले लिया. बच्चू, लड़ाई महंगी पड़ जायेगी. तिलकधारी को अपनी जमीन का घमंड है. बाप-दादा भीख मांगते थे और मंदिर की पूजा करते थे. जमीन दान में मिली हुई है. हमारी जमीन खरी कमाई की है. राम जय जय राम.... दूर मंदिर में जन-कीर्तन शुरू हुए. मंदिर के घंटे-घड़ियाल बजने लगे. उसकी विचार श्रृंखला टूटी. देखा, साहब सिर पर हाथ रखकर गर्दन झुकाये बैठे हैं. टाइप कक्ष से टप-टप लगातार टाइप की आवाज आ रही थी. उसे विश्वास था अभी घंटी बजेगी और वह बुलवाया जायेगा– छोटे लाल चंदाणी को बुलाओ या साहब खुद ही उठकर चल दें.

मंदिर से भजन-कीर्तन की आवाज बढ़ रही थी. दूर फाटक के पास कुत्ता मुंह ऊंचा किये रो रहा था. छोटेलाल आंतरिक प्रसन्नता में इतना खोया हुआ था कि यह शोरगुल उसकी विचार श्रृंखला को नहीं तोड़ पाया– रमेश अब फिर उसके पास आयेगा– छोटे भयुया से कहकर हमारा ग्रेन लोन मंजूर करवा दो! कल का लड़का हमसे अकड़ेगा. घर में आज आटा नहीं है, आज दाल नहीं है. एक दिन सिंधी ने उसका कालर पकड़ लिया था. दो महीने से उसकी दूकान का हिसाब नहीं किया था. हमने उसे सिंधी की मार से बचाया.

घंटी बजी. वह उछल गया. वह क्षण आ गया जिसकी प्रतीक्षा में वह लंबे समय से अधीर था. दौड़कर पहुंचा.

साहब ने कहा, "पानी पिलाओ."

मंदिर के भजन और कीर्तन की आवाज और तेज हो गयी थी. एकदम समझ में नहीं आया क्या कहा, चंदाणी को बुलाओ? भौंचक्का सा खड़ा रह गया.

साहब ने दुबारा कहा, "छोटेलाल, पानी पिलाओ."

धत् तेरे की. गयी भैंस पानी में, वह मायूस हो गया. पानी पिलाकर लौटते हुए वह फिर वापस आया. डरते-डरते हाथ जोड़कर मन में छुपा पाप उजागर कर गया, "साब... आप बेफिकर रहिये, दरवाजे पर मैं खड़ा हूं– छोटेलाल. अंदर परिंदा भी पर नहीं मार सकता..."

टाइप कक्ष से लगातार टाइप की आवाज आ रही थी. "टप-टप..."

दरवाजे पर खड़ा हुआ छोटेलाल कुछ समय के लिए अपने जीवन के स्मरणीय क्षणों में लीन हो गया– कौन नहीं जानता शहर में कमल पहलवान का कितना दबदबा है. नाम सुनकर सब कांपते हैं. उस दिन बस स्टैंड से पान वाली का हिसाब चुकता कर वह लौट रहा था, पीछे से पहलवान ने कंधे पर हाथ रखकर रोक लिया– "छोटे पहलवान, आजकल बड़ा रंग जमा रहे हो."

खट्..... दरवाजे की चौखट से जूता टकराने की आवाज आयी, अरे. यह तो बाहर जा रहे हैं– परेशान, घबराये हुये... उधर टाईपकक्ष से टप टप की आवाज बराबर आ रही थी. चंदाणी को बुलाया तक नहीं. वे बाहर आये. स्कूटर बाहर निकाला, किक मारी. दौड़कर वह उनके निकट खड़ा हो गया.

जाते-जाते छोटेलाल से राय साहब कहते गये, "टाइपिस्ट को बतला देना, साहब गये. और बस... इतना ही बतला देना साहब गये.. वे जायें."

बड़ा अहमक आदमी है. फिजूल इतनी जिल्लत. उसकी तमाम सुखद कल्पनाएं धल-धूसरित हो गयीं. आसमान पर चढ़ा हुआ छोटेलाल जमीन पर आ गया. वह दफ्तर के दरवाजे पर खड़ा हुआ एकटक स्कूटर पर जाते हुए साहब की ओर स्कूटर से निकलते हुए धुएं को देख रहा था. एक प्रश्न था– यह सब दिखावा क्यों? वह बेवकूफ नहीं था. स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका था. अफसोस.... असमर्थ... सा.. ला पौने दो... □

चलते-चलते

एक व्यक्ति होटल मैनेजर से – "आपके होटल में रहने के अलावा न तो मैंने खाना खाया है न कि इस होटल की लड़की के साथ किसी प्रकार का लुफ्त ही उठाया है. फिर इन दोनों का चार्ज मेरे बिल में क्यों जुड़ा हुआ है?"

मैनेजर ने मुस्कराते हुए कहा, "गलती आपकी है साहब. मैं लड़की को खाना देकर आपके कमरे में भेजा करता था या नहीं?" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखे खेत लहलहाते चिंतन

शिवानंद कामड़े

उधर देश सूखा. इधर चिंतन. देश बहे तो चिंतन बहे. जब देश उठेगा तब चिंतन उठेगा. देश गिरा समझो; चिंतन गिरा. देश हरा तो चिंतन भी हरा. याने जैसा देश वैसा भेष. चाहता तो कोई नहीं था कि सूखा-उखा पड़े. पर अब जब पड़ ही गया है तो पड़ जाने दो. हम काहे को फालतू की चिंता में पड़ें. जिन्हें पड़ना हो वे पड़ें.

इस साल पड़ने में क्रमशः गति आयी है. पहले सूखा पड़ा फिर अकाल पड़ा. अकाल का प्रभाव तत्काल पड़ा. देश काल, अकाल, ट्रंक काल तथा नर कंकाल के ढेर में दब गया. खेत सो गये. किसान लेटे रहे. लेटे-लेटे आकाश तकते रहे. आकाश बादलों से ढंका था. बादल पानी से ढंके थे. लेकिन उस पानी का कोई मतलब नहीं था क्योंकि न तो उसमें नाव

आज का किसान प्रेमचंदीय युग का किसान नहीं है कि मुंह लटकाये, पसीना चुहचुहाये कर्जों का हल कंधे, पर लादे मरियल गाय भैंसों को हांकते आये-जाये. अब वह स्वतंत्र है, पूरी तरह स्वातंत्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 'डी' के अंतर्गत अपेक्षित 'सारिका' नामक समाचारपत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्यौरा, 8 जनवरी, 1988 के अनुसार.

1. प्रकाशन का स्थान	10 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
2. प्रकाशन की आवर्तता	मासिक
3. मुद्रक का नाम	सुश्री ऋचा जैन, स्वत्वाधिकारी, बेनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड के लिए
क्या भारतीय नागरिक हैं?	हाँ
पता	६, सरदार पटेल मार्ग, नई दिल्ली
4. प्रकाशक का नाम	
क्या भारतीय नागरिक हैं?	क्रमांक 3 के अनुसार
पता	
5. संपादक का नाम	श्री अवधनारायण मुद्गल
क्या भारतीय नागरिक हैं?	हाँ
पता	10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

6. **उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचारपत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं.**

भागीदार : (1) अशोका होल्डिंग्स लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (2) भारत निधि लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (3) कुमारी नंदिता जैन, शांति निकेतन, 12वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700017 (4) पी.एन.बी. फाइनेंस एंड इंडस्ट्रीज लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (5) मैसर्स साहू जैन लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथी मंजिल, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (6) मैसर्स साहू प्रोपर्टीज लिमिटेड, कमरा नं. 21 स्टीफन हाउस, 4, डलहौजी स्क्वेअर ईस्ट, कलकत्ता-700 001 (7) श्री समीर जैन, शांति निकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट कलकत्ता-700 017 (8) श्रीमती मीरा जैन, शांति निकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (9) कैमक कमर्शियल कंपनी लिमिटेड, 33/1 नेताजी सुभाष रोड, 345, मार्शल हाउस, कलकत्ता-700 001 (10) अर्थ उद्योग लिमिटेड, 306, कुशल बाजार 32-33, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110 019 (11) पंजाब प्रोपर्टीज लिमिटेड, 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 (12) टीएम इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड, 13वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (13) एसजे एस्टेट्स लिमिटेड, शांतिनिकेतन, 14वीं मंजिल, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017 (14) अशोका विनियोग लिमिटेड, 8, कैमक स्ट्रीट, कलकत्ता-700 017.

मैं ऋचा जैन, एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपरोक्त विवरण सही है.

ऋचा जैन
प्रकाशक

1 मार्च, 1988

चलायी जा सकती थी और न ही खेती बाड़ी का काम. जब तक पानी नहीं गिरेगा उसका महत्व नहीं उठेगा.

नदियां सूख गयीं. उस पर राहत के टेंपररी पुल बन गये. उधर खेत सूख गये जहां विशेषज्ञों की समितियां लहलहाने लगीं. राहत के कमल इस सूखे दलदल में गमगमा उठे. ऋण के हल इन किसानों के कंधों पर जबरन लाद किये गये. किसान कुनमुना उठा. अब वह किसानी नहीं करना चाहता. किसानी से उसका विश्वास उठ गया. वह अपने खेत, खेत से जुड़े खेत, खेत के उस पार के खेत याने वह समस्त खेत बेचना चाहता है. खेतों के इन मेड़ों के परिधि से वह बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा है. छटपटाते हुए ऐसे किसी अज्ञात दिन ने जान ले डाली इस बेचारे किसान की. पर असलियत का पता किसी को नहीं चल पाता. पुलिस को भी नहीं. सी.बी.आई. तक यही रिपोर्ट देती कि किसान, भूख की पीड़ा से मर गया. इसे सूखे ने सुखा डाला.

भूख से मरनेवालों की संख्या में दिन दूनी-रात चौगुनी प्रगति देख गांव, शहरों तथा विधान सभा में हल्ला हो उठता. लोग उस पर प्रश्न उठाते. जांच समिति गठित होती. आदेश होता. और भूखमरों का एक दल विशेषज्ञ दल की हैसियत से भूख का दौरा करने पहुंच जाता. आंकड़े बटोरे जाते. कुछ फर्जी, कुछ बासी. इसे लेकर ये राजधानी लौट आते जहां कंप्यूटर से इन आंकड़ों की बारीकी से जांच होती. विशेषज्ञों के सुझावों, की सूचि बनती. उसके बाद इन आंकड़ों को छोटी-छोटी शीशीयों में बंद करके डायलिसिस में रख दिया जाता. इधर मृत किसानों की लाशें शहरों के चीरघर में सड़ती रहतीं. उधर इनके आंकड़े एयरकंडिशंड प्रयोगशालाओं में. कुल मिलाकर होता ये कि भूख से मृत इन किसानों की लाशें, गटर में बहा दी जातीं और उनके आंकड़ों के ऊपर लाखों रुपये खर्च करके सरकार राहत का मकबरा बनवा देती. विदेशी आते और आंकड़ों से निर्मित इस भव्य मकबरे पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर ताजमहल देखने निकल जाते.

इतना सब जानकर भी किसान, भारतीय किसान, दखी या चिंतित नहीं होता क्योंकि यह बात सिर्फ वही जानता कि सूखा उसके हित में है या पर हित में. सूखा पड़ने के बाद, किसान किसान न रहे, वे इंसान हो गये. उनका जीवन ही बदल गया. सूखा पड़ना देश के लिए मंहगा पर किसानों के लिए सस्ता पड़ा. क्योंकि वे सस्ते हो गये. अनाज मंहगा हो गया. खाने, व उगानेवाले सस्ते हो गये. उनकी सारी दिनचर्या ही बदल गयी. पहले वह एकदम तड़के उठता था फिर दिशा मैदान से निबृत्त होकर राम राम करता वह सीधे खेतों की तरफ भागरता. और धरती पर सूर्य की किरणें पड़ते आधा खेत जोतकर रख देता पर अब वह सुबह 7.30 के पहले नहीं उठ पाता. 11.30 बजे सोनेवाला प्राणी, प्रकृति के नियमानुसार 8 घंटे की नींद तो लेगा ही. हां, ये बात अलग है कि किन्हीं कारणों से रोज ऐसा नहीं कर पाता. वह भी कुछ मजबूरीवश. मंगलवार को तो और भी गजब हो जाता. बिस्तर छोड़ते-छोड़ते आठ बज ही जाते. सोचो, कितना अच्छा होता होगा वह दिन जब किसान लतीफे छाप कार्यक्रम देखकर प्रफुल्लित मन से उठता और दिन भर गमकता रहता सदैव हंसते मुस्कराते इस किसान के चेहरे पर झुर्रियां ढूंढ़े नहीं मिलतीं उसने अपने चेहरे की सारी झुर्रियां जमीन में गाड़ दीं. इसी से अकाल पड़ गया उसके चेहरे की ये झुर्रियां, जमीन में दरार बनकर उभर आयीं.

आज का किसान प्रेमचंदीय युग का किसान नहीं है कि मुंह लटकाये पसीना चुहचुहाये कर्जों का हल कंधे पर लादे मरियल गाय-भैंसों को हांकते आये-जाये. अब वह स्वतंत्र है, पूरी तरह स्वतंत्र. न उसे जमींदार की जी हजरी करने की चिंता है न कर्ज पटाने का भय. उसके गुलामी के दिल गये. मन होगा तो आयेगा खेत, नहीं तो गांव में ही घूमता मिलेगा या फिर सायकल उठायी और चल पड़े 'सिटी' की ओर.

पहले ये किसान, बीज खरीदने या दूध बेचने के बहाने महीने में या हफ्ते में एकाध बार कभी-कभी शहर आता था पर अब तो हफ्ते में दो-तीन चक्कर लग जाते हैं. इन दिनों अक्सर उसे टी.बी. की दूकानों के आसपास मंडराते हुए देखा जा रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

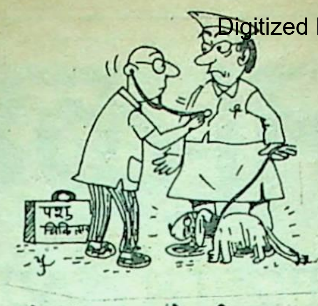

टी.वी. की वजह से गांव का माहौल ही बदल गया. अपूर्व शांति छायी वहां. पहले खेतों को लेकर या खेतों में बहने पानी की दिशा को लेकर तू-तू, मैं-मैं हो जाती थी, लाठी-बर्छे निकल आते थे सिर फुटौवल की नौबत आ जाती.

"मैं कहता हूं कि पानी इधर आया तो आया कैसे?"

"अबे तो मुझसे क्या पूछता है. जा पूछ अपने बैल से. उसने मेरे मेड़ को तोड़ा क्यों?" लेकिन टी.वी. की वजह से उसके व्यवहार, हावभाव में एकदम चेंज आ गया है, अद्भुत परिवर्तन.

"अरे रामदीन...... घर में हो कि नहीं."

"कौन? माधो भइया. जैराम जी. आओ आओ, भीतर चले आओ."

"नहीं, बस यही ठीक है."

"अरे आओ आओ..... अपना ही घर है."

थोड़ी देर तक बाहर ही खड़ा रहकर माधो कुछ सोचता रहा. लेकिन जब उसे मच्छर कुछ ज्यादा ही तंग करने लगे तो दहलीज में चढ़ ही गया.

"बैठो न." ऐसी भी क्या जल्दी है?" टी.वी. देखते-देखते उसने ऐसे ही पूछ लिया.

अब माधो भी टी.वी. देखने लगा. छोटे से परदे पर बड़ी-बड़ी चीजें. किसी खाद का विज्ञापन चल रहा था.

"क्यों भाई ये किसान छाप यूरिया खाद आखिर होता कैसा है? कभी उपयोग किया क्या तुमने......"

"हां चचा, बहुत ही बढ़िया चीज है. चार खेतों में आज सुबह ही छिड़क के आया था."

खेत का नाम आते ही माधो को अपने खेत की बात याद आ गयी. खाद भूलकर वह खेत में आ गया.

"बात यह है रामू. कि आपके खेत का वो खादवाला पानी अपने इधर बहने लगा तो हमने सोचा कि तुम्हारा नुकसान (नुसकान) हो रहा है, फालतू पानी बह रहा है खाद का. नुकसान अगल, सो हम चले आये बताने.

"तो क्या हो गया भइया. अरे खेत मेरा हो या आपका. पानी खेत में ही जा रहा है न जैसे मेरे खेत वैसे आपके. गांव के खेत हम सबके हैं. पानी गांव के बाहर तो जा नहीं रहा. ये धरती तो अपनी मां है उसकी सेवा छोटा बेटा करे या बड़ा कौन फर्क पड़ता है. मैं तो कहता हूं कि एक बोरी खाद आप भी ले जाओ. बहुत बढ़िया खाद है. चार बोरे ले आये थे लदवाकर मंगलू के ट्रेक्टर में." मुफ्त मिलता देख माधो का सारा गुस्सा चरमरा गया. आवाज में मीठे तेल का खनक आ गयी बोला, "तेरे को बैल बैल तो नहीं चाहिए!"

"न... आप पहले अपना जोत लो, फिर देखा जायेगा. वैसे भी इस साल पानी-पानी के आसार कम ही दिख रहे हैं."

"अरे कैसी बातें कर रहे हो. देखो, जगह-जगह पानी बरस रहा है. सोलह आने नहीं तो बारह आने तो होना ही है समझो. टी.वी. में नहीं देखा, सब जगह पानी ही पानी."

"का वर्षा जब कृषि सुखाने......" एक लंबी जम्हाई डिसपेच करते हुए रामदीन ने कहा. अरे अपने शरीर का वजन दायें से बायें पैर पर डाल दिया.

"यार, एक बात हमको भी बताओ. ये टी.वी. तुमको कितने में पड़ा."

"अरे हम तो इस शहर से उठा लाये हैं. टी.वी. का नाम सुनते ही उसकी सारी थकान दूर हो गयी-पांच कम पचास कोरी का हुआ समझो. अंटिया (एंटिना) मिलाके."

"अच्छा! इतना पैसा. कहां से ले आये भाई."

"सब धरती माता की कृपा है. खैनी बनाते हुए वह बताने लगा– बरगद के पास वह खेत था न, तिकोनावाला. बेच दिया उसे सीताराम के पास. बार-बार झगड़ा करता था. अब हमें ये झगड़ा-वगड़ा पसंद है नहीं. अच्छा नहीं लगता ये सब. इसलिए सोचा कि बेच ही दें. झंझट ही टूटे. हां, इसी में भलाई है हम सब की, गांव की, देश की..... क्यों ठीक नहीं किया?" खैनी देकर हाथ, धोती के छोर से पौंछते हुए कहा.

"भइया हमें भी दिलवा दो न एकाध हल्का-फुल्का सा टी.वी."

"हां-हां, क्यों नहीं, शहर चलो किसी दिन. किश्तों में दिलवाय देंगे अपनी तो पहचान हो गयी है वहां. दूध देने जाते थे होटल. उसी के बगल में दूकान है टी.वी. की... कौन बड़ी बात है."

"बहुत बहुत कृपा आपकी. अच्छा तो कल चलेंगे."

"जैसी मरजी हम तो कहते हैं कि अभी चले चलो. वैसे हम कल नहीं जा पायेंगे काहे कि कल पड़ गया इतवार सुबह से भिड़े रहते हैं शाम को चिक्चर विक्चर का टाइम... सो हो नहीं पायेगा."

"पर वहां तो सोमवार को पूरा मार्किट बंद रहता है."

"मंगलवार."

"अरे कहां भइया, लौटते-लौटते ही रात हो जायेगी. 'कालाजल' मिस हो जायेगा दद्दू. पैसा देकर लाये हैं तो क्यों छोड़ें. 'धमाल' तक नहीं देख सकेंगे मजा दे रहा है आजकल."

"बुधवार को.."

"ओह माधो जी, आप समझ नहीं रहे, 'चित्रहार,' 'रथचक्र,' सब गड़बड़ हो जायेगी. बृहस्पति को 'अमृता' शुक्रवार 'कबीर,' शनिवार 'चुनौती,' ये सब छोड़कर नहीं सकते अपने. पचासों काम छोड़कर यह सब देखना पड़ता है. अब देखो न मुन्ने की अम्मा चार दिन के लिए मायके गयी थी, आज उसको 22 दिन हो गये. पर न उसे आने की जल्दबाजी न मुझे कोई परेशानी टी.वी. की वजह से टाइम का कुछ पता नहीं चलता."

"खैर कोई बात नहीं..... फिर कभी देखेंगें, अच्छा चलूं मैं...."

"देखो भइया, बुरा न मत मानता. मजबूरी है. जिस दिन समय मिला खबर भिजवाऊंगा. चले चलेंगे दोनों. एक दिन की तो बात है. मेरे लायक और कोई सेवा हो तो बताओ....."

"बस रामदीन, एक काम कर दो... तुम्हारे उस खेत का सड़ा पानी मेरे खेत में न आये. यदि एक बूंद भी अब इधर पड़ा तो समझो.... अब हां.... समझ लेना कि हमसे बुरा....." कहता हुआ माधो तीर की तरह गली में जा घुसा."

मित्रो, आज देश की स्थिति यह है कि खेत और किसान दोनों ही आलसी हो गये हैं, कामचोरी करने लगे हैं. लापरवाही दोनों की है..... पर उगाना नहीं चाहता, दूसरा उगना नहीं चाह रहा. जिस पर सरकार का आश्वासन ये कि– 'डोंट माइंड, अपने पास खूब भंडार है. चल जायेगा.' ऐसे लाड़ प्यार से किसान और बरबाद होते जा रहे हैं. एक समय ऐसा आ आयेगा कि देश को किसान ढूंढे नहीं मिलेंगे. लोग खेती को पिछड़ेपन का प्रतीक समझेंगे. बड़े-बड़े खेत, सिकुड़कर डाक टिकटों में समा जायेंगे. अंततः सरकार कृषि विश्वविद्यालयों के स्नातक, स्नात्कोत्तरों व पी.एच.डी. यों को अच्छे वेतनमान का लालच देकर उनसे हल चलवायेगी. बैल हड़ताल में रहेंगे वे नये वेतनमान व अन्य सुविधाओं की मांग करेंगे. खेतों को कंप्यूटर से जोता जायेगा. संपन्न किसान रिमोट कंट्रोलर से खेती करेंगे. ये नये किसान देखते ही देखते इक्कीसवीं सदी को जोतकर रख देंगे. तब फिर मत कहना कि मैं तुम्हें गाली दे रहा हूं कि आखिर हो न कृषि प्रधान देश के!.

☐161 जरहा भाटा, बिलासपुर, (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्ता-कथा

लक्ष्मीकांत वैष्णव

उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था. वह गली के कोने में रहने वाले उस सेठ की तरह नहीं था जो लखपती सेठ होते हुए भी अपने सेठपन से दुखी था. वह भेरूलाल नेता की तरह भी नहीं था जिसे विधायक की सीट मिल जाने के बावजूद संतोष नहीं था. वह प्यारीबाई वेश्या की तरह भी नहीं था जिसके यहां सुबह से शाम तक ग्राहकों की लाइन लगी रहने के बावजूद असंतोष था कि रामरती के यहां भी चार-छह ग्राहक क्यों चले जाते हैं.

उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था. अपने लाल रंग से संतोष था. अपने मुंह के आसपास काले रंग के चकत्तों से संतोष था. छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के उस ढेर से संतोष था जहां वह ठंड के दिनों में अपने पंजों से कुरेद-कुरेदकर जगह बनाकर दुबक जाया करता था. गर्मी के दिनों में ठंडाई के लिए म्युनिसिपैलिटी के नल के पास एक डबरा उसने सुरक्षित कर रखा था जिसमें कमर तक डूबकर वह अकसर बैठ जाया करता था और आराम से जीभ लटकाकर मुंह से सांस लेता रहता था. हालांकि भूल से एक बार वह कलक्टर के बंगले में घुस गया था और वहां की एयरकंडीशनिंग की ठंडक उसे अपने डबरे की तुलना में कई-कई गुना अच्छी लगी थी, मगर वहां तैनात पहरेदारों, लाठीधारी नौकरों, और अल्सेशियन नस्ल के कुत्तों के खतरे को भांपकर वह जल्दी ही बाहर निकल आया था तथा उसने सोचा था कि कैद में बंद सुविधाओं के बदले स्वतंत्र असुविधा कहीं ज्यादा बेहतर है. ठंडक के लिए उसे अपना डबरा ही सर्वोत्तम लगा था. शांतिपूर्ण, निरापद. यह नहीं कि वह कोई संत के ढंग से सोच रहा था, बल्कि था यह कि उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था.

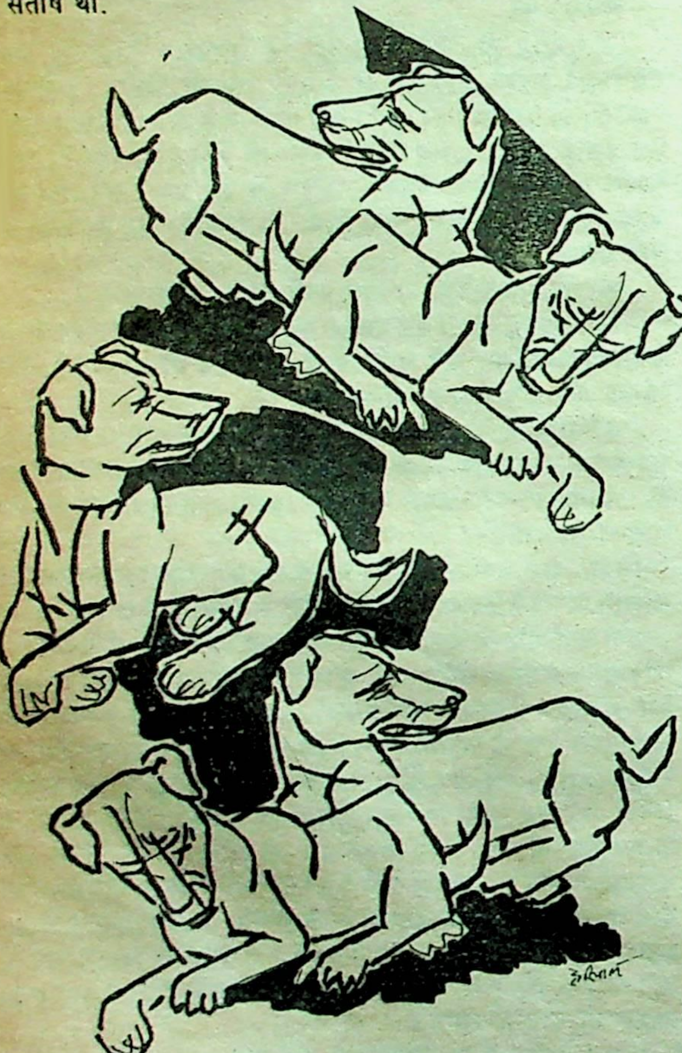

संतोष की स्थिति एकदम नहीं आती. धीरे-धीरे आती है. जब वह पैदा हुआ था तो उसकी आंखें बंद थीं. फिर धीरे-धीरे खुलती गयी थीं. और पूरी खुल जाने के बाद भी उसकी मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, "बेटा, अभी तेरी आंखें पूरी नहीं खुली हैं. कुत्तों की आंखें मर जाने के बाद ही पूरी खुलती हैं. ठीक वैसा ही, जैसा आदमियों के साथ होता है. आदमी की आंखें भी पूरी तभी खुलती हैं, जब उसकी आंखें पूरी तरह बंद हो जाती हैं. बल्कि बाज आदमी तो मर जाने के बाद भी कुछ रहस्यों को देखने से वंचित रह ही जाते हैं." मां चंपी कुतिया ठीक कह रही है या गलत, तब उसने ध्यान नहीं दिया था. मगर जीवन में ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ा, बड़ा होता गया, उसे चंपी कुतिया के कहने पर विश्वास होता गया था. हालांकि वह दावा अभी भी नहीं करता था कि उसकी आंखें पूरी तरह खुल चुकी हैं, मगर यह वह जानता था कि उसकी आंखें काफी खुल चुकी हैं. और उसे अपनी आंखों के इतनी खुल जाने से ही संतोष था. संतोष उसे अपने समूचे अस्तित्व से था, अपने कुत्तेपन से. उसके सामने अस्तित्व के संकट का कोई प्रश्न नहीं था जिसे कहवा घर में दोसा खाते हुए कुछ दढ़ियल छोकरे अकसर प्रकट करते रहते थे. वह कुत्ता था और काफी हाउस नहीं जाता था. दोसा उसे पसंद नहीं था और दाढ़ी वह चाहता तो भी नहीं बढ़ा सकता था. लिहाजा उसे अपने कुत्तेपन से संतोष था.

अपने छह भाइयों के साथ इस दुनिया में आया था वह. बाकी पांच भाई आज कहां हैं, वह नहीं जानता. वे लोग कुछ आवारा किस्म के थे और पैदा होने के कुछ दिन बाद ही इधर-उधर भागने-दौड़ने लगे थे. धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती चली गयी थी. पांच के बाद चार, चार के बाद तीन, तीन के बाद दो, और दो के बाद अब वह अकेला बचा था. मां चंपी कुतिया इसी से अधिक स्नेह करती थी क्योंकि यह हमेशा चंपी कुतिया के इर्द-गिर्द ही मंडराता रहता था. कोई भी मां हो, अपने इर्द-गिर्द मंडरानेवाले बच्चे को ही सर्वाधिक प्रेम करती है. मगर इसे अब लगता है कि मां चंपी कुतिया इसे प्रेम करने पर मजबूर थी क्योंकि इसके अलावा उसका कोई दूसरा बच्चा उसके पास टिकता नहीं था. चंपी कुतिया के छह थनों में से किसी भी थन में मुंह लगाकर वह छककर दूध पी लेता था और उसके पीछे-पीछे फिरता रहता था.

मां के साथ रहने पर जीवन के कुछ कटु अनुभव उसे कम उम्र में ही हो गये थे. मसलन, कहीं भी जाओ, दुत्कारा जाना ही है. और इस मामले में आपको संवेदनशील नहीं होना है. मां अपनी संवेदना अकसर छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर में दबा जाती थी तथा हमेशा मानापमान से मुक्त रहती थी. इसने दो-एक बार कहा कि वह इस प्रकार के अपमान का अभ्यस्त नहीं है, तो मां ने कहा था, "बेटा तुम्हें अभ्यास डालना चाहिए." उसे एक अनुभव और हुआ था, और वह यह कि जब भी कोई दूसरा कुत्ता सामने पड़ जाये और आप उसकी गली में हैं, या उसके अधिकार क्षेत्र में गये हैं, तो आपको दुम दबा लेना चाहिए. उसने दो-एक बार अपनी मां को इस प्रकार की स्थितियों में पड़ने के बाद लहूलुहान होकर अपने दड़बे पर लौटते देखा था और चुपचाप अपने जख्मों को महीनों चाट-चाटकर ठीक करते देखा था. उसने कई बार मां से कहा था कि वह प्रत्याक्रमण क्यों नहीं करती, तो मां ने कहा था कि, "बेटा, जब तक आक्रमणकारी अधिकार में है, उस पर आक्रमण करना खतरनाक होता है. अभी वह केवल लहूलुहान करके छोड़ देता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दांत-नाखून दिखाने पर हो सकता है, नेस्तनाबूद कर दे. पूरी तरह मरने के बजाय, अधमरा रहकर अपने समय की प्रतीक्षा करना ज्यादा बेहतर होता है. और उसे लगने लगा था कि मां अपने कुतियापन से संतुष्ट-सी लगती है. सोहबत का असर होता है. उसे भी हुआ था. आज उसे लग रहा है कि वह अपने कुत्तेपन से संतुष्ट है, इस संतोष में उसकी मां चंपी कुतिया का एक बहुत बड़ा योगदान रहा है.

छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर पर पड़ा-पड़ा मोती कुत्ता सोचता रहता है, सोचता रहता है. सोचने की उसकी यह आदत जन्म की ही नहीं है. जब तक हाथ पैर में जान थी, ताकत थी, वह सोचता कम था और भागता-दौड़ता अधिक था. अब वह खुद महसूस करने लगा था कि उसकी हालत उस रिटायर्ड पोस्ट मास्टर बुड्ढे जैसी हो गयी है जो अपने घर के सामने खटिया डालकर दिन भर बैठा-बैठा खांसता रहता है तथा कभी अखबार पढ़ता है तो कभी अकेला ताश खेलताहै. जब तनिक छोटा था मोती कुत्ता तो उस पोस्ट मास्टर की नकल में वह भी किसी फटे अखबार का रद्दी टुकड़ा मुंह से पकड़कर घसीटता हुआ ले आता था और अपने राख के दड़बे पर बैठकर, कागज पंजों के बीच दबाकर अपनी थूथन से उसे जगह-जगह सूंघता रहता था. मगर उसकी यह आदत दूसरे कुत्तों को शायद पसंद नहीं आयी थी और वे अखबार के टुकड़े को अक्सर छीन-झपटकर फाड़ दिया करते थे. पहले-पहले मोती कुत्ते को बुरा लगा था. मगर धीरे-धीरे वह अभ्यस्त हो गया था इस बात का. वह समझ गया था कि दूसरे कुत्ते उसका बुद्धिजीवी होना बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं. लगभग यही स्थितियां वह काफी हाउस के कांच के दरवाजों के अंदर बैठे दढ़ियल छोकरों के बीच भी देखा करता था. उसने देखा था कि एक टेबुल के आसपास बैठे चार-पांच दढ़ियलों में से कोई एक दढ़ियल अपने झोले से कुछ कागज निकालता था और पढ़ता था. उसके पढ़ चुकने के बाद, या पढ़ने के दौरान ही, बाकी दढ़ियल उस पर टूट पड़ते थे. छीन-झपट के बाद जब वह अकेला दढ़ियल बाहर निकलता था तो उसकी दाढ़ी के काफी बाल नुचे हुए होते थे तथा उसके कपड़े और कंधे का झोला जगह-जगह से फटे हुए होते थे. अपनी तरह औरों को भी दुख झेलते देखकर, आदमी अपने दुख से संतोष कर लेता है. मोती कुत्ते ने भी अपने कुत्तेपन से संतोष कर लिया था.

चंपी कुतिया आज इस दुनिया में नहीं है. उसकी मां चंपी कुतिया, जिसे देख-देखकर वह चलना सीखा, भागना सीखा, खाना सीखा, सोना सीखा, भौंकना सीखा, दुम दबाना सीखा. केवल एक काम वह अपनी मां से नहीं सीख पाया था और वह था बच्चे जनना. उसने अनेक बार अपनी मां से पूछा था कि क्या वह बच्चे नहीं जन सकता? तो मां चंपी कुतिया ने बदले में कहा था कि, ''बेटा, दुनिया में कुछ काम हैं जो केवल स्त्री कर सकती है, मर्द नहीं कर सकता. साथ ही कुछ काम ऐसे हैं जो केवल मर्द कर सकता है, स्त्री नहीं कर सकती. जो काम अपन नहीं कर सकते, उनके बारे में अपने को अपनी सीमाएं पहचाननी चाहिए और वस्तुस्थिति से संतोष करना चाहिए.'' मोती कुत्ते ने अपनी उस स्थिति से भी संतोष कर लिया था. बाद को चलकर मोती कुत्ता यह समझ चुका था कि अगर वह खुद बच्चे नहीं जन सकता, तो किसी कुतिया को तो इस काम के लिए उत्प्रेरित कर ही सकता है.

जिन कुतियाओं के संपर्क में मोती कुत्ता आया, उसकी भी एक अलग दास्तान है जिस पर मोती कुत्ता अभी नहीं सोचना चाहता था. कुतियाओं के बारे में सोचकर वह अक्सर उद्विग्न हो जाता था. उसने लाख कोशिश की थी कि अपने जीवन में आयी कुतियाओं के बारे में कोई स्पष्ट धारणा वह बना ले, मगर हर कुतिया उसके लिए एक पहेली थी जिसका हल मोती कुत्ता बार-बार कोशिश करके भी नहीं निकाल पाया था. वह हफ्तों, महीनों छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के ढेर पर पड़ा-पड़ा, उनमें से हर एक के बारे में सोचता रहा था. सोचता रहा

मोती कुत्ता उन दिनों देखने में काफी आकर्षक था तथा तीन-चार कुतियाओं ने उसी समय अपना सहयोग उसे देने का आफर किया था, मगर मोती कुत्ते ने कुतियाओं के प्रवेश पर आपत्ति की थी.

था. मगर हर सोच का परिणाम वह राख का ढेर होता था जिस पर वह पड़ा हुआ था. जिन दिनों इन मामलों को लेकर वह उदास रहता था, उन दिनों छंगू हलवाई द्वारा उसके सामने फेंके गये जलेबियों के टुकड़े और ग्राहकों द्वारा फेंके गये दोनों में चिपके भजियों-आलूबड़ों के कण भी उसका ध्यान आकर्षित नहीं कर पाते थे.

हकीकत से जुड़ा आदमी, रोटी-पानी की समस्याओं में उलझ जाता है. रोटी-पानी, यों तो मोती कुत्ते के लिए कभी समस्या नहीं रही. इधर-उधर सड़कों पर, हलवाइयों पंसारियों की दूकानों के सामने उसे काफी कुछ मिल जाता था, मगर कभी-कभी उसका मन होता था कि वह घरों के अंदर पल रहे कुत्तों की तरह आराम से बैठकर बर्तनों में खाये. अनेक बार वह, घरों में बंधे कुत्तों से अपनी तुलना किया करता था और सोचता था कि आखिर उन कुत्तों में ऐसी कौन सी बात है जो उसमें नहीं है. क्या केवल यही कि सड़क पर पैदा हुए की नियति सड़क पर ही जीवन भर फिरने और बाद में सड़क पर मर जाने में है. मगर उसने यह भी देखा था कि कुछ कुत्ते किस प्रकार कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करके घरों में, बंगलों में घुस गये थे और आराम से रोटियां तोड़ रहे थे. भाग्य पर मोती कुत्ते को आरंभ में विश्वास नहीं था, मगर बाद को हो चला था. अब ऐसा नहीं है कि भाग्य ने कभी मोती कुत्ते का साथ ही न दिया हो. एक-दो बार गली के लौंडों ने उसके गले में रस्सी जरूर बांधी थी तथा दो-चार दिन अपने घरों में बांध कर रखा था. मगर उसे खुद लगा था कि उन्मुक्त गली में फिरने में जो सुख है, वह डोरी से बंधने में नहीं है.

अनुभवों ने मोती कुत्ते को काफी कुछ सिखाया था. मगर उससे अधिक उसे सिखाया था उसकी मां चंपी कुतिया ने. वह देखा करता था कि जिस दिन चंपी कुतिया को कुछ खाने को नहीं मिलता था, वह किसी भी दूकान के सामने खड़ी होकर पूंछ हिलाने लगती थी. उसकी पूंछ बहुत पतली थी तथा उसमें सिरे की ओर कोई चार-छह बाल ही रहे होंगे. मोती कुत्ते ने अक्सर अपनी मां से कहा था कि वह अपनी पूंछ न हिलाया करे, वह बहुत बुरी लगती है. बदले में चंपी कुतिया ने कहा था कि, ''बेटा, जो अंग हमें ईश्वर ने दिये हैं, उनके सबके अपने-अपने प्रयोजन हैं. दुम हमें विपत्ति की स्थिति में दबाने के लिए, तथा अपने से बड़ों के सामने हिलाने के लिए मिली है. चंपी कुतिया ने यह भी कहा था कि अगर उसके पास यह दुम न होती तो वह जीवन में कई-कई दिनों तक भूखी रही आती.'' उसने मोती कुत्ते से कहा था कि, ''तू भी इसे हिलाया कर.''

वैसे जब मोती कुत्ता अपनी भरपूर जवानी के दिनों में था और उसकी मां चंपी कुतिया धीरे-धीरे अपनी कब्र की ओर बढ़ रही थी, उसने अक्सर अपनी मां से पूछा था कि, ''जो चीज हम पूंछ हिलाकर हासिल करते हैं, क्या अपने दांतों का इस्तेमाल करके हासिल नहीं कर सकते?'' जवाब में चंपी कुतिया ने कहा था कि, ''पूंछ का इस्तेमाल निरापद है क्योंकि इसमें उसके टूट जाने का डर नहीं है जबकि दांतों का प्रयोग करने पर उनके टूट जाने का डर है. जिसके पास कुछ होता है, वह हमेशा ताकतवर होता है और बेमतलब काटने-भौंकने से वह आपके दांत तोड़ सकता है.'' मोती कुत्ते ने कहा था कि, ''क्यों न हम कुत्तों का एक जत्था तैयार करें जो लोगों पर इकट्ठा टूटे और जो कुछ उनके पास हो, उसे छीन-झपटकर खा जाये.'' उत्तर में चंपी कुतिया ने कहा था कि, ''इस प्रकार की एकता की बात सोची तो जा सकती है, परंतु उसके क्रियान्वयन में अनेक समस्याएं आती हैं. जो कुत्ते इकट्ठे होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे पर टूटते हैं वे फिर आपस में भी एक-दूसरे पर टूटते हैं. यह नियति है. उन तमाम कुत्तों को लगातार एक सूत्र में बांध रखने के लिए तुम लोगों को किसी दमदार कुत्ते की सेवाएं प्राप्त करनी होंगी और जैसे ही उस दमदार कुत्ते को एहसास होगा कि सबकुछ उसी की वजह से चल रहा है, वह तुम लोगों का शोषण शुरू कर देगा.'' मां चंपी कुतिया ने कहा कि उसके एक सहयोगी कुत्ते ने जीवन में एक बार ऐसा प्रयत्न किया था और काफी लंबे अरसे तक वह व्यवस्था को चलाता भी रहा था. मगर ज्यों ही वह कमजोर पड़ा था, उसके सहयोगी उसे तोड़कर खा गये थे. नेतागीरी का काम तनिक कठिन है बेटा और इससे आम तौरपर बचना चाहिए.

मगर जीवमात्र के अंदर एक चीज होती है, आकांक्षा—महत्वाकांक्षा. मोती कुत्ते ने अक्सर अपनी मां चंपी कुतिया से कहा था कि उसके अंदर कुछ है जो कुलबुलाता है. कुछ कर डालने के लिए वह छटपटा रहा है. यह बात उन दिनों की है जब मोती कुत्ते की मसें भीगनी शुरू ही हुई थीं, वरना अब तो उसे खुद भी अपने उन दिनों की मूर्खताओं की बातें याद कर हंसी आती है. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि अंदर की कुलबुलाती शक्ति को नियंत्रित रखने के लिए उसे ऐसा कुछ करना शुरू कर देना चाहिए जिससे उस अतिरिक्त शक्ति का बाहर निष्कासन हो जाया करे और वह एक सामान्य कुत्ता रह सके. उसने उसे नेक सलाह दी थी कि अब वह काफी जवान हो चुका है तथा उसे शहर की कुतियों में अपनी लोकप्रियता बढ़ाना चाहिए.

ऐसा वह पहले से ही करता आ रहा था. हालांकि मां चंपी कुतिया को उसके इन प्रेम संबंधों की जानकारी नहीं थी. या हो सकता है जानकारी रही हो और मां जानबूझकर अनजान बनी रही हो. मगर दो-चार कुतियों के संपर्क में आने के बाद मोती कुत्ते को कुछ विरक्ति सी हो चली थी. उसे समझ में आ गया था कि कुतियों के संपर्क में आना, बस कुतियों के संपर्क में ही आना है, और हर कुतिया बाहरी बनावट और देखने-दिखाने में भले ही भिन्न हो, अंदर से वह मात्र कुतिया होती है. लिहाजा वही-वही-पन की स्थिति से मोती कुत्ता ऊब चला था. इसके अलावा एक और चीज मोती कुत्ते को मानसिक रूप से व्यथित करती थी. वह जिस चीज पर अधिकार चाहता था, उस पर अपना एकछत्र अधिकार चाहता था. मगर कुतियाएं थीं कि उसके सान्निध्य के साथ-साथ, इधर-उधर भी हसरतभरी नजरों से देखती थीं तथा मोती कुत्ता भोजन की तलाश में तनिक इधर-उधर हुआ कि वे कुतियाएं अन्य कुत्तों की स्नेहभाजन होने का प्रयत्न करने लगती थीं. वैसे मोती कुत्ता यह अच्छी तरह समझता था कि इसमें कुसूर केवल उन कुतियाओं का नहीं है, उन साले कुत्तों का भी है जो उसकी कुतियाओं पर डोरे डालने के लिए मंडराते हैं और अपनी ओर से ईमानदार प्रयत्न भी करते हैं उन्हें हथियाने का. मगर आधा ही सही, कुसूर कुतियाओं का भी रहा करता था. उसने अपनी मां चंपी कुतिया से इस बात का जिक्र किया तो चंपी ने कहा कि अव्वल तो उसे यह बात उससे पूछनी नहीं थी क्योंकि वह खुद भी कुतिया है और इस प्रकार की स्थितियों से होकर गुजर चुकी है. दूसरे यह कि कुतिया कुतिया है, वह एक कुत्ते को छोड़कर दूसरे की आकांक्षा क्यों रखती है, यह सवाल पूछना बेमानी है. उसने मोती कुत्ते को यह नेक सलाह दी कि, ''तू भी बदले में कई-कई कुतियाओं से संपर्क कर. जो कुत्ते तेरी कुतियाओं पर डोरे डालते हैं, तू उनकी कुतियाओं पर डोरे डाल.'' इस पर मोती कुत्ते ने कहा कि इस प्रकार तो उसका सारा जीवन इसी चक्कर में गुजर जायेगा. तब फिर चंपी कुतिया ने कहा कि कुतियाओं का चक्कर ही छोड़ और अपने अंदर की ताकत को किसी और दिशा में लगा.

उसी शाम वह बस्ती के कुछ और हमउम्र कुत्तों से मिला और उनसे बोला कि चलो हम लोग इकट्ठे हो लें और अपनी वर्तमान समस्याओं पर विचार करें तथा उन्हें हल करने की कोशिश करें. यह जीवन बार-बार नहीं मिलता और हमें इस जीवन में कुछ न कुछ कर गुजरना चाहिए. कुछ कुत्तों ने उसकी बात को सुना, कुछ ने नहीं सुना. कुछ ने संदेह व्यक्त किया कि यह अचानक ऐसी बात क्यों करने लगा. कुछ ने कहा पागल हो गया है, कुछ ने कहा दिखावा कर रहा है. उधर मोती कुत्ता कह रहा था कि केवल चार ईमानदार साथियों की उसे जरूरत है. बाकी तो धीरे-धीरे अपने संगठन को वह बढ़ा लेगा. मोती कुत्ता उन दिनों देखने में काफी आकर्षक था तथा तीन-चार कुतियाओं ने उसी समय अपनी सहयोग उसे देने को आफर किया था, मगर मोती कुत्ते ने कुतियाओं के प्रवेश पर आपत्ति की थी. एक तो इसलिए कि कुतियाओं के मामले में वह खुद भुक्तभोगी था, दूसरे वह इस बात को भलीभांति समझ रहा था कि जो लोग इसके साथ आयेंगे, वे इन कुतियाओं की वजह से आयेंगे.

चार कुत्ते मोती-कुत्ते के साथ आने को तैयार हो गये थे. हालांकि उनमें केवल दो ही सीरियस दिखाई देते थे, बाकी दो के चेहरों पर कुछ व्यंग्य भरा मजाकिया-सा भाव था कि देखें, साली यह संस्था क्या है और इसमें होता क्या है. मोती कुत्ता हालांकि सब समझ रहा था मगर वह आश्वस्त था कि धीरे-धीरे वह इन लोगों को आस्थावान बना लेगा.

उन चार कुत्तों को लेकर मोती कुत्ता छंगू हलवाई की दूकान के सामने पड़े राख के ढेर पर बैठने लगा. मगर जैसा कि कोई भी संस्था बनाओ तो पहले पहले अड़चनें आती हैं, इन लोगों के रास्ते में भी आयीं. पहली चुनौती छंगू हलवाई की तरफ से ही थी जिसने चार कुत्तों के हुजूम को देखकर गरम पानी फेंकना शुरू कर दिया. मोती कुत्ते ने साफ महसूस किया कि छंगू हलवाई उसकी लोकप्रियता बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है.

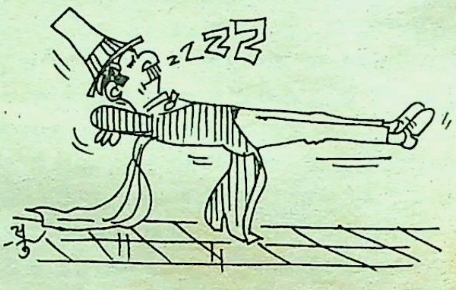

और उसके दूसरे दिन से उसने छंगू हलवाई की दुकान के सामने पड़े राख के ढेर पर बैठना बंद कर दिया था. हालांकि कभी कभी वह उधर से होकर गुजर जाता था और उधर पड़े हुए दोनों में अगर कुछ हुआ तो उन्हें सूंघ-चाट आता था. मगर उसने तय कर रखा था कि छंगू हलवाई द्वारा दिखाये गये दयाभाव से वह बचेगा. माना कि आप हमें टुकड़े फेंकते हैं, मगर आपको यह हक कभी नहीं बैठता कि आप दूसरे चार कुत्तों के सामने हमारा अपमान करें. उसने अपनी मां चंपी कुतिया से कहा भी था कि वह आइंदा छंगू हलवाई की दूकान के सामने नहीं बैठेगा. उत्तर में मां ने कहा था कि ''बेटा, अगर तू नहीं बैठेगा तो कोई दूसरा कुत्ता वहां बैठने लगेगा. वहां वे लोग खाने के लिए टुकड़े फेंकते ही हैं, अगर तू खाने नहीं पहुंचेगा तो कोई दूसरा कुत्ता लपक जायेगा. जगह अधिक देर तक खाली नहीं रहती बेटा. वह शीघ्रातिशीघ्र भर जाती है. इसलिए तू अपना ठिया मत छोड़.''

मगर इसके बदले में मोती कुत्ते को अपने चार कुत्तों का साथ छोड़ना पड़ता. जो महत्वकांक्षा उसके मन में उठ रही थी, उसे छोड़ना पड़ता. लिहाजा मोती कुत्ते ने निर्णय लिया, और एक गंभीर निर्णय लिया कि संगठन के लिए वह यह त्याग करेगा. उसने अपने साथी कुत्तों से कहा भी संगठन के लिए वह यह त्याग करेगा. उसने अपने साथी कुत्तों से कहा भी कि 'चेरिटी बिगिंस एट होम' देखो समाज के लिए मैं अपना ठिया छोड़ रहा हूं. वे लोग अब म्युनिसिपल कमैटी के अहाते में, एक पेड़ के नीचे बैठने लगे थे. नियम से रोज सबेरे दो घंटे बैठते, रोज शाम को दो घंटे बैठते और बैठकर विचार करते. किन्हीं निष्कर्षों पर, किन्हीं निर्णयों पर पहुंचने की कोशिश करते.

धीरे-धीरे मोती कुत्ते को लगा कि जो जगह उसने अपने और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथियों के बैठने के लिए चुनी है, वह संभवतः काफी उपयुक्त जगह है. क्योंकि वह देखा करता था कि उस बिल्डिंग में रोज शाम को बस्ती के कुछ उजले कपड़ेवाले लोग इकट्ठा होते हैं और अंदर बैठकर ठीक उसी प्रकार का कुछ वाद-विवाद परामर्श वगैरह करते हैं जिस प्रकार का कि मोती कुत्ता अपने साथियों के साथ पेड़ के नीचे बैठकर किया करता था. कभी-कभी उन अंदर बैठे लोगों में भी बहस उत्तेजित हो जाती थी और झगड़ा चलने लगता था. झगड़ा कभी-कभी झूमा-झटकी और एक दूसरे को नोचने-खसोटने के स्तर पर पहुंच जाता था और ऐसे समय यदि मोती कुत्ते और उसके साथियों में भी गुर्राना भौंकना चल रहा होता, तो ये लोग सहमकर चुप हो जाते थे और दबे पांव जाकर हाल के दरवाजे के पास खड़े हो जाते थे. तब मोती कुत्ते को लगता था कि संस्था कोई भी चलाओ, उसमें झूमा-झटकी, भौंकना-गुर्राना बराबर होगा. फिर भी मोती कुत्ता अपने सहयोगियों से कहता था कि हमें ऐसा नहीं करना है. वे लोग आदमी हैं और हमें आदमियों का अनुकरण नहीं करना है. क्योंकि अनुकरण वह किसी का भी हो, अपने स्वतः के अस्तित्व के लिए घातक होता है. उस शाम मोती कुत्ते ने अपनी मां चंपी कुतिया से कहा कि उसने आज की अपनी कुत्ता-मीटिंग में यह सब कहा तो मां चंपी कुतिया ने कहा कि, "बेटा, अब तू काफी समझदारी की बात करने लगा है." साथ ही उसने यह भी कहा कि यह सब जिम्मेदारी की जगह पर बैठने का परिणाम है. जिम्मेदारी की जगह पर कुत्ते को भी बैठा दो तो वह थोड़ी-बहुत समझदारी की बात करने लगता है. मगर मां चंपी कुतिया ने यह भी कहा कि उसे इस बात का अफसोस है कि यह समझदारी की बात वह गली के कुत्तों के बीच बैठकर कर रहा है. मां चंपी कुतिया ने कहा कि वह अपने चिंतन के स्तर को बनाये रखे मगर उसके संप्रेषण के लिए तनिक व्यापक आयाम खोजे. कद्रदान के सामने की गयी समझदारी की बात ही सार्थक होती है. वरना उसका सारा जीवन उसके बाप हीरे कुत्ते की तरह गुजर जायेगा.

अपने बाप हीरे कुत्ते की याद करके मोती कुत्ता अकसर उदास हो जाया करता था. हीरे कुत्ते को अपने जीवन के अंतिम दिनों में खुजली हो गयी थी और उसके शरीर पर एक भी बाल नहीं बचा था. उसकी हड्डियां झांकने लगी थीं तथा पूंछ एक पतली रस्सी के टुकड़े की तरह लटकी दिखाई देती थी. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, 'बेटा, हीरा कुत्ता अपनी जवानी के दिनों में वाकई हीरा था. उसको यह हीरा नाम उसके मालिक ने दिया था. यह जो म्युनिसिपैलिटी की बिल्डिंग में एक मोटा-सा सफेद कपड़ों वाला आदमी जाता है, इसने ही उसे पाल रखा था. मलाई और गुलाबजामुन खाता था हीरा कुत्ता. कालीन पर सोता था और पीतल के बर्तन में पानी पीता था. उसके ऐश्वर्य को देखकर चंपी कुतिया उस पर मन ही मन एक दिन आसक्त हो गयी थी और उस मकान के इर्द-गिर्द मंडराने लगी थी.

और एक दिन न जाने क्या हुआ था कि हीरा कुत्ता अपनी रस्सी तुड़ाकर चंपी कुतिया से आ मिला था. देर तक उसके मुंह से मुंह मिलाकर कूं-कूं करता रहा था तथा उसके शरीर को चाटता-सूंघता रहा था. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि बेटा, खानदानी आदमी खानदानी आदमी ही होता है. उसके संसर्ग से चंपी कुतिया को जो सुख मिला, उसके जीवन में आये लगभग चौदह-पंद्रह कुत्तों में से कोई भी नहीं दे सका. वह अपने हिस्से की डबलरोटी घर में से चुरा लाता था और चंपी कुतिया को खिलाता था. मलाई का दोना मुंह में पकड़कर घसीटता लाता था और चंपी कुतिया के सामने रख देता था. उसके इसी स्नेह का परिणाम है मोती कुत्ता. मां चंपी कुतिया हीरे कुत्ते का वर्णन करते समय रुआंसी सी हो आती थी और मोती कुत्ता उदास हो जाता था अपने बाप हीरा कुत्ता की याद करके. मां चंपी कुतिया ने कहा था कि जैसे ही हीरे कुत्ते को खुजली हुई, उसके मालिक ने उसे लात मारकर निकाल दिया था और फिर घर में नहीं घुसने दिया था.

मगर हीरा कुत्ता खजरहा कुत्ता था यह एक हकीकत थी. यह खुजली उसे जहां से भी लगी हो. खजरहे कुत्ते से आदमी तो आदमी, दूसरे कुत्ते तक नफरत करते हैं. बीमारी या दुर्गुण आप में हैं तो लोग आपसे नफरत करेंगे. जब आप लाख सफाई देते फिरें कि यह दुर्गुण आपमें कैसे आ गया, आप इकसे लिए जिम्मेदार नहीं हैं, वगैरह वगैरह. लोग उसी चीज को मानते हैं जो उन्हें दिखाई देती है. आपका वर्तमान ही आपकी सही इमेज है, सही प्रतिष्ठा है. न लोगों को आपके अतीत से वास्ता है और न ही भविष्य से. खजरहा होना हीरे कुत्ते का वर्तमान था. और इसीलिए उसके मालिक ने उसे दुत्कार दिया था और इसीलिए उसके सहयोगी कुत्ते भी उसे भौंक-भौंककर भगाने लगे थे. उसे अच्छी तरह याद है कि यह मां चंपी कुतिया भी हीरे कुत्ते से उसके अंतिम दिनों में बचने लगी थी. वह अकसर उसकी प्रणयाकांक्षा को ठुकरा दिया करती थी और दूसरे कुत्तों की ओर हसरतभरी नजर से देखा करती थी. उसे याद है कि हीरा कुत्ता अपने जीवन के अंतिम दिनों में चिंतक हो गया था तथा घंटों वह नीम के पेड़ के नीचे पड़ा-पड़ा जीभ से अपने खजरहे बदन को खुजलाता-खुजलाता कुछ न कुछ सोचता रहता था. कभी-कभी कातर निगाहों से टकटकी बांधकर घंटों बादलों की ओर देखता रहता था. और एक दिन ऐसे ही आसमान की ओर देखते-देखते उसने अपनी आंखें बंद कर ली थीं. मोती कुत्ते को याद है कि म्युनिसिपैलिटी के अंदर आने-जानेवाले दो काले-कलूटे आदमियों ने, जो कभी-कभी मेला गाड़ी लेकर निकलते थे, हीरे कुत्ते की लाश की पिछली दो टांगों में रस्सी बांध दी थी और उसे घसीटते हुए शहर के बाहर तक ले गये थे. आदमी खाली हाथ लौट आये थे और मोती कुत्ते ने अपनी मां चंपी कुतिया के साथ पीछे-पीछे जाकर देखा था कि शहर से दूर घूरे पर हीरे कुत्ते की लहूलुहान लाश के लोथड़े पड़े हुए हैं और उन्हें एक गिद्ध नोच-नोचकर खा रहा है.

संगठन बना लेना जितना आसान था, उसे चलाना उतना आसान नहीं था, यह मोती कुत्ते की समझ में धीरे-धीरे आ रहा था. जो कुत्ते नियम से उसके साथ बैठते थे, वे बाद को चलकर तड़ी मारने लगे थे. एक दिन ये दो आते तो दूसरे दिन दूसरे दो आते. किसी किसी दिन कोई भी नहीं आता था और मोती कुत्ता अकेला म्युनिसिपैलिटी के कंपाउंड में बैठा रहता.

उसने एक-दो बार उन कुत्तों को झिड़का भी. मगर बदले में उन्होंने कहा कि, "यहां कुछ खाने-पीने को तो मिलता नहीं है, व्यर्थ समय बरबाद करने से क्या फायदा?" मोती कुत्ते ने कहा कि, "तुम लोग अगर केवल खाने-पीने के लिए ही इस संस्था से जुड़े हो तो बेकार है." इस पर उन लोगों ने कहा कि, "संस्थाओं से लोग केवल खाने-पीने के लिए ही जुड़ते हैं तथा और कोई अपेक्षा वह उन लोगों से कर रहा है तो बेकार है." मोती कुत्ते ने इस बात पर अपनी मां की राय मांगी थी. मां चंपी कुतिया ने भी कहा था कि, "बेटा, वे कुत्ते जो कुछ कह रहे थे, सही कह रहे थे. ऑनरेरियम के नाम पर ही सही, थोड़ा बहुत तो उन कुत्तों को खाने को चाहिए ही. यदि तू उन्हें सीधे नहीं खिला सकता तो परोक्ष रूप से ही कोई लाभ पहुंचाने का आश्वासन उन्हें दे. अन्यथा वे लोग नहीं आयेंगे. उन्हें क्या पागल कुत्ते ने काटा है?"

दूसरे दिन की मीटिंग में मोती कुत्ते ने अपने सहयोगियों से खाने-पीने की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया. उसने यह भी कहा कि, "अभी हम लोगों ने जो समिति बनायी है, वह तदर्थ समिति मात्र है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाकायदा चुनी हुई नहीं है. अगर अभी [illegible] गयी तो आगे चलकर हम अपने संगठन का विस्तार नहीं कर सकेंगे.''

उत्तर में सहयोगियों ने कहा कि, ''हम चुपके-चुपके खायें. अपने कार्यक्रमों की एक विस्तृत रूपरेखा बनाकर हम तमाम कुत्ता समाज के सामने रखें, उनके कल्याण की योजनाएं उन्हें समझाएं. इस बीच चंदा वगैरह एकत्रकर कुछ कोष बनायें. उस कोष में से जीवन निर्वाह के नाम पर कुछ न कुछ ले लिया करें.''

मोती कुत्ता कुछ ईमानदार किस्म का कुत्ता था. और अपने साथी कुत्तों की अनेक बातों से असहमत होते हुए भी उसे सहमत होना पड़ रहा था. इसका उसे खेद था. मगर वह क्या करता? जिस स्थिति तक वह पहुंच चुका था उसमें अब उसके सामने दो ही विकल्प बचे थे. या तो वह संगठन-फंगठन का चक्कर छोड़कर चुपचाप छंगू हलवाई का सामने पड़े राख के ढेर पर जाकर बैठ जाये या फिर चार बेईमान सहयोगियों को बर्दाश्त करे, उनकी बेईमानी पर पर्दा डाले और संगठन को बढ़ाने की कोशिश करे. आस्था उसकी पूरी तरह टूटी नहीं थी और उसने दूसरा विकल्प चुना था, केवल इसी उम्मीद में कि आगे चलकर वह निश्चित ही कुछ ईमानदार लोगों को ढूंढ पायेगा और धीरे-धीरे इन गलत तत्वों को अपने रास्ते से उखाड़ फेंकेगा.

अगले दिन की मीटिंग में दो प्रस्ताव आये. एक यह कि छंगू हलवाई की दूकान में पीछे से घुसा जाये और आलूबड़ों की टोकरी दो कुत्ते मिलकर दांतों से पकड़कर खींच लायें. दूसरा यह कि अपने साथी कुत्ते जो बड़े आदमियों के यहां चेनों से बंधे हुए गुलामी का जीवन बिता रहे हैं, उन्हें सड़क पर खींचकर लाया जाये. पहला प्रस्ताव चूंकि अधिक व्यवहारिक था, बाकी तीन कुत्तों ने जोर दिया कि पहले उस पर अमल किया जाये. मोती कुत्ते के मन में छंगू हलवाई के प्रति एक आदर भाव था और वह बचपन से ही उसके द्वारा फेंके गये टुकड़ों पर पला था. अतः वह नहीं चाहता था कि उसकी वजह से छंगू हलवाई को कोई नुकसान पहुंचे. मगर बाकी कुत्तों के मन में छंगू के प्रति एक सहज विद्रोह भाव था. उनमें से एक कुत्ता, जो टामी कुत्ता था, अपनी तिरछी टांग दिखाकर बोला कि यह छंगू के द्वारा फेंकी गयी लकड़ी से ही टूटी है तथा जब तक इस क्षति का बदला वह छंगू हलवाई से नहीं ले लेता, उसकी छाती ठंडी नहीं होगी. माना कि मोती कुत्ते के मन में उसके प्रति आदरभाव है, मगर केवल एक सदस्य की भावनाओं की रक्षा के लिए बाकी कुत्तों के अरमानों को नहीं दबाया जा सकता. हमें जो भी निर्णय लेना है, बहुमत से ही लेना है. और जाहिर था कि बहुमत छंगू हलवाई को नुकसान पहुंचाने के पक्ष में था. उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि चूंकि मोती कुत्ता नेता है, इस काम में भी आगे वही रहेगा. उसके नेतृत्व में ही आपरेशन आलूबड़ा-टोकरी संपन्न होगा.

मोती कुत्ते ने कहा कि वह इस मामले में चंद बुजुर्ग कुत्तों की सलाह लेना चाहता है तो बाकी तीनों ने कहा कि बुजुर्ग आम तौर व्यवस्था की पोषक तथा यथास्थितिवादी होते हैं. वे लोग फेंके गये टुकड़ों को ही खाने की सलाह देंगे, लिहाजा मोती कुत्ते का यह प्रस्ताव बेमानी है. दबाव इतना अधिक था कि मोती कुत्ते को झुकना पड़ा. मगर इसका दूसरा लाभ यह हुआ कि चार दीगर कुत्ते और इनके संगठन में आ गये. शेष तीनों कुत्ते कह रहे थे कि जिस दिन हम लोग आलूबड़े की टोकरी वास्तव में हस्तगत कर लेंगे, उस दिन देखना संगठन में आठ-दस कुत्ते और आ जायेंगे.

और वाकई यही हुआ. जिस दिन आलूबड़े की टोकरी खींचकर घूरे पर लायी गयी, विभिन्न दिशाओं से न जाने कहां-कहां से कोई बीस-तीस कुत्ते प्रकट हो गये थे और सबने मिलकर भोजन किया था. हालांकि बंटवारे को लेकर थोड़ी बहुत कांव-कांव, ख्यांव-ख्यांव भी हुई थी, मगर मोती कुत्ते को लगा था कि इतना तो चलता है. उसे उस दिन यह भी लगा था कि संगठन को अगर सही कामों के लिए बनाने के बजाये, चोरी-चपाटी के लिए बनाया जाये तो वह कितना जल्दी लोकप्रिय होता है. वे बीस-तीस कुत्ते जो उस दिन आलूबड़ों में हिस्सा बंटाने आये थे, उसके बाद फिर कभी दृष्टिगोचर नहीं हुए, हालांकि उनमें से दो-चार कह गये थे कि अब जब कभी ऐसा कोई माल हस्तगत हो, हमें स्मरण करना, हम लोग हाजिर हो जायेंगे.

त्याग करना कुछ पा लेने की अनिवार्य शर्त है. हालांकि मोती कुत्ता यह जानता था कि कुछ लोग हैं जिन्होंने बगैर कुछ त्यागे ही बहुत कुछ पा लिया था, मगर जहां तक उसका मामला था उसे बगैर त्याग के कभी भी कुछ भी हासिल नहीं हुआ था. बल्कि अनेक बार तो केवल त्याग करना ही हाथ लगा था, हासिल कुछ भी नहीं हो सका था. अब इसी आलूबड़े की टोकरी वाले मामले में न जाने कैसे छंगू हलवाई को उस पर शक हो गया था. हो सकता है उसकी दूकान पर काम करने वाले नौकरों में से किसी की नजर उस पर पड़ गयी हो. छंगू हलवाई ने एक दिन मौका तककर उसके ऊपर जो ईंट फेंककर मारी थी कि उसकी कमर लगभग टूट गयी थी. वह दर्द उसे कोई पांच-पांच महीने तक सालता रहा था. हालांकि ऊपरी जख्म उसने चाट-चाट कर ठीक कर लिया था मगर बदन के अंदर कहीं एक अंदरूनी जख्म भी बन गया था जो अभी तक नहीं भरा था. वह सोचता था कि काश वह आदमी होता और छंगू को उसकी अपनी भाषा में बतला सकता कि किस मजबूरी में उसने यह चोरी की थी. किन लोगों के दबाव में आकर यह गलत काम किया था. बहरहाल, उसने सोच रखा था कि छंगू हलवाई के इस नुकसान के बदले वह उसका कोई लाभ किसी न किसी दिन अवश्य करेगा.

दूसरे दिन की मीटिंग में एक साथी कुत्ते ने प्रस्ताव रखा कि उसे टेनाराम हलवाई की दूकान में वह जगह पता है जहां वह बेंच के नीचे गुलामजामुन का थाल रखता है. हालांकि बाकी तीन कुत्तों की जीभें यह सुनकर बाहर निकल आयीं और उनसे लार टपकने लगी, मगर मोती कुत्ते ने इस बात का दृढ़ता से प्रतिकार किया. उसने स्पष्ट कहा कि इस हरकतों से संगठन एक गलत दिशा में मुड़ जायेगा. लोग हमसे नफरत करने लगेंगे और हो सकता है वे हमें मिटाने पर तुल जायें. उसने अपने साथियों को चार-पांच साल पहले का वह वाकया भी याद दिलाया जब म्युनिसिपैलिटी वालों ने तमाम कुत्तों को मावे की गोलियां खिलायीं थीं और उनके खाने के बाद बस्ती के पचास-साठ जो सोये थे तो सोते ही रहे थे. उन्हें किस तरह घसीट-घसीटकर घूरे पर इकट्ठा कर दिया गया था और बाद में एक गाड़ी में डालकर न जाने कहां ले गये थे.

मोती कुत्ते ने कहा कि संगठन किस बात के लिए बना है, पहले यह तय कर लिया जाये. संगठन का नामकरण, उद्देश्य संविधान आदि का निर्माण कर लिया जाये और फिर उस दिशा में बढ़ें. इस संबंध में उसने सुझाव दिया कि हम बस्ती के कुत्तों के अनुभव सीमित हैं, अतः कुछ विद्वान और व्यापक भ्रमण के अनुभवी कुत्तों की सलाह भी ली जाये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा कि कलक्टर के बंगले में उसने एक अलसेशियन बंधा देखा है, उसे देखकर लगता है कि वह कलक्टर के कसाथ काफी घूमा-फिरा है. हम उसे एक दिन अपनी मीटिंग में आमंत्रित करें और उसके विचार जानें.

एक दूसरे कुत्ते ने कहा कि मवेशियों के डाक्टर के यहां भी सफेद रंग की एक छोटी-सी कुतिया है. उसे देखकर लगता है कि वह भी डाक्टर के साथ काफी जगहों पर रहकर आयी है, हम एक दिन उसे भी अपनी मीटिंग में बुलायें.

दोनों नामों पर मीटिंग में आम सहमति हो गयी. हालांकि कुतिया के नाम पर मोती कुत्ता सहमत नहीं था, मगर बहुमत के दबाव के आगे वह कुछ नहीं बोला, केवल यह सोचकर कि संगठन के लिए थोड़ी बहुत मूर्खताएं भी बर्दाश्त करनी पड़ें तो उन्हें कर लेना चाहिए. उसकी मां चंपी कुतिया ने कहा था कि, "बेटा, मोतीचूर के लड्डू को चाशनी बांधे रखती है. कई बार संगठन को बांधने के लिए औरत चाशनी का काम करती है. चाशनी के अभाव में लड्डू बिखर जाता है. अतः जहां जरूरी हो, दो-चार स्त्री सदस्यों को भी बर्दाश्त कर लेना चाहिए. संगठन के सदस्यों की उपस्थिति पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है. इसके अलावा, स्त्रियों की उपस्थिति में पुरुष का व्यवहार भी तनिक संतुलित रहता है, ठीक वैसे ही जैसे चाशनी लड्डू को नरम बनाये रखती है."

मोती कुत्ते ने कहा कि वह ढोर डाक्टर की कुतिया को भी संगठन में भाषण के लिए आमंत्रित करेगा. मगर पहले कलक्टर के कुत्ते के विचार सुने जायेंगे. तय किया गया कि अगले दिन उसे आमंत्रित किया जाये.

कलक्टर के कुत्ते ने चार-छह चक्कर कटवाकर अंततः एक दिन का समय दे दिया. उसने कहा कि उसे बस्ती के हलकट कुत्तों से घुलने मिलने की मनाही है, परंतु फिर भी, जिस प्रकार जीवन में ऊपर उठा सजातीय, अपने गरीब सजातीयों के प्रति नफरत का भाव रखते हुए भी किंचित आत्मीयता रखता है, वह गली के कुत्तों के बीच कुछ क्षण गुजार लेगा, मगर उस दिन जिस दिन कलक्टर बाहर दौरे पर गया होगा.

कलक्टर के कुत्ते को सुनने के लिए बस्ती के लगभग डेढ़ सौ कुत्ते इकट्ठे हुए. दरअसल, सुनने कम, उसे देखने के लिए अधिक कुत्ते इकट्ठे हुए थे. अलसेशियन ने कहा कि उसे बताया गया था कि बस्ती के कुत्तों ने कोई संगठन बनाया है जिसमें कोई चालीस सदस्य हैं. इतनी कम सदस्य संख्या वाले संगठन या तो कोई प्राइवेट कालेज खोलते हैं या सार्वजनिक प्याऊ का निर्माण करते हैं, जाति पंचायत की धर्मशाला बनवाते हैं या फिर सप्तकुंडी यज्ञ करवाते हैं. यदि बड़े पैमाने पर कोई काम करना है तो संगठन को व्यापक बनाना होगा. इसके अलावा आपको तय करना होगा कि आपका संगठन धार्मिक होगा, सामाजिक या राजनैतिक. वैसे संगठन कोई भी हो, होता अंततः राजनैतिक है, इसलिए बेहतर है कि आप इसे जाहिरा तौर पर राजनैतिक रखें.

अलसेशियन ने कहा कि जैसे यहां म्युनिसिपैलिटी है, वैसे ही प्रदेश की राजधानी में विधानसभा होती है तथा देश की राजधानी में संसद होती है. जैसे चुनाव, प्रतिनिधित्व, बहसमुबाहिसे, निर्णय, कार्यवाहियां आदि यहां होते हैं, वैसे ही देश और प्रदेश की राजधानियों में भी होते हैं. उसने बड़े-मुहल्ले में कोने की कोठी में रहनेवाले विधायक का उल्लेख किया कि वह चमचमाती कार में अनेक बार बस्ती के बाहर जाता है तो कहां जाता है. बीच में चार-छह महीने के लिए जब वह झंडा लगी सरकारी गाड़ी में आता था तो क्यों आता था, तथा उस दौरान कलक्टर, एस.पी. और दीगर अधिकारी तत्परता से उसकी अगवानी करते थे तो क्यों करते थे. उसने कहा कि विधायक मंत्री नहीं बनता, मगर कुछ विधायक बनते हैं. और ऊपर वर्णित विधायक की हैसियत में जो परिवर्तन देखा गया था, उसके मंत्री रहने के दौरान देखा गया था. उसने कहा कि आम तौर पर विधायक पांच साल तक मंत्री रह सकता है, परंतु कई बार यह अवधि पांच महीने ही रह जाती है. इक्का-दुक्कार मामलों में पांच दिन का मंत्रित्व भी देखा गया है. पांच मिनिट का रिकार्ड अभी तक किसी ने नहीं बनाया है.

अलसेशियन ने कहा कि ताकत हासिल करो, अधिकार हासिल करो. तभी संगठन सार्थक होगा. हालांकि ऊंची सरकारी नौकरी में आ जाना भी सम्मान जनक है, परंतु अपने इस जीवन के अनुभव के तहत मैं आप लोगों को यह सलाह नहीं दूंगा. बंगला, कार, नौकर चाकर आदि को सुविधाएं यहां हैं, मगर वास्तविक अधिकार कहां हैं, इसके लिए उसने विधायक के बंगले की ओर इशारा किया. उसने कहा कि अधिकारी के क्वार्टर के पेड़ का पत्ता तभी हिलता है, जब उधर से हवा का झोंका आता है.

अलसेशियन ने अपना भाषण समाप्त किया यह कहकर कि तुम लोग विधायक के कुत्ते को भाषण के लिए आमंत्रित करो. इससे तुम्हें दो लाभ होंगे. एक तो संगठन के लिए सही दिशा निर्देश मिलेगा, दूसरे धारा प्रवाह भाषण क्या होता है, यह भी जान जाओगे. वह विधायक मंत्री भी रह चुका है, अतः उसके कुत्ते के पास काफी अनुभव होंगे. वह मार्ग दर्शन भी दे सकेगा, संस्मरण भी सुना सकेगा.

अगली बारी ढोर डाक्टर की कुतिया की थी. उसे सुनने भी काफी कुत्ते इकट्ठे हुए. काफी शरमाते, सकुचाते उसने अपने संस्मरण सुनाए तथा कहा कि एक कुतिया के रूप में उसके अनुभव सीमित हैं. वह प्रजनन के तरीके जानती है, क्रास-ब्रीडिंग पर बोल सकती है तथा किस बीमारी में किस जानवर को ढोर-डाक्टर क्या दवा देता है, यह बतला सकती है. कौन सी दवा नकली है, कौन सी असली, यह भी उसे पता है तथा किस दवा की डेट एक्सपायर हो गयी है इसकी भी जानकारी उसे है.

वह काफी देर तक बोलती रही, मगर क्या बोली यह बहुत कम कुत्तों की समझ में आया. एक कुत्ते ने कहा भी कि इसका भाषण नयी कविता की तरह दुरूह है. वह कुत्ता कविता भी करता था तथा उसने कहा कि वह इस कुतिया को कविता लिखने के लिए उकसायेगा. राजनीति कवियों का क्षेत्र नहीं है. उनके वहां रहते कविता और राजनीति दोनों की मिट्टी पलीद होती है.

पराई बोली

सर्गेई मिरवालकोव

"मैं लोगों की तरह बोलना जानता हूं!" एक तोते ने बड़े गर्व से कहा. "मुझे पक्षियों की बोली पसंद नहीं है. आज से तुम मुझे पक्षियों की बोली में एक शब्द भी बोलते हुये नहीं सुनोगे."

"वाह, वाह!" वो चिड़ियों के मुंह से निकला. "कितना होशियार बन गया है."

"क्या कहा, लोगों की बोली में बोलेगा?" एक बूढ़े कौवे ने कहा, "यह तो बहुत बढ़िया बात है! पर इसका यह मतलब नहीं कि यह दूसरे पक्षियों से होशियार बन गया है. मैं भी लोगों की तरह कुछ शब्द बोल सकता हूं, पर मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि मैं तुम सब पक्षियों से होशियार हूं."

"तो फिर उससे लोगों की बोली में बात करो." चिड़ियों ने कौवे से कहा.

"बहुत अच्छा ख्याल है," कौवे ने कहा और उड़कर उस टहनी पर गया, जहां तोता बैठा हुआ था.

"सुनाओ, क्या हाल है?" कौवे ने उसे लोगों की बोली में कहा.

"तोता मूर्ख है! तोता मूर्ख है!" तोते ने बड़े गर्व से कहा.

"सुना इसे?" चिड़ियों ने चिहुंककर कौवे से कहा. "और क्या अब भी इस की बात का विश्वास करते हो?"

"क्यों नहीं!" कौवे ने कहा, "विश्वास ही नहीं करता, बल्कि इसकी बात से मैं पूरी तरह सहमत भी हूं." □

अनु.सु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुतिया के संभाषण के बाद कवि किस्म के आठ-दस कुत्ते उसके पीछे लग गये थे तथा उसे घेरकर काफी देर तक अचार, बड़ी, पापड़, स्वेटर बुनने के तरीके तथा हेयर ड्रेसिंग, लिपस्टिक और पाउडर आदि पर चर्चा करते रहे थे. कुतिया ने कहा कि उसकी मालकिन से उसने बहुत कुछ सीखा है जिसे वह अन्य स्त्रियों को बतलाना चाहेगी. इस पर कवियों ने कहा कि जो बात वह स्त्रियों से कर सकती है, उसे कवियों से भी कर लेने में कोई हर्ज नहीं है. बल्कि उसे खुद लगेगा कि किसी भी स्त्री के लिए, अन्य स्त्रियों की अपेक्षा किसी कवि से अपने दिल की बात कह देना अधिक निरापद होता है. हालांकि प्रचार दोनों करेंगे, परंतु कवि केवल कविता लिखेगा जबकि स्त्रियां विधिवत समीक्षा करती फिरेंगी. अनुभवी जानते हैं कि समीक्षा, कविता की तुलना में अधिक नुकसानदेह होती है. कवि को उसकी कविता उतना नुकसान नहीं पहुंचाती जितनी कि उन कविताओं पर की गयी समीक्षा उसे पहुंचा देती है.

कुतिया की समझ में कुछ नहीं आया. उन कवियों की बातें काफी दुरूह थीं जिन्हें वह फिलहाल समझना भी नहीं चाहती थी. ढोर डाक्टर की नजर बचाकर वह घर के पिछले दरवाजे से भाग आयी थी और अब शीघ्रातिशीघ्र घर पहुंचना चाहती थी. कुछ कुत्तों ने उससे कहा कि उसे घर तक छोड़ आयें तो उसने मना कर दिया यह कहकर कि अगर घर **वालों ने देख लिया तो वह कहीं की नहीं रहेगी.** बचपन से ही मन में सड़क के कुत्तों से बचकर रहने के संस्कार डाले गये हैं तथा उनसे नफरत करने के लिए कहा गया है. परंतु जैसी की सहज मानवीय प्रवृत्ति है कि जिस काम के लिए मना किया जाये, उसे आदमी एकाध बार जरूर करके देखना चाहता है, वह अपने स्तर से उतर कर यहां कुत्ता मीटिंग में चली आयी. यदि घर पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई तो वह आगे से नहीं आयेगी, क्योंकि कुटने-पिटने से सभी डरते हैं. उसने अपना एक पूर्व अनुभव भी सुनाया कि एक बार एक रोबीले सड़क छाप कुत्ते से उसने केवल दो मिनिट बात कर ली थी जिसे ढोर डाक्टर ने देख लिया था. बदले में उसे कमरे में बंद कर दो घंटे पीटा गया था. उसे दो मिनिट के सुख की तुलना में दो घंटे का दुख काफी महंगा पड़ा था और तभी से वह जीवन के कदम कदम पर मिलने वाले सुख और उसके एवज में मिलने वाले दुख की तुलना करती चलती है. वैसे भी जीवन में दुख की मात्रा अधिक हुआ करती है लिहाजा जितने दुख से बचत हो जाये, बेहतर है.

इतना कहकर कुतिया चली गयी. कवि कुत्ते उसे देर तक जाता हुआ देखते रहे. उन्हें उम्मीद थी कि वह एकाध बार जरूर पलटकर देखेगी, परंतु उसने नहीं देखा.

इधर मोती कुत्ते ने सारे कुत्तों को फिर इकट्ठा किया और कहा कि कलक्टर के अलसेशियन की सलाह मानी जाये और विधायक के कुत्ते को उद्बोधन के लिए बुलाया जाये.

विधायक का कुत्ता विदेशी नस्ल का नहीं था. शुद्ध देशी कुत्ता था वह जो बेहतर खुराक तथा आरामदेह जीवन पद्धति के कारण कुलीन और रोबीला लगने लगा था. गमले में लगे हुए फूल जिस प्रकार बेहतर खाद-पानी के कारण आम जंगली फूलों की तुलना में अधिक आकर्षक और प्रभावशाली लगते हैं, कुछ ऐसी ही स्थिति विधायक के कुत्ते की थी.

मोती कुत्ते द्वारा भेजे गये डेलीगेशन को देखकर विधायक का कुत्ता एकदम से प्रसन्न हो गया, ठीक वैसे ही जैसे विधायक अपने से मिलने आये अपने क्षेत्र के मतदाताओं को देखकर खिल उठता था. संस्कार सोहबत से बनते हैं और विधायक के कुत्ते को ये संस्कार अपने मालिक की सोहबत से मिले थे.

श्रोता कुत्तों ने कहा कि वह कुछ अनर्गल प्रलाप कर रहा है जिसमें उन लोगों की रूचि नहीं है. बेहतर है वह विषयांतर छोड़े और ठीक और लीक पर आ जाये.

विधायक कुकुर ने कहा कि वक्ता को बीच में टोकना ठीक नहीं माना जाता. कवि सम्मेलन में श्रोताओं की ओर से ऐसी आवाजें हूटिंग की श्रेणी में आती हैं और नया कवि इनसे निराश होकर माइक छोड़ देता है तथा

विधायक के कुत्ते ने कहा कि वह अपने वर्तमान मालिक के साथ पिछले चार वर्षों से है. इससे पहले वह दूसरे मालिक के पास था. उसने कहा कि राजनेताओं के कुत्तों में से अधिकांश की नियति यही है कि उन्हें बार-बार अपने मालिक बदलने होते हैं. कई बार नेता उन्हें छोड़ देता है, कई बार वे नेता को छोड़ देते हैं. उसने कहा कि उसने भी अपने पिछले मालिक को तभी छोड़ा था जबकि उसके पास खाने-पीने को नहीं बचा था. उसने यह भी कहा कि राजनीति में अकसर ऐसा होता है कि या तो खूब खाने-पीने को होता है या फिर बिल्कुल खाने पीने को नहीं होता. समृद्धि और अवसाद की ये स्थितियां राजनेताओं के जीवन में बदल-बदल कर आती रहती हैं. एक स्थिति में जहां चारों ओर जयजयकार होती है और भीड़ घेरे रहती है वहीं दूसरी ओर कोई पानी देनेवाला भी नहीं बचता है.

उसने कहा कि जब उसके पिछले मालिक को कोई पानी देनेवाला नहीं बचा था, तभी वह उसका साथ छोड़कर चल दिया था. विधायक के कुत्ते ने कहा कि उसकी बात काफी कुत्तों को निर्मम और क्रूर लग सकती है, परंतु राजनीति में यही निर्ममता और क्रूरता, विशेषता मानी जाती है. राजनैतिक में 'नैतिक' शब्द जुड़ा जरूर है परंतु उसमें नैतिकता ढूंढना व्यर्थ है. दरअसल यहां 'राज' शब्द पर गौर करना जरूरी है. 'राज' का अर्थ है रहस्य. अतः राजनैतिक का अर्थ हुआ उस प्रकार का नैतिक जो रहस्यमय हो.

रहस्यमय धंधों के धनी आम तौर पर राजनीति की ओर आकृष्ट होते हैं. वैसे कुछ ठीक-ठाक लोग भी उधर जाते हैं परंतु जल्दी ही ठीक-ठाक हो जाते हैं. जो ठीक -ठाक नहीं हो पाते वे चाशनी के मैल की तरह बाहर कर दिये जाते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी जगह पर बैठ जाता है. परंतु वह नया कवि नहीं है तथा यह कवि सम्मेलन भी नहीं है, अतः जब तक वह अपनी बात पूरी नहीं कर लेता, स्थान से नहीं हटेगा.

उसने कहा कि असली भाषण वह होता है जिसमें काम की कोई भी बात न की जाये और पूरा भाषण सुन लेने के बाद भी श्रोता यह अर्थ न निकाल सके कि वक्ता आखिर कहना क्या चाहता था. मैं ऐसा भाषण भी दे सकता हूं, परंतु यहां नहीं दूंगा. मैं अपने भाइयों के बीच आया हूं और उनके हित, उनके उत्थान की ही बातें करूंगा.

विधायक कुकुर ने उन लोगों से कहा कि तुम लोग एक पार्टी का गठन करो और अपने कुछ प्रतिनिधियों को चुनकर ऊपर भेजो. प्रतिनिधि ऐसे हों जो तुम्हारी बात रख सकें, तुम्हारे अधिकारों के लिए लड़ सकें. उसने कहा कि उन कुत्तों के लिए वह अपनी सेवाएं देने के लिए तैयार है.

श्रोता कुत्तों ने कहा कि यह कुछ चलता-पुरजा लगता है और चलते पुरजों का संगठन पर हावी होना ठीक नहीं, लिहाजा प्रतिनिधि उन्हें बनाया जाये जो निष्ठावान, समर्पित व ईमानदार कार्यकर्ता हों. एक समूह की ओर से मोती कुत्ते का नाम प्रतिनिधि हेतु प्रस्तावित किया गया.

विधायक के कुत्ते ने कहा कि तुम लोग शीघ्रता में कोई निर्णय मत लो निष्ठा, समर्पण, ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, सच्चरित्रता आदि चीजों को समय-समय पर राजनैतिक क्षेत्रों में आजमाया जाता रहा है परंतु ये चीजें अकसर अल्पजीवी साबित हुई हैं. इस प्रकार के लोग राजनीति में ज्यादा समय तक नहीं चलते. या तो वे राजनीति छोड़ देते हैं या राजनीति उन्हें

छोड़ देती है. जो राजनीति नहीं छोड़ना चाहते वे उक्त चीजों को छोड़ देते हैं.

उसने कहा कि मोती कुत्ते की तारीफ उसने सुनी है तथा उसके गुणों का वह प्रशंसक है. मगर जितना ईमानदार, बुद्धिमान व योग्य वह है, उसे लेकर वह राजनीति में अधिक समय तक नहीं चल पायेगा. वह राज्य की राजधानी अथवा देश की राजधानी तक पहुंच भी गया तो वहां के कुत्तों की भीड़ में खो जायेगा. वहां की आपाधापी, स्वार्थपरकता, भाई-भतीजावाद तथा चालूपन के शोर में उसकी निष्ठा और ईमानदारी की कूं कूं दबकर रह जायेगी. अतः प्रतिनिधि किसी दबंग कुत्ते को चुनो.

विधायक के कुत्ते ने उन कुत्तों की आठ-दस बैठकों को संबोधित किया और परिणाम यह हुआ कि वह प्रतिनिधि चुन लिया गया. बीच-बीच में उसने चार-चार, छह-छह कुत्तों के ग्रुपों से भी अलग-अलग संपर्क किया था तथा चुने जाने के लिए वे सारे तरीके अपनाये थे जो कि प्रतिनिधि चुने जाने के लिए आवश्यक होते हैं.

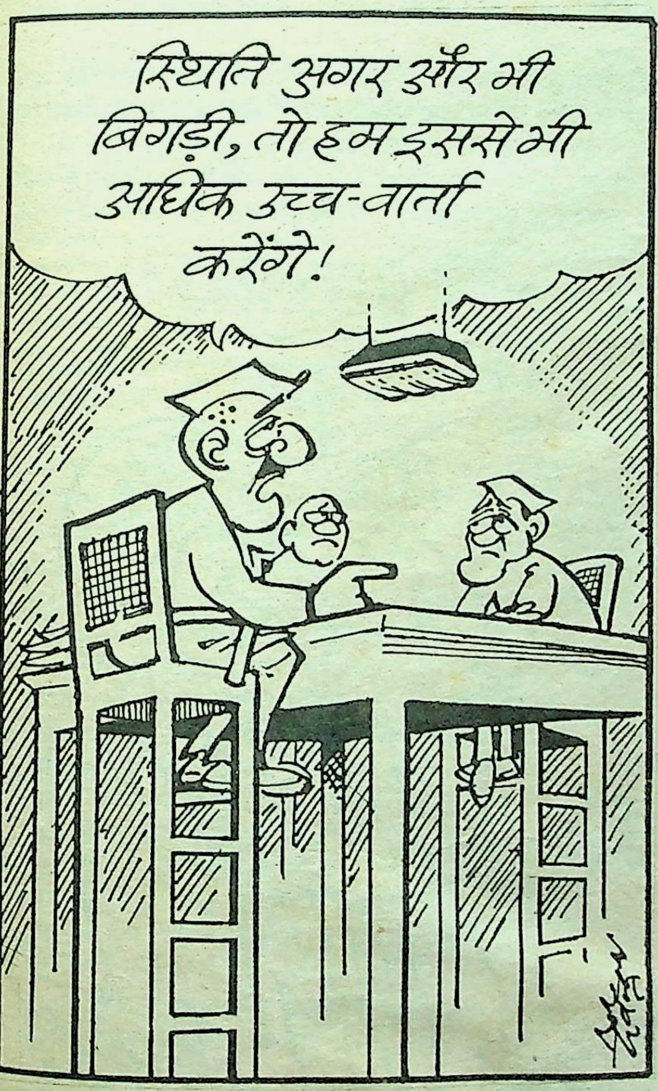

चुनाव के बाद की कथा वही है जो किसी भी चुनाव के बाद की होती है. चुने जाने के बाद विधायक का कुत्ता जो शहर गया तो फिर नहीं लौटा. उसकी खबरें भर आती रहती थीं कि वह जीवन में बराबर ऊंचा उठ रहा है और बस्ती के कुत्ता समाज का नाम रोशन कर रहा है. अपने समाज की भलाई के लिए उसने अनेक बार मालिक भी बदले हैं तथा निरंतर ऐसे मालिकों के साथ रहा है जो सत्ता में रहे हैं.

बस्ती के कुछ चालू किस्म के कुत्तों से उसका संपर्क बराबर बना रहता था जिन्हें वह अपने कार्यकर्ता कहता था. संगठन कुल मिलाकर नेता और कार्यकर्ता का आपसी मामला बनकर रह गया था तथा आम सदस्य तथा गैर-सदस्य कुत्ता बिरादरी नेपथ्य में चली गयी थी.

खेल बरसों तक चलता रहा था, जैसा कि आम तौर पर हर खेल चलता है. जैसे कि खेल में दो तरह के हिस्सेदार होते हैं, एक खेल देखकर ताली बजानेवाले. मोती कुत्ता और उसके ईमानदार सहयोगी, ताली बजानेवालों की श्रेणी में आ गये थे तथा मंच चलते-पुरजों ने संभाल लिया था.

नाटक कितना ही मनोरंजक हो, दर्शक एक सीमा के बाद, देखते-देखते थकता है और आगे ताली नहीं बजाना चाहता. मोती कुत्ता भी नाटकों के प्रति तटस्थ हो गया था तथा फिर छंगू हलवाई की दूकान के सामने राख के ढेर पर बैठने लगा था. एक दिन उसी राख के ढेर पर बैठे-बैठे उसे सपना आया कि कुछ बुड्ढे कुत्तों का सम्मान हो रहा है. कुत्ता समाज अपने पुराने निष्ठावान, त्यागी, तपस्वी बुजुर्गों की सेवाओं का स्मरण कर रहा है और उन्हें मंच कर बैठाकर तमगे वगैरह बांट रहा है.

मोती कुत्ते ने अपनी बूढ़ी आंखों से अपनी तस्वीर भी मंच पर ढूंढनी चाही. उसने देखा कि एक से एक चालू कुत्ते वहां थे, मगर मोती कुत्ता नहीं था. उसने हताशा से सर झटका तथा पलटकर आंखें खोलकर देखा. एक बस तेजी से उसी ओर चली आ रही थी. मोती कुत्ता चाहता तो हट सकता था परंतु वह नहीं हटा. बस छंगू हलवाई की दूकान के काफी पास से होकर गुजरी थी. इतने पास से कि वह राख के ढेर को रौंदती चली गयी थी.

बस के अगले पहिये का दबाव राख के ढेर पर लेट मोती कुत्ते ने अपनी जर्जर छाती, पेट और टांगों पर एक क्षण को महसूस किया था, अपने मुंह से निकली 'चाईं' की एक आवाज उसने सुनी थी और उसके बाद क्या हुआ था यह मोती कुत्ते को पता नहीं चला था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिखमंगों की पेंशन

ईश्वर शर्मा

सरकार ने घोषणा की, "लूले, लंगड़े अपंग निराश्रित लोगों को भीख मांगने की जरूरत नहीं है. उन्हें नियमानुसार सरकार द्वारा मासिक पेंशन दी जायेगी."

सरकार की इस घोषणा से भिखमंगों में खुशी की लहर दौड़ गयी. सोचने लगे, 'चलो सरकार की कपा से भिखमंगों के दिन फिर गये. दरवाजे-दरवाजे भटकने की झंझट से तो मुक्ति मिली.' कुछ भिखमंगे, जो सरकार की संवेदनशीलता नहीं समझ पाये थे, अब भी भीख मांगते घूम रहे थे. उन्हें दूकानदारों ने सरकारी धोषण की जानकारी देकर दुत्कारना शुरू कर दिया.

घोषणा होते ही सरकारी कारिंदों ने भिखमंगों को पेंशन देने के लिए नियम बनाना प्रारंभ कर दिया-जिनकी आयु पचास वर्ष से ऊपर हो, जो अपंग हों, जिनका कोई आश्रयदाता न हो, जिनका जीविकोपार्जन का कोई साधन न हो, ऐसे लोगों को निराश्रितों की परिभाषा में शामिल किया गया और यह नियम बनाया गया कि ऐसे निराश्रितों को शासन की ओर से प्रतिमाह साठ रुपये पेंशन दी जायेगी. इसके साथ ही सरकार ने भीख मांगने पर कानूनी प्रतिबंध लगा दिया.

कुछ दिनों के पश्चात सरकारी प्रक्रिया तय हो गयी. नियम बना दिया गया कि जिस शहर में नगरपालिका अथवा ग्राम पंचायत, जहां जैसी व्यवस्था हो, वहां से निर्धारित प्रपत्र लेकर पात्र भिखमंगे को पूर्ण विवरण स्वयं भरना होगा तथा उसे कार्यालय में जमा कराना होगा. प्रपत्र की कुछ मुख्य बातें इस प्रकार थीं-

नाम, पिता का नाम, जन्म तिथि, स्थायी पता आदि साफ-साफ भरने के बाद आवेदक भिखमंगे को अपनी अधिकतम वार्षिक आय घोषित करनी होगी, जिसे सक्षम राजस्व अधिकारी से प्रमाणित कराना आवश्यक होगा. भिखमंगे को यह घोषणा भी करनी होगी कि उसका देश अथवा विदेश के किसी बैंक में कोई खाता नहीं है और यदि खाता हो तो उसमें जमा राशि का विवरण देना होगा. आवेदक को स्पष्ट उल्लेख करना पड़ेग कि वह स्वय को किस हैसियत से भिखमंगा मानता है, तथा उसे नगर के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों से इस तथ्य को प्रमाणित कराना होगा. आवेदन के साथ ही आवेदक भिखमंगे को प्रदेश का मूल निवास प्रमाण पत्र भी संलग्न करना होगा. आवेदन को आवेदन पत्र के अतिरिक्त एक हलफनामा भी देना होगा जिसमें यह घोषित करना होगा कि आवेदन पत्र में भरी गयी समस्त जानकारी सत्य तथा सही है. और गलत पाये जाने पर आवेदन भिखमंगा दंड का भागी होगा.

इतनी लंबी प्रक्रिया देखकर मैंने एक अधिकारी मित्र से पूछा, "भिखमंगों के लिए इतनी लंबी खानापूरी?"

अधिकारी ने बताया, "यदि इतनी सावधानी न बरतें तो नगर के अधिकांश लोग भिखमंगों की लाईन में लगकर पेंशन ले जायेंगे."

मेरे द्वारा इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करने पर उस अधिकारी ने आगे बताया, "और लाईन में सबसे पहले नेताओं के रिश्तेदार व चमचे ही दिखाई पड़ेंगे. सही भिखमंगे तो फिर भी भीख मांगते मिलेंगे."

मैंने इसके बावजूद विरोध प्रगट करते हुए कहा, "वह सब तो ठीक है, लेकिन ये अपंग इतनी कागजी खानापूरी कैसे कर पायेंगे?"

अधिकारी ने जवाब दिया, "सरकारी नियमों की खानापूरी तो अच्छे-भले पढ़े लिखे भी नहीं कर पाते, ये भिखमंगे क्या खाक करेंगे. नियम सरकारी कर्मचारी बनाते हैं. उन्हें कैसे पूरा करना है, वे ही उसे बताते हैं. भिखमंगों की जानकारी भी वही क्लर्क पूरी कर लेगा जो टेबल पर बैठेगा."

मैंने हर्ष प्रगट करते हुए कहा, "मतलब उस क्लर्क को यह सब करने के लिए सरकार ने आदेश दिया है."

अधिकारी ने पलटकर मुझे जवाब दिया, "मैंने यह कब कहा कि क्लर्क को आदेश दिये गये हैं. मैंने तो यह बताया है कि वह सब जानकारी भर लेगा. इसका अर्थ यह हुआ कि भिखमंगे जब असमर्थता प्रगट करेंगे तब वह क्लर्क उन्हें सहयोग देगा."

मैंने भोलेपन से पूछा, "जब आदेश नहीं है तो क्लर्क को क्या पड़ी है जो वह सहयोग देगा."

अधिकारी ने मंद मुस्कान के साथ कहा, "तुम्हें कभी सरकारी आफिसों में काम नहीं पड़ा मालूम पड़ता है. नहीं तो समझ जाते कि सरकारी बाबू कब और क्यों सहयोग देता है."

अधिकारी की गूढ़ रहस्य वाली बात तो मुझे सचमुच समझ में नहीं आयी. हां, इतना अवश्य समझ गया कि भिखमंगों के पास अवश्य कोई चीज ऐसी है, जिसका आकर्षण सरकारी बाबूओं से किसी तरह काम करवा लेगा. और मैं पहली बार किसी सरकारी घोषणा के प्रति आश्वस्त हुआ कि उसका लाभ संबंधित व्यक्ति को मिल जायेगा.

तीन माह बाद मुझे सरकार की इस घोषणा की अचानक याद आयी. मन में इच्छा जागृत हुई कि कितने भिखमंगे पेंशन पा रहे हैं, इसका पता लगाया जाये.

मैं नगरपालिका दफ्तर पहुंचा. वहां पता चला कि तीन महीने में अभी तो आवेदन ही पूर्ण किये गये हैं. पेंशन मिलने में तो अभी काफी विलंब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा.

मैंने संबंधित क्लर्क से जानना चाता, "आवेदन पूरे हो गये हैं तो पेंशन राशि मिलने में विलंब किस बात का है?"

क्लर्क ने जवाब दिया, "यदि समस्या सामने आते ही उनका निराकरण हो जाये. तो फिर सरकार और सरकारी दफ्तर खाली बैठे क्या मक्खियां मारेंगे?"

मैने पूछा, "मक्खियां नहीं मारेंगे तो फिर काम में लगे रहने के लिए क्या करेंगे जिससे इन भिखमंगों को पेंशन मिल जाये?"

क्लर्क ने बताया, "सरकारी दफ्तर का काम में लगे रहना अलग मुद्दा है, और भिखमंगों को पेंशन मिल जाना दूसरी बात है."

मैंने उलझाव से बचने के लिए सीधी बात पूछी, "और क्या कार्यवाही बाकी रह गयी है?"

उसने बताया, "अभी तो प्रारंभ हुआ है. संपूर्ण प्रक्रिया तो काफी लंबी है."

मैने बड़ी श्रद्धापूर्वक पूरी प्रक्रिया की लंबाई जानने की जिज्ञासा प्रगट की.

टेबल पर फैले सब कागजों को एक जगह समेटकर पेपरवेट से दबाते हुए क्लर्क ने जेब से तंबाकू की डिबिया निकाली. कुरसी को थोड़ा पीछे खिसकाकर झुलाते हुए उसने बड़े इतमीनान से तंबाखू-चुना निकालकर मला और उसकी फांक मुंह में डालकर मुंह चलाया. थोड़ी देर बाद पास रखी जालीदार टोकरी में पीक मारकर तब मेरी ओर इस भंगिमा में मुखातिब हुए मानो भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता-रहस्य से परिचित कराने जा रहे हों.

भिखमंगे को यह घोषणा भी करनी होगी कि उसका देश अथवा विदेश के किसी बैंक में कोई खाता नहीं है और यदि खाता है तो उसमें जमा राशि का विवरण देना होगा.

उसने मुझे भिखमंगों का पेंशन रहस्य समझाते हुए बताया कि आवेदन पत्र पूर्ण हो जाने के पश्चात सबसे पहले शासकीय चिकित्सक के पास भेजे जायेंगे. चिकित्सक द्वारा भिखमंगों का स्वास्थ्य परीक्षण कर उनके रोगों की पुष्टि की जायेगी. इसके बाद इस बात की तसल्ली की जायेगी कि ये भिखमंगे सचमुच निराश्रित हैं. यह पता लगाया जायेगा कि इनके आय के स्त्रोत कौन-कौन से हैं. इतनी सब पुष्टि हो जाने के बाद समस्त आवेदनों को स्वीकृति हेतु जनपद पंचायत के माध्यम से समाज कल्याण विभाग को प्रेषित किया जायेगा. जनपद पंचायत इन पर अपनी टिप्पणी लिखकर समाज कल्याण विभाग को भेजेगी. समाज कल्याण विभाग बजट आबंटन के अनुपात में भिखमंगों की संख्या का निर्धारण करेगा जिसमें अनूसूचित जाति व जनजाति के लिए तीस प्रतिशत कोटा आरक्षित रहेगा. वह स्वीकृत सूची जनपद पंचायत के माध्यम से नगरपालिका कार्यालय पहुंचेगी. इतना सब हो जाने के बाद पेंशन राशि का इंतजार किया जायेगा. जब समाज कल्याण विभाग को राशि की सुविधा होगी तब वह धनराशि का चेक जनपद पंचायत को भेजेगा. जनपद पंचायत उस चेक को पहले अपने खाते में जमाकर अपनी सुविधानुसार जनपद पंचायत का चेक नगरपालिका को भेजेगी.

हनुमान की पूंछ से भी लंबी इस प्रक्रिया को सुनकर, भिखमंगों का तो क्या होगा, नहीं मालूम लेकिन मुझे चक्कर आने लगा था. पास खड़े चपरासी से मैंने तत्काल पानी मंगवाया और ताबड़तोड़ दो ग्लास पानी पीने के पश्चात लंबी सांस छोड़ते हुए पूछा, "इसके बाद तो इन भिखमंगों को पेंशन मिल जायेगी ना?"

क्लर्क ने हंसते हुए जेब से माचिस की डिबिया और बीड़ी का बंडल निकालते हुए कहा, "अभी कहां.. अभी नियम पूरे थोड़ी हुए हैं, जो इन्हें पेंशन मिल जायेगी."

मैं लगभग पस्त भाव से कुरसी पर पसर गया. और थके स्वर में मैंने पूछा, "भिखमंगों को पेंशन प्राप्त करने के लिए और क्या क्या पापड़ बेलने पड़ेंगे, वह भी बता डालिए."

उसने मेरी जानकारी में वृद्धि करते हुए बताया, "जनपद पंचायत द्वारा भेजा गया चेक पहने नगरपालिका के खाते में जमा होगा. और जबं हमें फुरसत मिलेगी तब भिखमंगों का अलग-अलग वाउचर बनाकर उतनी धनराशि का नगरपालिका का चेक को-ऑपरेटिव बैंक को भेजा जायेगा."

मैंने चौंकते हुए तत्परतापूर्वक पूछा, "बैंक में चेक क्यों भेजा जायेगा?"

क्लर्क ने तसल्लीपूर्वक जवाब दिया, "भिखमंगों को पेंशन राशि का भुगतान बैंक से प्राप्त होगा."

मैंने फिर पूछा, "बैंक से भुगतान करने के पीछे सरकार की क्या मंशा है?"

उसने बताया, "सरकार नहीं चाहती कि भिखमंगे जैसे शोषित पीड़ित वर्ग को रुपये देने में किसी किस्म का भ्रष्टाचार पनपे. इसीलिए उन्हें सीधे बैंक से रुपया दिलाने की योजना बनायी गयी है."

एक-बारगी तो मन में यह विचार आया, इसका तात्पर्य यह हुआ कि सरकारी विभागों में सीधे जो भुगतान होते हैं, उनमें भ्रष्टाचार होता है. लेकिन वातावरण खराब न हो जाए इस ख्याल से मैंने यह बात नहीं कही. लगभग हथियार डालते हुए मैंने पूछा. "फिर वहां बैंक में इन भिखमंगों को कौन-कौन-सी खाना-पूरी करनी पड़ेगी, वह भी बता ही दीजिए."

क्लर्क ने उंगलियों के बीच दबी बीड़ी का अंतिम कश मारकर वहीं से बैठे-बैठे बचा हुआ टुकड़ा आफिस के कोने में लापरवाहीपूर्वक फेंका और कहा, "सबसे पहले इन भिखमंगों को स्वयं के खर्च से अपना फोटो खिचंवाकर बैंक में देना होगा.'

मैंने पूछा, "बैंक फोटो का क्या करेगी?"

उसने कहा, "सभी भिखमंगे साले देखने में एक जैसे दिखते हैं. बैंकवाला उन्हें कैसे पहचानेगा. उनकी फोटो बुक में लगी रहेगी उससे उन्हें पहचानकर रुपया दे पायेगा."

मन ही मन क्लर्क की बात से मैं पहली बार सहमत हुआ कि वास्तव में भिखमंगे, चाहे वे किसी भी वर्ग या लिबास में हों, एक जैसे ही दिखते हैं.

मैने पूछा, "फोटो देने के बाद क्या करना होगा?"

उसने बताया, "भिखमंगों को बीस रुपये जमा करवाकर बैंक में अपना बचतखाता खोलना होगा. तब उन्हें पास बुक मिल सकेगी."

मैने जानना चाहा, "भिखमंगों को ये बीस रुपये कौन देगा?"

उसने जवाब दिया, "यह बीस रुपया हर भिखमंगे को अपने पास से देकर खाता खोलना होगा और यह रकम हमेशा उनके खाते में जमा रहेगी."

आगे की विस्तृत कार्यवाही का विवरण देते हुए उसने यह भी बताया कि नगरपालिका द्वारा भिखमंगों का वाउचर और चेक में भेजे जाने पर बैंक द्वारा भिखमंगों के खातों में अलग-अलग रकम जमा की जायेगी. और फिर उनकी पासबुकों में वह राशि जमा दर्ज की जायेगी. इसके पश्चात ही भिखमंगे अपनी जमा रकम निकाल सकेंगे. इसके लिए उन्हे बैंक में फार्म भरकर देना होगा, तब उन्हें बैंक से रकम मिल जायेगी.

उस क्लर्क ने इतने इतमीनान से 'तब उन्हें रकम मिल जायेगी.' कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो भिखमंगों को निश्चितरूप से रकम मिल गयी हो. इतनी लंबी प्रक्रिया और इतनी लंबी अवधि के बीच आफिस-दर-आफिस उनके भटकाव और प्रतीक्षा की कल्पना से मेरी तो सांस ही उखड़ने लगी थी, भिखमंगों का तो शायद दम ही निकल जायेगा.

कुछ माह बाद यह जानने की गरज से कि भिखमंगों को पेंशन का रुपया मिला या नहीं, मैं बैंक पहुंचा.

वहां मैंने देखा कि बैंक के अधिकारी, बाबू और चपरासी मिलकर भिखमंगों की भीड़ को खदेड़ने में लगे हैं और गुस्से में उन्हें गालियां बके जा रहे हैं. मैंने उन्हें शांत करते हुए गुस्से का कारण जानना चाहा.

बैंक अधिकारी ने आक्रोशपूर्वक बताया, ''ये साले भिखमंगे समझते है कि बैंक वाले केवल इन्हीं का काम करने के लिए बैठे हैं. सुबह से शाम तक दरवाजे पर धरना दिये बैठे रहते हैं साले, नंगे भूखों की तरह. साले दो दिन भी सब्र नहीं कर सकते हैं. उधर नगरपालिका से कागज आया नहीं कि इधर हमारी छाती पर सवार हो जाते हैं.''

मैंने उन्हें शांत करते हुए कहा, ''चलो, जाने भी दो, भिखमंगे हैं बेचारे. पैसों की तंगी किसको नहीं होती. दे दो उनका रुपया, अपना क्या जाता है.''

मेरी बातों से थोड़ा ढीला पड़ते हुए बैंक अधिकारी ने मुझे विश्वास से लेते हुए बताया, ''बात तो आपकी ठीक है लकिन हमारी भी कुछ मजबूरियां हैं. आप तो जानते हैं कि ये को-आपरेटिव बैंक की छोटी-सी ब्रांच है. यहां ज्यादा रकम तो जमा रहती नहीं है. नगरपालिका ने भिखमंगों की रकम भेजी थी तो उससे हमने बैंक के स्टाफ को तनखा बांट दी. अब और कहीं से रुपया आयेगा तो इन भिखमंगों को दे सकेंगे.''

इस जवाब के बाद कुछ कह सकने अथवा कर सकने की स्थिति में मैं नहीं रह गया था. बैंक से बाहर निकलने पर मुझे एक परिचित अपंग दिखाई पड़ा. मैंने उससे पूछा, ''प्रति माह कितना रुपया मिल जाता है?''

उसने बताया, ''सब कट-कुटाकर आखिर में तीस रुपया महीना हाथ में आता है बाबूजी.''

आगे उसके बताये बिना ही मैं समझ गया कि बाकी तीस रुपया इतनी लंबी प्रक्रिया के दौरान कई लोगों की संवेदनाओं को संतुष्ट करने में लग जाता होगा. क्योंकि जटिल शासकीय प्रक्रियाएं आफिस-दर-आफिस कितने ही भिखमंगों को अस्तित्व में ला देती हैं, जिनका उदर-पोषण ऐसे अपंगों को करना पड़ता है.

सरकार की संवेदनशीलता के प्रति मेरा हृदय श्रद्धावनत हो गया, जिसने भिखमंगों को भीख मांगने के निकृष्ट कार्य से उबार कर स्वाभिमान से जीने की लाईन में लगा दिया.□

कालेज रोड, महासमुन्द म.प्र.-493445

प्रवचन

श्याम बिल्लौरे

रात की शयन-आरती के बाद मंदिर के द्वार बंद हो गये. अब वहां थी देव-प्रतिमा, पूजन-सामग्री, कुछ जलते हुए दीपक और उन पर मंडराते पतंगे. कुछ दीपकों में तेल था और कुछ की लौ तेल की कमी के कारण मंद पड़ती जा रही थी. लगता था अंधकार के आगे वे हथियार डाल रहे हैं.

यह देखकर देव-प्रतिमा के पास ऊंची वेदी पर रखे मुख्य दीपक को बड़ा क्रोध आया. उसका शरीर औरों की भांति, मिट्टी का नहीं, बल्कि पीतल का था, आकार प्रकार में चौगुना था और मंदिर में अखंड दीपक का पद प्राप्त होने से उसका पेट तेल से दिन रात भरा रहता था.

मुख्य दीपक ने अपनी वेदी के मंच के नीचे सारे छोटे दीपकों को एकत्रित करके कहना शुरू किया, ''बड़े दुख की बात है कि तुममें से कुछ लोग अपने कर्तव्य से विचलित हो रहे हैं. याद रखो, तुम्हारा जन्म अंधकार को नष्ट करने के लिए हुआ है, उसके आगे हथियार डालने के लिए नहीं. तुम्हें रात भर जगते रहना चाहिए. अंधकार हमारा सबसे बड़ा शत्रु है. जब जहां, जिस ओर भी वह दिखाई दे, उस पर टूट पड़ो...!''

भाषण लंबा होता जा रहा था. कुछ दिये उनींदे हो चले थे. कुछ अपने अस्तित्व की चिंता में थे. लेकिन भाषण के बीच में कोई कैसे बोलता. वह उनका मुखिया जो था.

लेकिन वहीं पड़े एक अधजले पतंगे से रहा न गया. वह बोला, ''महाराज, धृष्टता क्षमा करें तो एक निवेदन करूं. आपका पेट तो हमेशा भरा रहता है, इसलिए आप इतनी ऊंची बातें सोचते और कह लेते हैं. बाकी दिये तो रोज जीते-मरते हैं. थोड़ा ध्यान से देखें तो इनमें से बहुतों के पेट लगभग खाली हो गये हैं. ये अपनी जान की फिक्र करें, या आपका उपदेश सुनें? बाकी दिये भी आधे पेट हैं. इसलिए भविष्य की चिंता में इनका ध्यान आपके प्रवचन से रह-रह कर हट जाता है.

पतंगे ने आगे कहा, ''महाराज, अब इस आखिरी वक्त में प्राणों का भय नहीं रहा, इसलिये कह रहा हूं कि जहां तक अंधकार को नष्ट करने का सवाल है, थोड़ा अपने नीचे भी झुककर देख लें. आप और दियों से बड़े हैं, इसलिए आप देखेंगे कि इस सबमें सबसे ज्यादा अंधेरा आपके ही तले है.

इतना कहकर उस अधजले पतंगे ने दम तोड़ दिया. कक्ष में अब सन्नाटा था.

देव प्रतिमा के चेहरे पर मुस्कान यथावत् थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम संबंधों में विशेषज्ञों की राय

फ्रैंक सलीवान

प्रश्न : प्रेम संबंधी विशेषज्ञ होने के नाते क्या आप प्रेम विवाह, सैक्स आदि विषयों के संदर्भ में नियमित उपयोग किये जाने का शब्दों और वाक्यों के प्रयोग पर बयान देने के लिए तैयार हैं?

उत्तर : जी हां.

प्र. : ठीक तो बताइये, प्यार क्या होता है?

उ. : प्यार अंधा होता है.

प्र. : ठीक. प्यार से क्या होता है?

उ. : प्यार से दुनिया चलती है.

प्र. : कोई युवक किसके प्यार में पड़ता है?

उ. : संसार की एकमात्र लड़की के.

प्र. : कोई युवती किसके प्यार में पड़ती है?

उ. : संसार के सबसे अच्छे युवक के.

प्र. : दोनों कब प्यार में पड़ते हैं?

उ. : पहली नजर में.

प्र. : कैसे?

उ. : दीवानों की तरह.

प्र. : तब क्या माना जाता है?

उ. : कि कामदेव के बाणों के शिकार हुए.

प्र. : तब लड़का क्या करता है?

उ. : लड़की के कानों में मीठी-मीठी बातें फुसफुसाता है.

प्र. : इस प्रेमी को कौन प्यार करता है?

उ. : प्रेमी को सारी दुनिया प्यार करती है.

प्र. : दुनिया की वह एकमात्र लड़की कैसी होती है?

उ. : आंखें हिरनी जैसी, दांत मोतियों जैसे, उसके होंठ गुलाब की पांखुरियां, गाल सेब जैसे...उसका रूप अलौकिक.

प्र. : आप कुछ भूल रहे हैं?

उ. : आंखें, दांत, होंठ, गाल, रूप...जी नहीं, मेरे खयाल में सब कुछ बता दिया है मैंने.

प्र. : उसके बाल?

उ. : अरे हां, कैसा मूर्ख हूं मैं भी. उसकी अलकें नागिनों जैसी होती हैं.

प्र. : बहुत खूब, अब जरा दुनिया के उस सबसे अच्छे युवक के बारे में बताइये?

उ. : वह ग्रीक देवताओं जैसा होता है, पूर्ण पुरुष, उसके व्यक्तित्व में कोई विशेष बात होती है. वह सीधा-सच्चा होता है. जब तक उसे अपनी चाहत के मुताबिक लड़की नहीं मिलती—जो उसके भावी बच्चों की मां बन सके—तब तक वह पवित्र और विशुद्ध बना रहता है. वह लड़की की आंखों में सीधे देख सकता है.

प्र. : कैसे?

उ. : बेधड़क.

प्र. : क्या ऐसे लड़के सबके सब ग्रीक देवताओं जैसे ही होते हैं?

उ. : अरे नहीं, कुछ दूसरी तरह के भी होते हैं. घाट-घाट का पानी पिये. उन्हें सुंदरियों से पेश आने के तौर-तरीके मालूम होते हैं. गंवार नहीं होते. बदतमीजी नहीं करते. दिल सोने का होता है. ऐसा लड़का अनगढ़ हीरा होता है. वह अपने अतीत के बारे में सब कुछ बता देता है. वह भी उसकी बात समझती है—और उसे माफ कर देती है.

प्र. : और उससे शादी कर लेती है?

उ. : उससे शादी कर लेती है.

प्र. : क्यों?

उ. : उसे सुधारने के खयाल से.

प्र. : वह उसे सुधार पाती है?

उ. : शायद, कभी कुछ दिनों अवश्य.

प्र. : अच्छा, तो पागलों की तरह प्यार करने लगता है, तब वह करता क्या है?

उ. : वह हवा में उड़ता-फिरता है.

प्र. : वह तो हम जानते हैं, मगर वह करता क्या है?

उ. : कसम लेता है.

प्र. : किसी कसम?

उ. : अपनी, प्यार की.

प्र. : उसके बाद क्या होता है?

उ. : वे शादी कर लेते हैं.

प्र. : शादी क्या है?

उ. : एक लाटरी है.

प्र. : शादियां कहां तय होती हैं?

उ. : शादियां स्वर्ग में तय होती हैं.

प्र. : ऐसे में दुल्हन क्या करती है?

उ. : शरमाती है.

प्र. : और दूल्हा?

उ. : अंगूठी भूल जाता है.

प्र. : शादी के बाद क्या होता है?

उ. : सुहागरात......मधुचंद्रिका.

प्र. : और फिर?

उ. : लड़की के पास एक भेद की बात होती है.

प्र. : कैसी बात?

उ. : वह छोटे-छोटे मौजे बुनती है.

प्र. : उसके बाद क्या होता है?

उ. : अरे, उनका घर बनता है, परिवार बनता है...और वे सुख से रहने लगते हैं, बशर्ते....

प्र. : बशर्ते क्या?

उ. : बशर्ते कि पुरुष ऐसा न हो कि कहीं चिकना चेहरा देखते ही फिसल जाये.

प्र. : और अगर वह ऐसा ही हो तो?

उ. : तब उनकी राहें जुदा हो जाती हैं.

प्र. : बहुत बहुत शुक्रिया.

उ. : लेकिन मैंने अपना बयान अभी पूरा कहां किया है.

प्र. : अच्छा!

उ. : जी हां, सैक्स का एक और पक्ष भी है.

प्र. : कौन-सा पक्ष?

उ. : बुरा पक्ष. आप तो जानते ही हैं, कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जो भेड़ की खाल में भेड़िये होते हैं और दुख की बात है कि कुछ ऐसी सुंदर स्त्रियां भी होती हैं जो किसी भी हद तक गिर सकती हैं.

प्र. : मेहरबानी करके ऐसे पुरुषों के बारे में जरा विस्तार से बताइये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ. : वे तो घास में रेंगनेवाले सांप हैं. वे नारी को नारी नहीं समझते. चालू लोग जो लड़की को चूमते हैं और इस बात का ढिंढोरा पीटते हैं. वे लड़की के प्यार का नाजायज फायदा उठाते हैं, उसकी मासूमियत के साथ खिलवाड़ करते हैं, उसके विश्वास को तोड़ते हैं. सोचते हैं औरत तो सिर्फ औरत होती है जैसे एक अच्छी सिगरेट धूम्रपान के लिए होती है. उनका आदर्श वाक्य होता है : "प्यार करो और छोड़कर चलते बनो. और छोटी उम्र में ही उन्हें फांसों, मसलो-कुचलो और बताओ उन्हें कुछ मत. ये बेशर्मा लोग. औरत की आंखों में बननेवाली रोशनी की बात करते हैं और सिर्फ झूठ और झूठ बोलते हैं. पुराने जमाने में ऐसे लोग काली ऐंठी हुई मूंछें रखा करते थे, जिन्हें वे जब-तब ताव देते रहते थे : वे मासूम जवान लड़कियों को रात के खाने पर बुलाते थे अपने घर में और

अकेले में कहते थे, "बेबी तुम हमसे डरती क्यों हो?" अब उनके काले, चमड़े जैसे बाल होते हैं और अपनी गाड़ी को मोड़ पर लाकर रोकते हुए कहते हैं, "मेम साब, लिफ्ट चाहिए? इनसान रूप में ये शैतान होते हैं, जो औरत का सबसे अनमोल खजाना लूट लेते हैं.

प्र. : कौन-सा खजाना?

उ. : उसकी इज्जत-उसकी अस्मत.

प्र. : कैसे लूटते हैं वे?

उ. : अपनी बेहूदी हरकतों से.

प्र. : जब घासमें रेंगनेवाला यह सांप जब किसी औरत की इज्जत लूटने की कोशिश करता है तो वह क्या करती है?

उ. : वह अपनी इज्जत बचाने की कोशिश करती है.

प्र. : कैसे?

उ. : उसके बढ़ते हाथों को धकेलकर, उसके आलिंगन को नकारकर.

प्र. : ऐसा वह कैसे करती है?

उ. : यह कहते कि 'आप भूल कर रहे हैं कि आप क्या हैं', या 'अपने गंदे हाथों से छूना मत मुझे,' या 'आप याद रखें कि मैं एक इज्जतदार औरत हूं.' या 'अपनी जलील हरकतों से बाज आओ वरना....'

प्र. : मान लीजिये, वह ऐसा कुछ भी न कहे तो?

उ. : उस हालत में वह जीवन का पहला गलत कदम उठाती है.

प्र. : वह पहला कदम उसे कहां ले जाता है?

उ. : फूलोंवाले रास्ते की ओर.

प्र. : फूलोंवाला रास्ता?

उ. : जो सबसे आसान है.

प्र. : वह रास्ता कहां पहुंचाता है.

उ. : शर्मनाक जिंदगी की ओर.

प्र. : शर्मनाक जिंदगी क्या है?

उ. : मौत से भी बदतर.

प्र. : अब, जब कोई औरत गलती कर बैठी हो, तो वह उस मजनूं का क्या करती है जिसने उसका सबसे बेशकीमती खजाना लूटा था?

उ. : वह अपनी जिंदगी के सबसे अच्छे साल उसे समर्पित कर देती है.

प्र. : वह क्या करता है?

उ. : वह उसे त्याग देता है.

प्र. : कैसे?

उ. : पुरानी जूती की तरह.

प्र. : तब वह क्या करती है?

उ. : वह अपने प्यार के घोसले में जाती है. उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है. उसका दिमाग सुन्न पड़ जाता है. वह रिवाल्वर निकालती है और इनसान की शक्ल वाले उस शैतान को एक ऐसा उपहार देती है, जिससे वह शैतान उसे हमेशा याद रखे.

प्र. : इसे क्या कहते हैं?

उ. : इज्जत लूटने का बदला.

प्र. : वह क्या है जो कोई भी ज्यूरी ऐसे मामले में नहीं कर पायेगी?

उ. : कोई भी ज्यूरी उसे सजा नहीं देगी.

प्र. : इन मामलों में विलशे अर्थात पिष्टोक्ति के सही इस्तेमाल का खुलासा हमारे लिए बड़ा जानकारी भरा रहा—और मैं जानता हूं कि यहां बैठे हम सब पिष्टोक्तियों का इस्तेमाल करनेवालों को पता रहेगा कि हमारी प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए जब किसी वार्तालाप के दौरान प्रेम—जब सैक्स—जब—आह—.....

उ. : मेरा ख्याल है आप यह कहना चाहते हैं कि "जब सैक्स अपना भद्दा सिर उठाता है"—है न?

प्र. : शुक्रिया. मैं यही कहना चाहता था. □

अनुवाद—सुदीप

चलते-चलते

एक नवयुवक सेल्समैन की नौकरी के लिये साक्षात्कार देने गया. मालिक ने एक लकड़ी का टुकड़ा उठाकर मेज पर रखा और उससे पूछा, "इसे तुम क्या कहोगे?" नवयुवक तपाक से बोला "साहब यह तो उसी छड़ी का हिस्सा है जिसे लेकर नेहरूजी टहलने निकलते थे!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्या निंदक

चेखव

रूस के महान कथाकार की हास्य रचना.

सुलेखन के अध्यापन सिर्जो अखिनीओव ने अपनी बेटी नातालिया की शादी इतिहास-भूगोल के मास्टर इवान लोशाडनिकिख से कर दी. शादी की दावत मजे में चल रही थी. बैठकखाने में उन्होंने गाने गाये, खेल खेले, नाच किया. क्लब से किराये पर लाये गये काले फ्राक-कोटों और मैली सफ़ेद टाइयों से लेस बहरे पागलों की तरह इधर-उधर हड़बड़ाकर घूम रहे थे. स्वरों का ऊंचा शोर वायु को आक्रांत कर रहा था. बाहर से लोग खिड़कियों से झांक रहे थे. समाज में उनकी ऐसी स्थिति नहीं थी कि उन्हें अंदर आने का अधिकार प्रदान करती.

ऐन आधी रात को मेजबान अखिनीओव यह देखने के लिए कि खाना तैयार हो गया है कि नहीं, रसोईघर की ओर बढ़ा. किचन में फर्श से छत तक धुंआ भरा हुआ था. धुएं में हंसों, बत्तखों तथा चूज़ों की गंध मिली हुई थी. खाद्य-सामग्री और पेय-सामग्री दो मेज़ों पर कलात्मक अव्यवस्था में बिखरी हुई थी. लदे हुए मेजों के नजदीक लाल मुंहवाली हट्टी-कट्टी बावर्चिन मारफा बहुत व्यस्त थी.

"मुझे बड़ी मछली दिखाओ," अपने हाथ रगड़ते और होंठ चाटते हुए अखिनीओव ने कहा, " क्या सुगंध है! जी चाहता है, सारा रसोईघर निगल जाऊं. अच्छा, लाओ, बड़ी मछली दिखाओ."

मारफा सावधानी से एक बेंच की ओर गयी और उसने चिकना अखबार हटाया. कागज के नीचे, गाजरों, जैतून, और करील के फूलों की चटनी के बीच बड़ी मोटी मछली रखी थी. अखिनीओव ने बड़ी मछली पर सरसरी नज़र दौड़ायी और सुख की सांस ली. उसका चेहरा कांतिमय हो गया. वह झुका और उसने एक चटखारा भरा जिससे पहिये के चरमराने जैसा स्वर निकला. वह क्षण भर खड़ा रहा. फिर उसने स्वाद के लिए अपनी उंगलियों पर मुंह फेरा और एक बार फिर चटखारा भरा.

"आह! एक भरपूर चुंबन की आवाज. मारफा, तुम किसे चूम रही थीं?" बगलवाले कमरे से किसी का स्वर सुनाई दिया और तुरंत बाद सहायक-अध्यापक वेनकिन का मुंडा हुआ सिर द्वार-मार्ग में दिखाई दिया. "तुम यहां किससे चूमा-चाटी कर रहे थे? ओह, बहुत खूब सिर्जो, वास्तव में तुम एक मनमोहक बूढ़े हो! एक औरत के साथ अकेले में!"

"मैं किसी का चुंबन बिल्कुल नहीं ले रहा था." हड़बड़ाकर अखिनीओव ने कहा, "अरे मूर्ख, कौन कहता है? मैं तो मछली देखकर केवल चटखारा भर रहा था."

"किसी और को बेवकूफ बनाना." वेनकिन ने मुस्कराकर कहा और दरवाजे के पीछे ओझल हो गया. अखिनीओव झेंप गया.

"शैतान ही जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा." उसने सोचा, "वह दुष्ट अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुगलखोरी करेगा. वह हैवान सारे कस्बे में मुझे बदनाम कर देगा.''

अखिनीओव डरते-डरते बैठक में दाखिल हुआ और चोर-नज़र से उसने देखा कि वेनकिन क्या कर रहा है. वेनकिन पियानों के पास खड़ा था और बड़ी होशियारी से झुककर उसने इंसपेक्टर की साली के कान में कुछ कहा. वह हंसने लगी.

'मेरे बारे में कहा होगा.' अखिनीओव ने मन ही मन सोचा, 'मेरे बारे में ही. शैतान ही लानत उस पंर. और वह उस पर विश्वास करके हंस रही है. हे ईश्वर! नहीं, मामला ऐसे नहीं रहने दिया जा सकता. नहीं, मुझे कुछ ऐसा करना होगा कि कोई भी उसका यकीन न करे. मैं इन सबसे बात करूंगा और अंत में वह केवल एक मूर्ख गप्पी साबित होगा.'

अखिनीओव ने अपना सिर खुजलाया और उलझन में पैडोकोई के पास पहुंचा.

''मैं थोड़ी देर पहले खाने का बंदोबस्त देखने के लिए रसोईघर में गया था,'' उसने फ्रांसीसी से कहा, ''मुझे मालूम है कि आपको मछली भाती है और मेरे पास बड़ी लंबी मछली थी. दो गज़ लंबी. आह...हां...हां... सुनिये, मैं भूल ही गया. मछली के बारे में किचन में गया. मैं खाने पर एक निगाह डाल लेना चाहता था. मैंने बड़ी मछली पर दृष्टिपात किया और स्वाद के लिए एक चटखारा भरा. वह बहुत मसालेदार थी. और तभी मूर्ख वेनकिन अंदर आया और बोला– हा, हा, हा. और कहा– 'अडहड.... तुम मारफा का चुंबन ले रहे थे.' ज़रा सोचो, वह बावर्चिन! उस बुद्धू ने क्या किस्सा गढ़ा है! वह औरत बदशक्ल है बिल्कुल बंदरिया जैसे लगती है और वह कहता है कि हम एक दूसरे का चुंबन ले रहे थे. क्या बेहूदा आदमी है.''

''कौन बेहूदा आदमी है?'' तरनतोलोव ने पास आते ही प्रश्न किया.

'मारफा और बड़ी मछली की कहानी दोहरा दी गई.

''मुझे इसी बात पर हंसी आ रही है. क्या ऊल-जलूल इनसान है वह. मेरी राय में मारफा को चूमने के बजाय एक कुत्ते को चूमा जा सकता है.'' अखिनीओव ने कहा और घूमकर देखा तो माज़दा उसे नज़र आया.

''हम वेनकिन के बारे में बात कर रहे थे.'' उसने उसे बताया, ''क्या अजीब आदमी है. वह किचन में आया और मुझे मारफा के पास खड़ा देखा और तुरंत उसने किस्से गढ़ने शुरू कर दिये. क्या भला? तुम एक दूसरे को चूम रहे थे? उसने पी रखी थी इसलिए सपने देख रहा होगा!'' और मैंने कहा, ''मैं मारफा को चूमने के बजाए एक बत्तख को चूमना पसंद करूंगा. अरे मूर्ख, मेरी बीवी हैं, मैंने कहा. उसने मुझे हास्यास्पद बना दिया है.''

''आपको किसने हास्यास्पद बना दिया है.'' धर्म-अध्यापक ने अखिनीओव को संबोधित करते हुए पूछा.

''वेनकिन ने. मैं किचन में खड़ा था और बड़ी मछली को निहार रहा था----'' और फिर बाकी किस्सा कह सुनाया. लगभग आधे घंटे में घर के सब मेहमानों को वेनकिन और बड़ी मछली का किस्सा मालूम हो गया.

''अब वह बताता रहे,'' अखिनीओव ने हाथ मलते हुए दिल ही दिल में कहा, ''उसे कहने दो. वह उन्हें बताना शुरू करेगा और वे उसे टोकेंगे,'' बकबक न करो, हमें सब जानकारी है.''

और अखिनीओव को इस कदर तसल्ली महसूस हुई कि उसने खुशी मनाने के लिए चार जाम ब्रांडी के अधिक पिये. अपनी बेटी को उसने कमरे तक पहुंचाकर वह अपने कमरे में गया और घोड़े बेचकर सोया रहा. अगले दिन बड़ी मछली की कहानी तक उसे याद न रही. लेकिन अफ़सोस. इनसान क्या सोचता है और होता क्या है. बुरी जबान ने दुष्टता की और अखिनीओव की चालाकी उसके कोई काम न आयी.''

एक सप्ताह बाद, बुधवार के दिन, तीसरे पीरियड के बाद अखिनीओव अध्यापक-कक्ष में खड़ा अपने विद्यार्थी विशेकिन की दुष्ट प्रवृत्तियों के बारे में बहस कर रहा था कि डायरेक्टर साहब आये और उसे इशारे से एक ओर बुलाया.

''सुनो सिर्जो,'' डायरेक्टर ने कहा, ''माफ़ करना यह मेरा मामला नहीं लेकिन फिर भी मैं एक बात साफ़ कर देना चाहता हूं. यह मेरा कर्त्तव्य है समझे? अफवाहों का बाजार गर्म है कि अपनी बावर्चिन से तुम्हारे घनिष्ट संबंध है. यह मेरा निजी मामला नहीं है किंतु... तुम उससे घनिष्ट संबंध रखो, उसे चूमो चाटो... जो चाहे करो लेकिन यह न भूलो कि तुम अध्यापक हो. यह सब इतना खुल्लम-खुल्ला न करो. मैं तुमसे भीख मांगता हूं.''

अखिनीओव भौंचक्का और हतप्रभ खड़ा रह गया. उसे लगा कि उसें भिड़ों के छत्ते के काट लिया है. वह घर चला आया.

''तुम कुछ खा क्यों नहीं रहे हो?'' खाने पर उसकी पत्नी ने पूछा, ''क्या सोच रहे हो?, कामदेव के बारे में सोच रहे हो? तुम मारफा के लिए लड़फ रहे हो. मुझे सब कुछ पहले से ही पता है. अरे क्रूर, कृपालु लोगों ने मेरी आंखें खोल दी हैं.'' और उसने अपने पति के गालों पर एक थप्पड़ रसीद कर दिया. वह टेबल से उठ खड़ा हुआ और हैट तथा कोट पहने बिना, लड़खड़ाता हुआ वेकिन के घर की ओर चला. वह घर पर ही मिला.

''दुष्ट! पाज़ी!'' उसने वेकिन से कहा, ''तुमने सारी दुनिया के सामने मुझ पर कीचड़ फेंका है. तुमने क्यों मुझे झूठा बदनाम किया है.''

''कैसे? कैसी बदनाम? तुम किस बारे में बात कर रहे हो?''

''किसने सबको कहा कि मैं मारफा का चुंबन ले रहा था! तुमने ही, क्यों? तुमने ही, ओ हत्यारे!''

बेनिका ने आंखें झपकायीं. उसके चेहरे के सब तुरंत कांपने लगे उसने अपनी निगाहें पवित्र प्रतिमा की और कीं और सहसा चीख उठा, ''अगर मैंने किसी से भी एक शब्द आपके बारे में कहा हो तो ईश्वर मुझे सज़ा दे. मैं अंधा हो जाऊं, मर जाऊं, न मेरा घर रहे न बाहर.''

वेकिन की ईमानदारी पर शक नहीं किया जा सकता था. ज़ाहिर था कि यह वह नहीं था जिसने गप्प उड़ायी थी.

''लेकिन यह कौन है? कौन?'' उसने मन ही मन सब परिचतों का ध्यान करते हुए अपने आप से सवाल किया और अपनी छाती पीटते हुए बुदबुदाया, ''वह है कौन?'' □

अनुवाद : राजेन्द्र बोहरा

चलते-चलते

कुछ जुआरियों के बीच जब एक जुआरी ताश की पत्तियां बदलता पकड़ा गया तो उसके उत्तेजित साथियों ने उसकी अच्छी तरह मरम्मद कर डाली और क्रोध में आकर उसे छत से नीचे फेंक दिया. काफी चोट आयी. स्वस्थ होने पर उसने अपने एक मित्र से पूछा – ''जुए में मेरे साथ जो कुछ भी हुआ, वह तुम्हारे साथ होता तो तुम क्या करते?''

''मेरे साथ ऐसा हरगिज नहीं होता.'' मित्र ने कहा, ''क्योंकि मैं हमेशा नीचले फ्लोर पर ही जुआ खेलने बैठता हूं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी की समस्या

शरद जोशी

वे लोग जो टी.वी. देखते हैं, अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री वास्तविकता से सीधा साक्षात्कार करते हैं. वे स्वयं उस जगह जाते हैं और पूछ कर, बातचीत कर पता लगाते हैं कि सचाई क्या है. यह उनकी काम करने की शैली है. जैसे कोई मुख्यमंत्री उनसे कहे कि साहब हमारे राज्य में गरीबी है तो प्रधानमंत्री उसकी बात पर यों ही विश्वास नहीं कर लेते. वे वहां जाते हैं, टेलीविजनवालों को साथ लेकर जाते हैं और गरीबों से पूछते हैं :

''सुना आपके गांव में गरीबी है?''

''जी साब.''

''कितने गरीब हैं गांव में?''

''जी सभी गरीब हैं.''

''आपमें से ज्यादा गरीब कितने हैं?''

गांव वाले एक दूसरे का मुंह देखने लगते हैं.

''जी सभी ज्यादा गरीब हैं.'' एक सोशल वर्कर कहता है.

''उन्हें जवाब देने दीजिये, आप बीच में मत बोलिये.''

''इस गांव की पाप्यूलेशन क्या है? कितने लोग रहते हैं इस गांव में?'' प्रधानमंत्री कलेक्टर से पूछते हैं.

''जी कोई सत्तर फेमिलीज हैं.'' कलक्टर कहता है.

''आय वांट एक्जेक्ट फिगर्स.''

''सिक्स्टी नाइन प्वाइंट फाइव.''

''हूं!... ये पाइंट फाइव कैसे?''

''जी एक फेमिली में वाइफ नहीं है, हस्बंड शहर चला गया है.''

''हूं.''

तो इस तरह हमारे प्रधानमंत्री स्वयं वहां जाते हैं और वास्तविकता से साक्षात्कार करते हैं. अर्थात बातचीत से सचाई का पता लगाते हैं.

जैसे एक गावं में पानी की कमी है. प्रधानमंत्री स्वयं वहां जायेंगे और सचाई का पता लगायेंगे. वार्तालाप कुछ इस प्रकार का होगा.

''आप लोग पानी पीते हैं?''

''जी हां हुजूर, पीते हैं.''

''इस गांव में कितने लोग पानी पीते हैं?''

''जी सब पीते हैं प्यास लगती है हुजूर तो पीना पड़ता है.''

''कहां से मिलता है पानी,लाते कहां से हैं?''

''नदी से लाते हैं?''

''नल नहीं हैं?''

''जी नहीं हैं?''

''हूं. नदी यहां से कितनी दूर है?''

''थोड़ी दूर है.''

''कैसे लाते हैं पानी?''

''मटकी में भरकर लाते हैं.''

''मटकी घर से ले जाते हैं या नदी पर मिल जाती है.''

''जी घर से लेकर जाना पड़ता है.''

''आय सी. नदी पर मटकियों का कोई इंतजाम नहीं करता.'' तो आप जब मटकी लेकर नदी पर जाते हैं तब नदी में पानी मिल जाता है? या मुश्किल पड़ती है?''

''पहले मिल जाता था, आजकल मुश्किल पड़ती है?''

''क्या मुश्किल पड़ती है? एक नदी में कितनी मटकी पानी होता है?''

''काफी मटकी होता है?''

''आय वांट टू सी एक मटकी. एक्ज़ेक्ट क्या साइज होती है उसकी?'' प्रधानमंत्री ने कहा.

फौरन एक गरीब के घर से एक मटकी लाकर प्रधानमंत्री को दिखाई गई.

''ये मिट्टी से बनती है?''

''जी.''

''हम मिट्टी इंपोर्ट करते हैं या यहीं की है?''

''जी लोकल मिट्टी है.''

''गुड.''

''इस एक मटकी में कितने बकेट पानी आ जाता है? कितनी बाल्टी पानी आ जाता है?''

''कोई डेढ़ बाल्टी आता है.''

''आप बड़ी मटकी लेकर क्यों नहीं जाते? ज्यादा पानी आ सकता है. या सभी मटकियां एक साइज की होती हैं?''

''जी बड़ी भी होती हैं मगर उठाने में भारी पड़ती हैं.''

''एक बार में कितनी मटकी उठाते हैं?''

''जी एक उठाते हैं?''

''पानी से भरी हुई या खाली?''

''पानी से भरी हुई.''

''आप खुद उठाते या दूसरे से उठवाते हैं?''

''जी खुद उठाते हैं.''

''कितने आदमी लगे हैं इस काम पर?''

''जी सभी लगे रहते हैं.''

''नदी से चौबीसों घंटे पानी मिलता है या उसका फिक्स टाइम है. इतनी बजे से इतनी बजे तक?''

''जब मिलता है तब चौबीसों घंटे मिलता है.''

''आजकल कितने घंटे मिलता है?''

''आजकल नदी सूख गयी है.''

''जब सूख जाती है तब कितने घंटे मिलता है?''

''तब नहीं मिलता.''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक-दो घंटे भी नहीं?"

"नहीं."

प्रधानमंत्री का चेहरा गंभीर हो जाता है. वे सोचने लगते हैं फिर कलेक्टर से पूछते हैं, "ये नदी सूख क्यों जाती है?"

"ये सर गर्मी में एटमोस्फेरिक टेंपरेचर बढ़ जाता है उससे सूख जाती है." आई.ए.एस. कलेक्टर जवाब देता है.

"कांट वी हेव सम शेड ऑर समथिंग जो नदी के ऊपर लगा दें जिससे छाया रहे. पानी पर धूप न पड़े ऐसा कुछ हो जाये."

"नो सर इट इज नाट पासीबल."

"क्यों? वी केन टाक टू वर्ल्ड बैंक अबाउट इट. सारी नदियों पर शेड लगा दिये जायें. खास कर उन नदियों पर जो गांवों के पास में बहती हैं. वी केन सर्च आउट दोज प्राब्लम एरिआज"

"सर उसमें प्रेक्टीकल डिफीकल्टीज हैं."

"क्या डिफीकल्टीज हैं?"

"क्या है सर एक तो नदी का पाट बहुत चौड़ा होता है उसको कवर करना बहुत मुश्किल है. दूसरे नदी के आसपास की सॉइल कंडीशन, रेती और कीचड़ के कारण ऐसी होती है कि उसमें पिलर्स खड़े करना बड़ी डिफीकल्ट है."

"आय सी."

"तब दूसरे अफसर ने जो इस अफसर के प्रधानमंत्री से ज्यादा बात कर लेने की वजह से परेशान हो गया था और स्पष्ट करते हुए कहा, "दूसरी प्राब्लम यह है सर कि अगर हम नदी को कवर कर देंगे तो बरसात में जो पानी नदी में गिरता है वह नहीं गिर सकेगा."

प्रधानमंत्री ने गर्दन हिलायी. वे प्राब्लम को समझ गये थे. सामने खड़े प्यासे गांव वाले उनमें क्या बातें हो रही हैं यह तो समझ नहीं पा रहे थे मगर उन्हें इतना समझ आ रहा था कि प्रधानमंत्री उनकी पानी की समस्या के हल को लेकर बहुत चिंतित हैं और वे अफसरों से इस बारे में बात कर रहे हैं.

प्रधानमंत्री ने फिर गांव के लोगों से पूछा, "जब नदी से पानी नहीं मिलता तो आप वहां मटकी लेकर क्यों जाते हैं?"

"हम कुएं पर जाते हैं साब, नदी पर नहीं जाते?"

"कुएं पर पानी मिल जाता है, नदी पर नहीं होता."

"जी."

"एक कुएं में कितना पानी मिल जाता है? पूरे गांव को मिल जाता है?"

"काफी मिल जाता है?" एक ने कहा.

"जी थोड़ा बहुत मिल जाता है?" दूसरे ने कहा.

"आप लोगों को कौन-सा पानी अच्छा लगता है. नदी का पानी अच्छा लगता है या कुएं का?" प्रधानमंत्री ने पूछा.

"जी जहां से मिल जाये वहीं का अच्छा लगता है."

"नदी के पानी में थोड़ा कचड़ा होता है साहब."

"फिर आप क्या करते हैं? नदी को छान लेते हैं?"

"पूरी नदी तो नहीं छानते साब, हम जो पानी लेते हैं वो छान लेते हैं."

"बाकी का छोड़ देते हैं."

"जी साहब."

"और नदी से क्या क्या मिलता है पानी के अलावा?" सब एक दूसरे को देखने लगे. किसी को जवाब नहीं सूझता.

"नदी से पानी मिलता है पर इसके अलावा और क्या-क्या मिलता है?" प्रधानमंत्री ने अपनी बात को दोहराते हुए पूछा, "पुल मिलता है नदी पर?"

"जी नहीं मिलता."

"बांध मिलता है नदी पर?"

"जी कोई बांध नहीं है."

"इट इज सरप्राइजिंग. आफ्टर फोर्टी ईयर्स आफ फ्रीडम नदी पर एक बांध नहीं है." प्रधानमंत्री ने अफसरों से कहा.

अफसरों ने शरम से सिर झुका लिया. फिर एक अफसर ने हिम्मत कर के कहा, "सर सिक्सथ प्लान में नदी पर बांध बनाने का प्रपोजल था."

"फिर क्या हुआ?"

"सर्वे करने का पता चला कि नदी में पानी नहीं है इसलिए बांध बनाना फिजूल होगा."

"हम इतना भी पानी अरेंज नहीं कर सकते कि एक बांध बनाया जा सके." प्रधानमंत्री ने कहा.

अफसरों ने शरम से फिर सिर झुका लिया. प्रधान मंत्री ने मुख्यमंत्री की ओर देखा जो साथ ही पीछे पीछे चल रहे थे. मुख्यमंत्री ने अपनी टोपी ठीक की, थोड़ा खांसे और फिर बोले, "मैंने आपसे दिल्ली में भी निवेदन किया था श्रीमान कि नदी के पानी को लेकर अंतर्राज्यीय डिस्प्यूट है. 1967 में इस समस्या पर एक हाईपावर कमीशन बैठा था जिसकी सिफारिशें अमान्य कर दी गयीं. मैंने कांग्रेस अधिवेशन में भी यह सवाल उठाया था. श्रीमान..."

"कमीशन इस नदी पर बांध बनाने के लिए था ?" प्रधानमंत्री ने पूछा.

"जी नहीं वह दूसरी नदी पर था. " मुख्यमंत्री ने कहा.

"मैं आपसे इस नदी का पूछा रहा हूं?"

"प्लानिंग कमीशन कहता है जिन नदियों में पूरे वर्ष पानी नहीं रहता वहां हम बांध बनाने को प्रिआरिटी नहीं दे सकते क्योंकि उससे बिजली नहीं बनेगी."

प्रधानमंत्री कुछ सोचने लगे. मामला उलझा हुआ है. कंप्यूटर को फीड करना पड़ेगा. फिर वे लोगों की तरफ घूमे.

"कितने कुएं है आपके गांव में?"

"जी एक भी नहीं है."

"फिर आप मटकी लेकर कहां जाते है?"

"पासवाले गांव में?"

"वहां कुआं है?"

"जी है."

"पानी मिल जाता है?"

"मिल जाता है मगर भीड़ बहुत पड़ती है."

"वो गांव कितनी दूर है?"

"दो मील दूर है.'

"लौटने पर भी दो मील पड़ता है."

"जी उतना ही पड़ता है."

"जाने के लिए कोई साधन है, बस, टैक्सी?"

"जी नहीं कोई साधन नहीं, पैदल जाना पड़ता है."

"प्रधानमंत्री के चेहरे पर पीड़ा की रेखाएं उभर आयीं. उन्होंने अफसरों से पूछा कि क्या इन दोनों के बीच हम बस सर्विस नहीं प्रोवाइड कर सकते पानी लाने के लिए.

उस दिन एक विराट जनसभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, "हमने देखा हम देखेंगे कि आपके गावों में पानी की समस्या है. लोगों को, खासकर महिलाओं को दूसरे गावों से पानी लाना पड़ता है. मटकी में भरकर. हमने देखा कि सिर पर उठाकर लाना पड़ता है. हम चाहते हैं कि हमारे देश में हर गांव के पास एक नदी हो. खासकर उन गांवों के पास जहां पानी नहीं है. हम देखेंगे कि आप लोगों को मटकी नहीं उठाना पड़े. या तो गांव नदी के पास ले जाये जायें या वे नदियां गांव के पास लायी जायें. जो भी जरूरी होगा हम करेंगे. सरकार करेगी. और भी समस्या जैसे बस चलाने की या बांध की सब हम पूरी करेंगे. वो बड़ी जल्दी करना है. हमें बताया गया यहां पर कि जो मटकियां यहां पर आप लोग उठाते हैं वे मिट्टी की बनी होती हैं. इस बारे में हमें कुछ करना है. देश में पानी ही पानी कर देना है. वो चाहे नदी का हो या बरसात का या समुद्र का. हम चाहते हैं और हम कोशिश करेंगे कि आपके यहां बरसात जल्दी आये या नदी में पानी जल्दी आये. या जैसा भी हो सके. हम बैंकों से बात करेंगे कि मटकियों के सवाल पर जितना कर सकते हैं करें. हमें देश को आगे ले जाना है."

इस बात पर एक युवक जो अगले चुनाव में कांग्रेस के टिकिट का उम्मीदवार था जोर से चिल्लाया, "राजीव गांधी की..."

इस पर सबने 'जय' कहा और प्रधानमंत्री का कारवां दूसरे गांव की समस्या समझने के लिए आगे बढ़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक लोकप्रिय हुआ है व्यंग्य

पाठक-वर्ग एवं लेखक वर्ग दोनों रूपों में व्यंग्य एक लोकप्रिय विधा बनता जा रहा है. अनेक कहानीकार इस क्षेत्र में प्रयोग कर रहे हैं. वस्तुतः भारत की वर्तमान परिस्थितियां इतनी विसंगतिपूर्ण हैं कि व्यंग्य किये बिना लगता है जैसे अभिव्यक्ति को पूरी जमीन नहीं मिली है. चारों ओर प्रत्येक क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन इतनी असंगत घटनाएं घटती हैं कि अभिधा में कही गयी बात उस पर अनायास प्रहार कर डालती है. नेता, मंत्रियों और अफसरों के भ्रष्टाचार पर किये गये व्यंग्य इतने जग जाहिर हो गये हैं कि अभिधात्मक अर्थ देते हैं. व्यंग्य की लोकप्रियता एवं निरंतर बढ़ती संभावनाओं के कारण युवा एवं कुछ प्रौढ़ रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग व्यंग्य लेखन की ओर आकर्षित हो रहा है. अनेक युवा रचनाकार हास्य-व्यंग्य की दीवार पकड़कर इस मैदान में उतर आये हैं. सन् 87 में नये व्यंग्य रचनाकारों के अधिक संकलन नहीं आये हैं परंतु, अनेक संपादित संकलनों एवं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक नये नाम हास्य-व्यंग्य के साथ जुड़े हैं. इस वर्ष अमृतराय, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई, रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, के.पी. सक्सेना, शंकर पुणताबेकर, प्रेम जनमेजय, लतीफ घोंघी, विनोदशंकर शुक्ल, लक्ष्मीकांत वैष्णव, गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यबाला, यज्ञ शर्मा, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, कुंदनसिंह परिहार, प्रदीप पंत, शेरजंग गर्ग, बालेंदुशेखर तिवारी, हरीश नवल आदि जैसे व्यंग्य क्षेत्र में परिचित व्यंग्यकारों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से अपनी व्यंग्य क्षमता का परिचय तो दिया ही, इनके अतिरिक्त विश्वमोहन माथुर, शिवानंद कामड़े, अकिंचन, ज्ञान प्रकाश विवेक, अशोक भाटिया, डा. पुष्प, चंद्रभानु आर्य, मधुसूदन पाटिल, हरिश्चंद्र वर्मा, रमाशंकर श्रीवास्तव, रमेश गुप्त आदि अनेक नामों ने व्यंग्य क्षेत्र में स्वयं को परिचित कराया.

व्यंग्यकारों के नामों की इतनी बड़ी सूची आतंकित करने के लिए नहीं दी जा रही है और न ही इतने नामों की राशि अच्छे व्यंग्य की गारंटी है. यह तो समय और पाठक तय करेंगे अच्छा व्यंग्य और व्यंग्यकार कौन है. समय स्वयं तय करके एक द्वयी या त्रयी का निर्माण करेगा. परंतु हास्य व्यंग्य लेखन क्षेत्र में इतने नामों से साक्षात्कार होना इस बात का सूचक तो है कि व्यंग्य एक लोकप्रिय और आकर्षक विधा बनता जा रहा है. इसका कारण है कि हास्य ने व्यंग्य के साथ जुड़कर अनेक रचनाकारों के लिए व्यंग्य का मार्ग आसान कर दिया है. घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंड़ा हास्य उत्पन्न करनेवाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते-घूमते हैं.

व्यंग्य को गंभीर कर्म मानकर सृजन करनेवाले युवा व्यंग्यकारों की खोज में भारतीय ज्ञानपीठ ने आलोचना वर्ष में एक सार्थक कदम उठाया. कविता कहानी के क्षेत्र में युवा प्रतिभाओं की खोज के पश्चात् 1987 में व्यंग्य के क्षेत्र में युवा व्यंग्यकार की प्रतिभा खोजने के लिए भारतीय ज्ञानपीठ ने इस बार व्यंग्य प्रतियोगिता का आयोजन किया. इस प्रतियोगिता में वही व्यंग्यकार भाग ले सकता था जिसका अब तक कोई व्यंग्य संकलन प्रकाशित न हुआ हो. नये व्यंग्यकारों द्वारा प्रतियोगिता के लिए प्रेषित प्रविष्टियों की उत्साहवर्धक संख्या व्यंग्य लेखन के प्रति उनके आकर्षण को स्पष्ट करती है. प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी और श्रीलाल शुक्ल तथा अनुभवी साहित्यकार बालस्वरूप राही एवं बिशन टंडन की निर्णायकों के रूप में उपस्थिति इस प्रतियोगिता की गरिमा एवं गंभीरता को रेखांकित करती है. गंभीर व्यंग्य लेखन की दिशा में यह एक सही और अनुकरणीय कदम है.

हरीश नवल के व्यंग्य कई बर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहे हैं. उनका नाम व्यंग्य के पाठकों के लिए नया नहीं है. परंतु भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित व्यंग्य प्रतियोगिता में पुरस्कृत उनकी व्यंग्य कृति **'बागपत के खरबूजे'** ने उन्हें ताजा रूप में ही प्रस्तुत किया है. पुस्तक रूप में किसी रचनाकार की रचनाओं को समग्र रूप में पढ़ना एक सुखद एवं प्रभावी अनुभव होता है. ऐसा ही ताजा अनुभव **'बागपत के खरबूजे'** को पढ़कर होता है. हरीश नवल की व्यंग्य क्षमता एवं विषयों की सही पकड़ पाठक को विस्मित कर देती है. उनका विषय क्षेत्र उनके आसपास का है, उसके लिए उन्हें कल्पना के काल्पनिक घोड़े दौड़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ी है. अगर वह **'बागपत के खरबूजे'** नामक रचना में या 'भाजपा, जपा और जजपा, एक तुलनात्मक अध्ययन में' कुंभन दास और चतुर्भुजदास को लाते भी हैं तो भारतीय राजनीति की सामयिक विसंगतियों से पाठकों का साक्षात्कार कराने के माध्यम रूप में ही.

संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना **'विक्रमार्क बुढ़िया और सराय रोहिल्ला'** में है. इसमें हरीश नवल ने भारतीय मध्यमवर्गीय समाज की पारिवारिक विसंगतियों को उद्घाटित किया है. और उन पर सार्थक प्रहार भी किया है. ऐसे विषयों पर अन्य व्यंग्यकारों का ध्यान कम जाता है. अधिकांश नये व्यंग्यकार भारतीय राजनीति के जाने-पहचाने चेहरों पर व्यंग्य करके रचना-कर्म की इति मान लेते हैं. हरीश नवल ने इस रचना में विक्रमार्क शैली में नया मोड़ देकर विषय की नवीनता प्रस्तुत की है. प्रतियोगिता के निर्णायकों के स्वर में हम भी "...श्री हरीश नवल से हास्य व्यंग्य की विधा में महत्वपूर्ण योगदान की अपेक्षा कर सकते हैं."

सन् 1987 में रवींद्रनाथ त्यागी की प्रतिनिधि रचनाओं का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुआ है. उनकी हास्य-व्यंग्य की प्रतिनिधि रचनाएं तथा हास्य व्यंग्य के संबंध में साक्षात्कार एवं निबंध रूप में उनके विचार भी इसमें संकलित हैं. डॉ. कमलकिशोर गोयनका द्वारा किया गया यह एक सही और प्रशंसनीय कार्य है. रवींद्रनाथ त्यागी की रचनाओं को एक साथ पढ़ना सुखद अनुभव है. इस पुस्तक के माध्यम से उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है.

रवींद्रनाथ त्यागी भद्र हास्य के सुघड़ रचनाकार हैं. उनकी रचनाओं में हास्य मुक्त एवं निश्छल भाव से अभिव्यक्त होता है. रवींद्रनाथ त्यागी का विस्तृत अध्ययन क्षेत्र अपने साथ पाठकों को बड़े मनोरंजक ढंग से बहा ले जाने की क्षमता रखता है. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भांति त्यागीजी भी अपनी रचनाओं में अतीत और वर्तमान में डूबते उतरते पाठकों के समक्ष मजेदार असंगतियां उपस्थित करते हैं. रवींद्रनाथ त्यागी की हास्य व्यंग्यात्मक प्रतिनिधि रचनाओं को पढ़कर पाठक अनेक सुखद और मजेदार स्थितियों से गुजरने का समग्र सुख उठा सकता है.

मेरे उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रवींद्रनाथ त्यागी मात्र भद्र हास्य के रचनाकार हैं, उनमें व्यंग्य की दृष्टि भी विद्यमान हैं. विसंगतियों को परखने, उसे चित्रित करने की क्षमता उनमें है परंतु प्रहार करते समय वह दयालु हो जाते हैं. उनके प्रहार में भी लालित्य है. इसका कारण उन्होंने कमलकिशोर गोयनका को दिये गये एक साक्षात्कार में स्पष्ट कर दिया है. रवींद्रनाथ त्यागी स्वीकार करते हैं कि उनकी प्रवृत्ति साहित्य और लालित्य की ओर है तथा उनका उद्देश्य मनोरंजन तक सीमित है. इसी साक्षात्कार में उन्होंने अफसोस जाहिर किया है कि अब परसाई, शरद जोशी या त्यागी जैसा कोई हास्य व्यंग्य लेखक सामने नहीं आ रहा है. ऐसी शिकायतें पुरानी पीढ़ी को अकसर रहती हैं. उन्हें लगता है कि उनके जमाने का मैट्रिक आज के एम.ए. से अधिक ज्ञानी था. खैर यह तो समय ही तय करेगा. इसमें निराशा से दुबले होने की आवश्यकता नहीं है. साहित्य का मार्ग बहुत लंबा मार्ग है.

डॉ. कमल किशोर गोयनका का यह प्रयास प्रशंसनीय है, ऐसे प्रयास होने चाहिए इससे किसी रचनाकार को समग्र पढ़ने का, उसे जानने का अवसर मिलता है. परंतु इस प्रकार की प्रतिनिधि रचनाएं या ग्रंथावली केवल पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा सकती हैं. ऐसी पुस्तकों का मूल्य इन्हें आम पाठक तक पहुंचने नहीं देता.

शरद जोशी इस समय निर्विवाद रूप से सर्वाधिक पढ़े और सुने जाने वाले रचनाकार हैं. उनकी रचनाएं जहां पाठकों को सामाजिक विसंगतियों से अवगत कराती हैं. वहां उन्हें आनंददित भी करती हैं. सामयिक विषयों पर, विशेषकर राजनीति पर उनकी गहरी पैठ है. राजनीतिक विसंगतियों के चित्रण एवं उन पर प्रहार द्वारा वह पाठक को शिक्षित भी करते हैं. वह किसी पार्टी या व्यक्ति से बंधे हुए दृष्टिगत नहीं होते हैं और न ही आतंकित दिखाई देते हैं, इसी कारण उनकी कलम वाद या दल का बंधन नहीं मानती है. वह अपने राजनीतिक व्यंग्यों पर कोई सेंसर नहीं लगाते हैं. **'नवभारत टाइम्स'** में प्रकाशित होने वाला स्तंभ इस बात का साक्षी है कि शरद जोशी ने वर्ष में घटनेवाली शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, क्रीड़ा संबंधी और फिल्मी विसंगतियों को गहरे पकड़ा है.

आलोच्य वर्ष में उनका व्यंग्य संकलन **'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे'** नाम से प्रकाशित हुआ है. यह पुस्तक नयी हो सकती है परंतु इसकी अधिकांश रचनाएं पाठकों ने शरद जोशी के अन्य व्यंग्य संकलनों में पढ़ी होंगी. इस संकलन में शरद जोशी की **'वर्जीनिया वुल्फ से सब डरते हैं'** तथा **'मुद्रिका रहस्य'** जैसी सदाबहार रचनाएं हैं जो दोबारा या तिबारा पढ़ने पर भी ताजी लगती हैं.

श्रीलाल शुक्ल ने **'रागदरबारी'** के माध्यम से अपनी व्यंग्य प्रतिभा से पाठकों को इतना आतंकित कर दिया है कि उनके व्यंग्य संकलन **'अंगद का पांव'**, **'यहां से वहां'** का महत्वपू उल्लेख नहीं हो पाया जबकि इन संकलनों में श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य प्रतिभा में कहीं कोई कभी दृष्टिगत नहीं होती है. **'उमरावनगर में कुछ दिन'** श्रीलाल शुक्ल की नयी व्यंग्य पुस्तक है. यह व्यंग्य पुस्तक पाठकों को **'रागदरबारी'** के आतंक से मुक्त कराने की क्षमता रखती है और श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य क्षेत्र में एक नये आयाम को प्रस्तुत करती है.

'आह ,ग्राम्य जीवन भी क्या है!' की सौंदर्यपूर्ण कलात्मक उक्ति की 'हाय ग्राम्य जीवन!' के यथार्थवादी धरातल की विसंगतिपूर्ण परिस्थितियों से श्रीलाल शुक्ल पुनः साक्षात्कार कराते हैं. ग्रामीण विकास के छद्म में होने वाले नेताई-नौकरशाही के

> सन् १९८७ में व्यंग्य रचनाओं और रचनाकारों ने अपने पाठकों को निराश नहीं किया है. व्यंग्य और अधिक लोकप्रिय हुआ है. परंतु व्यंग्य पर गंभीर चर्चाओं का लगभग अभाव ही रहा है.

व्यक्तिगत विकास की अद्भुत लीला का चित्रण **'उमराव नगर में कुछ दिन'** की विशेषता है. गांव का शोषण कर शहरी तोंदें फूल रही हैं. अन्याय, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता और शोषण के जहर में डूबा हुआ बाण संपूर्ण ग्रामीण वातावरण की निर्मम हत्या कर रहा है. **'कुंती देवी का झोला'** इस परिवेश के दूसरे पक्ष का करुण चित्र सामने लाता है. एक दूसरे के पर्यायवाची-डाकू और पुलिस की मेहरबानियों को गांव पर लदता हुआ इस रचना में देखा जाता है. एक क्रोध जाग्रत होता है मुट्ठियां अंगारे से सब कुछ गलत को नष्ट कर देना चाहती है. परंतु विवशताहै और इसी विवशता से फूटता है करुण व्यंग्य.

श्रीलाल शुक्ल की भाषा व्यंग्य की सही भाषा है, उसमें विसंगतियों को पकड़ने की अद्भुत क्षमता है. उन्होंने भाषा को व्यंग्य का संस्कार दिया है. उनकी व्यंग्यात्मक प्रतिभा का एक और प्रभावी परिचय **'उमराव नगर में कुछ दिन'** में मिलता है, अपनी सीमाओं में यदि कहूं कि यह वर्ष की उत्कृष्ट क्लिक है तो अत्युक्ति न होगी.

इसी पीढ़ी के अग्रज व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई **'गंगा'** में प्रकाशित अपने नियमित स्तंभ के माध्यम से अपनी रचना शक्ति से पाठकों को निरंतर प्रभावित करते रहते हैं. उनकी कलम से निकलने वाला शब्द व्यंग्य को पूर्णता में ध्वनित करने की क्षमता रखता है. **'गंगा'** में अपने स्तंभ के माध्यम से चाहे वह अतीत में कितना उतर जाते हैं परंतु, अपने वर्तमान की विसंगतियों, समस्याओं पर दिशायुक्त सार्थक प्रहार करने से नहीं चूकते हैं. अतीत को वर्तमान से जोड़ने की प्रवीणता को सीखने के लिए नये रचनाकारों को यह स्तंभ अवश्य पढ़ना चाहिए.

'अफसर की मौत' के माध्यम से हिंदी हास्य व्यंग्य क्षेत्र में एक और सशक्त रचनाकार पाठकों के समक्ष आता है. गोपाल चतुर्वेदी का नाम नया नहीं है, पिछले कुछ बर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके हास्य-व्यंग्य प्रकाशित होते रहे हैं. परंतु **'अफसर की मौत'** के रूप में उनका संभवतः पहला व्यंग्य संकलन 1987 में प्रकाशित हुआ है. गोपाल चतुर्वेदी हास्य-व्यंग्यात्मक परिस्थितियों को कथा के माध्यम से व्यक्त करने में अधिक रुचि लेते हैं. उनकी रचनाओं का कथा प्रवाह, उनकी रचनाओं को पठनीय बनाता है. इन रचनाओं का अनुभव जगत रचनाकार के आसपास का ही है.

रवींद्रनाथ त्यागी ने नौकरशाही और लालफीताशाही की अनेक विसंगतियों को सशक्त रूप में प्रकट किया है. गोपाल चतुर्वेदी की कलम में भी वही ताकत है. **'अफसर की मौत'**, **'कागज और चूहा'**, **'सरकार में हिंदी भाषा अधिनियम 1963'** आदि ऐसी ही रचनाएं हैं. इसके अतिरिक्त समाज राजनीति, शिक्षा, खेल आदि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर भी उन्होंने प्रहार किये हैं. उनकी प्रहार शक्ति प्रबल है. "प्रजातंत्र और **तानाशाही का यही मूल अंतर है. एक में विरोध और विद्रोह के दौरान चप्पल चलती है, दूसरे में गोली जहां कलम के चलने की आजादी है, वहां चप्पल की नौबत कम ही आती है, लोग एक दूसरे से नाराज हों तो एक दूसरे के खिलाफ संपादक को पत्र लिखते हैं. संसद या विधान सभा में सवाल उठाते हैं. बहुत तैश आया या पत्र देर से छपा तो चप्पल दिखायी. जहां न चप्पल चलती है न कलम, वहां सिर्फ बंदूक चलती है.**

इन दिनों हास्य व्यंग्य के क्षेत्र में जितनी तीव्रता और भाषा के साथ लतीफ घोंघी लिख रहे हैं, देखकर आश्चर्य होता है. इस वर्ष भी उनके नाम से तीन व्यंग्य पुस्तकें आयी हैं **'सड़े हुए दांत'** तथा **'क्षमा करना हम दुखी हैं'** में लतीफ घोंघी ने विभिन्न विषयों में व्याप्त विसंगतियों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है. लतीफ घोंघी अधिकांशतः साधारण-सी लगनेवाली घटनाओं को उठाते हैं परंतु उसमें व्याप्त विसंगतियों का चित्रण इतना विशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं कि उनकी व्यंग्य क्षमता से प्रभावित हुए बिना रहना कठिन है, कुछ रचनाएं कमजोर भी हैं शायद अधिक से अधिक लिखने के मोह के कारण.

लतीफ घोंघी के प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है **'जुगलबंदी'** का प्रकाशन. यह व्यंग्य के क्षेत्र में नया प्रयोग है. लतीफ घोंघी ने यह प्रयोग ईश्वर शर्मा के साथ किया है. लतीफ घोंघी का व्यंग्य के क्षेत्र में नाम परिचित है जबकि ईश्वर शर्मा नये व्यंग्यकार हैं. एक शब्द को लेकर उस शब्द से जुड़ी सामाजिक राजनीतिक आर्थिक धार्मिक और शैक्षिक विसंगतियों के चित्रण को लक्ष्य बनाया है.

रमेश गुप्त एक सुपरिचित कहानीकार हैं परंतु सन् 81 में उन्होंने व्यंग्य के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है. सन् 86 में सुरेश सेठ के बाद 87 में एक और कहानीकार रमेश गुप्त का व्यंग्य संकलन **'गिरगिट'** पढ़ना एक सुखद अनुभूति है. इस संकलन को पढ़कर लगता है कि रमेश गुप्त के पास व्यंग्य की भाषा है और वह उसका सही प्रयोग भी जानते हैं. पहली रचना **'गिरगिट'** राजनीति और नौकरशाही में व्याप्त विसंगतियों को चित्रित करती है. चरित्र चित्रण के लिए प्रयुक्त उनकी व्यंग्य भाषा देखिए—**"जाकी कृपा पंगुगिरि लंघे जैसे सर्वशक्तिमान है हमारे साहब."**

रमेश गुप्त कहानीकार के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं. उनकी व्यंग्य रचनाएं कथा और संवाद के सहारे आगे बढ़ती हैं. उनमें व्यंग्य कथा के माध्यम से उभरता है. इनकी रचनाओं में हास्य को बलात उभारने का प्रयत्न नहीं किया गया है. रमेश गुप्त के व्यंग्य प्रहार का प्रिय क्षेत्र नौकरशाही है, शायद यह उनका अनुभव क्षेत्र भी है. **'गिरगिट'**, **'एक और स्वतंत्रता संग्राम'**, **'समाजवाद और आयोगवाद'** अच्छी रचनाएं हैं.

रामनारायण उपाध्याय के संग्रह **'मुस्कंराती फाइलों'** में उनकी चिर परिचित मुद्रा दिखाई देती है. विषयों और शिल्प में कोई नवीनता नहीं है. लगता है जैसे रामनारायण उपाध्याय स्वयं को दोहराने लगे हैं. जिन्होंने उन्हें पहले नहीं पढ़ा है उनके लिए यह संकलन उनकी व्यंग्य क्षमता का अच्छा परिचय देगा. रामनारायण उपाध्याय में मुक्त रूप से हास्य का सहारा लेकर व्यंग्य करने की क्षमता इस संकलन में भी दिखाई देती है.

रामनारायण उपाध्याय को पुनरावृत्ति से बचना होगा. एक ही विचार को, उपमा को वह अलग रचनाओं में दोहराते हैं. **'पुराने युग की कैकयी'**, **'नये युग के दशरथ'** तथा **'मंत्री पत्नी की मांगें'** का कथ्य और व्यंग्य क्षेत्र एक ही है. दोनों में व्यंग्य की उपमाओं और लगभग सभी बातों को दोहराया गया है. दोनों में कैकेयी और दशरथ के दृष्टांत को एक साथ दोहराया गया है. ऐसा अन्य रचनाओं में भी है.

आलोच्य वर्ष में व्यंग्य संकलन काफी संख्या में प्रकाशित हुए जो व्यंग्य की लोकप्रियता को रेखांकित करते हैं. **'व्यंग्य ही व्यंग्य'** के माध्यम से बालेंदुशेखर तिवारी का प्रयास उल्लेखनीय है. संभवतः उन्होंने पहली बार व्यंग्य लघु कथाओं को एक स्थान पर संकलित करने का सार्थक श्रम किया है. **'व्यंग्य ही व्यंग्य'** में मात्र लघुकथाएं ही संकलित नहीं हैं, इस विषय पर पांच लेख भी संकलित हैं जिनमें विभिन्न आयामों को छूने का प्रयत्न किया गया है. अनेक प्रतिष्ठित एवं युवा लघु व्यंग्य कथाकारों का यह संग्रह इतिहास निर्माण में सहयोग देगा. यह रचनाएं संकलित होने से पूर्व विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित एवं प्रशसित हो चुकी हैं.

भगवानदास मोरवाल द्वारा संपादित **'हिंदी की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'** में प्रदीप पंत, प्रेम जनमेजय, रामनारायण उपाध्याय, फिक्र तौंसवी, रवींद्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी, बरसानेवाले चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, गोपाल चतुर्वेदी आदि की अच्छी व्यंग्य रचनाएं संकलित हैं. परंतु इस संकलन में संपादक की दृष्टि नहीं दिखाई देती है और न ही इन रचनाओं के संकलन के उद्देश्य की चर्चा है, इस दृष्टि से मोरवाल को संपादक न कहकर संकलनकर्त्ता कहना अधिक उचित होगा.

> घिसे-पिटे विषयों पर शब्दों की कलाबाजी खाकर भौंडा, हास्य उत्पन्न करनेवाले अनेक महारथी मंच पर जोकरनुमा हास्य पैदा करके, व्यंग्यकार का बिल्ला लगाये गर्वोन्नत मस्तक से इठलाते-घूमते हैं.

इसी कड़ी में हरिश्चंद्र वर्मा द्वारा संपादित व्यंग्य के प्रसंग की चर्चा की जा सकती है. उन्होंने हरियाणा क्षेत्र से संबंधित व्यंग्यकारों की रचनाओं का संकलन किया है. (धन्य है भारतभूमि जहां व्यंग्य भी हरियाणवी या लखनवी होने लगेगा.) इस संकलन की उपलब्धि अशोक भाटिया हैं, अशोक भाटिया में व्यंग्य करने की क्षमता, विषयों के सही चुनाव की दृष्टि और प्रहारक शक्ति की झलक मिलती है. आशा है शीघ्र ही उनकी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाओं से परिचय होगा. इस संकलन में चंद्रभानु आर्य, जयनाथ नलिन, मधुसूदन पाटिल, देवेंद्र कुमार, हरिश्चंद्र वर्मा की रचनाएं भी संकलित हैं.

इस वर्ष डॉ. शंकर पुणतांबेकर की षष्टिपूर्ति के संदर्भ में **'एक व्यंग्य यात्रा'** का प्रकाशन भी उल्लेखनीय है. इस पुस्तक के संपादक प्रा.रा.बा. पाटिल हैं. इस आयोजन को सफल बनाने में डॉ. तेजपाल चौधरी का श्रम विशेष सराहनीय है. डॉ. शंकर पुणतांबेकर हिंदी व्यंग्य के लिए अपरिचित नहीं हैं. उनकी एक दर्जन से अधिक व्यंग्य पुस्तकें हिंदी व्यंग्य में अपना महत्व रखती हैं. उनके व्यंग्य की प्रहारक शक्ति गुदगुदाती नहीं है, विचलित करती है. **'एक व्यंग्य यात्रा'** के माध्यम से व्यंग्य के विषय पर एक सार्थक बहस भी की गयी है. डॉ. धनंजय वर्मा, प्रेम जनमेजय, बालेंदुशेखर तिवारी के लेख व्यंग्य के क्षेत्र में नया सोचने को बाध्य करते हैं. इस पुस्तक में मात्र डॉ. शंकर पुणतांबेकर की अर्चना पूजा या अभिनंदन नहीं है, उन्हें समझने के लिए विचारात्मक लेख हैं.

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी के संपादकत्व में प्रकाशित **'भारतीय हास्य व्यंग्य कोश'** एक सराहनीय प्रयास इस अर्थ में हो सकता है कि इस दिशा में बहुत ही कम प्रयास किया गया है. परंतु यह ग्रंथ कोश की गरिमा और गंभीरता को लिए हुए नहीं है. लगता है डॉ. चतुर्वेदी का श्रम विशेष फल उत्पन्न नहीं कर पाया है. इस प्रकार के प्रयास होने चाहिए परंतु गरिमा युक्त और गंभीर चेतना से प्रेरित.

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य अनेक व्यंग्य पुस्तकें सन 87 में प्रकाशित हुई हैं जिनके विषय में व्यापक चर्चा न करके मैं नामोल्लेख करना चाहूंगा. उनके विषय में मैं व्यापक चर्चा नहीं कर रहा हूं यह पुस्तक की सीमा नहीं है लेख और मेरी सीमा है यह पुस्तकें भी व्यंग्य क्षेत्र में उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी की उपरलिखित व्यंग्य पुस्तकें. **'चकाचौं बलचव'** (अमृतलाल नागर), **'सिलबिल'** (चिरंजीत) **'मैं उल्लू हूं'** (दीनदयाल शर्मा), **'एक और पंचतंत्र'** (रमेश बक्षी), **'चहचहे'** (प्रेमशंकर श्रीवास्तव), **'सावधान ये मेहमान हैं'** (रमाशंकर श्रीवास्तव) **'1986 की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'** (गिरिराज शरण अग्रवाल), **'बाप बड़ा न भैया'**, **'मुर्दों का प्रीतिभोज'** (काशीपुरी कुंदन) आदि.

सन् 1987 में पत्रिकाओं के माध्यम से भी अनेक व्यंग्य प्रकाशित हुए **'सारिका'**, **'धर्मयुग'** आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं ने व्यंग्य विशेषांकों का प्रकाशन किया जिसमें चिर-परिचित और नये चेहरे दिखाई दिये.

सन् 1987 में व्यंग्य रचनाओं और रचनाओं ने अपने पाठकों को निराश नहीं किया है. व्यंग्य और अधिक लोकप्रिय हुआ है. परंतु व्यंग्य पर गंभीर चर्चाओं का लगभग अभाव ही रहा है. आवश्यकता है व्यंग्य के आलोचनात्मक पक्ष पर गंभीरता से सोचने की. आशा है 1988 में **'व्यंग्यशती'** पत्रिका जैसे प्रयास और होंगे. तथा व्यंग्य के क्षेत्र में और अधिक गंभीर कर्म होंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ | गोपाल चतुर्वेदी

मच्छर और सुलतान

अपने किलेनुमा घर में जनता से सुरक्षित प्रजातंत्र के सुलतान परेशान थे. जैसे ही वह आंख मूंदकर आयातित गद्दे, चादर और तकिये के बिस्तर पर विश्राम के लिए लेटते कि भिनभिनाहट शुरू हो जाती जैसे उनकी आरामदेह सेज भीष्म की शर-शैया बन चुकी हो. आज तो बदतमीजी की हद हो गयी. वह शौर्य और पराक्रम से "भिनभिन" के स्रोत की ओर हाथ की तलवार भांज रहे थे कि यही स्वर उनके दायें कान के अंदर से गूंज उठा. अपनी पारिवारिक सुलतानी परंपरा के अनुरूप उनके हृदय में शरणागत के प्रति दया और करूणा की भावना थी. पर गर्वीले दुश्मन की हेकड़ी को उनके किसी भी प्रसिद्ध पुरखे ने नहीं सहा था. वह भला कैसे सहते! उन्होंने पूर्ण ताकत से कान पर हाथ मारा. आवाज बंद हो गयी. वह अपनी इस शानदार विजय का सोचकर खुश भी न हो पाये थे कि उन्हें उंगली पर लगा रत्ती भर खून का धब्बा दिखा. वह घबरा गये. कहीं इस गंदे और भिन-भिन खून से उन्हें छूत की बीमारी न लग जाये. रिआया का क्या होगा? विशाल सल्तनत की जिम्मेदारी कौन संभालेगा! अभी तो उनके लख्ते-जिगर भी सिर्फ कंचे खेलते थे. उनकी व्यक्तिगत पीड़ा सार्वजनिक चिंता में बदल गयी. उन्होंने घंटी बजाकर अपने सलाहकार को बुलाया.

"हमने मुल्क के इतने मोहल्ले, बस्ती, नगर और गटर इनको सौंप रखे हैं. फिर भी, यह नहीं मानते. आखिर यह चाहते क्या हैं", उन्होंने झुंझलाकर प्रश्न किया.

"सर, स्थिति तो सुधर रही है. ऐसे आतंक का कोई दर्शन तो है नहीं. जाने आतंकवादी कब क्या कर बैठें." सलाहकार ने अदब से उत्तर दिया.

सुलतान बिफर पड़े," आप निरे मूर्ख हैं! आप इतना भी नहीं जानते कि आतंक की समस्या तो हमारे समझौते के बाद हल हो गयी. अब तो 'प्रोबलम' मच्छरों का है. क्या इनसे कोई 'एकार्ड' संभव है?"

सलाहकार सिर खुजाने लगा. उसने देखा था कि महत्वपूर्ण बैठकों में अहम मसलों पर सुलतान की हां में हां मिलाने के पूर्व अधिकतर भाग लेनेवाले या तो ऊंघते थे अथवा अपनी गंजी चांदों को सहलाते थे. फिर बोला "सर! इस मौसम में मच्छर कुछ ज्यादा ही हो जाते हैं. मैं अभी स्वास्थ्य मंत्रालय से मच्छर-नाशक छिड़काव का प्रबंध करवाता हूं."

"यह सब तो आप पहले भी कर चुके हैं. पर 'रिजल्ट' क्या हुआ! यह सुरक्षा व्यवस्था कैसी है कि मच्छर आराम से नारे लगाते हमारे घर में टहलते-फिरते हैं. हम अभी यूरोप गये थे. वहां तो बिल्कुल मच्छर नहीं हैं. हमें यकीन होता जा रहा है कि आप लोग कतई निकम्मे हैं. मच्छरों तक पर नियंत्रण नहीं रख सके." सुलतान का पारा चढ़ता जा रहा था. उन्हें यकायक अपनी उंगली पर लगा खून का धब्बा फिर दिख गया. वह अपना आपा खो बैठे, "आप अपनी मनहूस शक्ल मुझे मत दिखायें", कहकर उन्होंने सलाहकार को रुखसत किया और निजी डाक्टर को बुलवा भेजा.

"सर! मामला गंभीर भी हो सकता है. जिन्हें आदत है, वह बर्दाश्त कर सकते हैं. कहां आप और कहां मच्छर!" डाक्टर ने उन्हें गोली दी और जांच के लिए खून लिया.

"डाक्टर! हमारे वैज्ञानिकों को क्या हो गया है! क्या मच्छरों की भिन-भिन भी नहीं रोकी जा सकती! यदि मच्छर सिर्फ काटें और भिनभिनाएं नहीं तो शायद तकलीफ कम हो," सुलतान ने देश की ज्वलंत समस्या पर अपने बहुमूल्य विचार प्रगट किये.

डाक्टर ने उंगली के बाद पोंहचा पकड़ा, "सर, हमारी प्रयोगशालाओं में शोध के लिए पैसे का अभाव है. वर्ना मच्छर क्या, हम गधों की रेंक, कुत्तों की भौंक, शेरों की दहाड़, गायों

का रंभाना, हाथियों की हुंकार और चिड़ियों का चहकना, सब बंद करवा सकते हैं. जरूरत बस धन, उपकरण और विदेश में प्रशिक्षण की है."

सुलतान में तुरंत निर्णय लेने की विलक्षण प्रतिभा थी. डाक्टर के जाते ही, उन्होंने दूसरे सलाहकार और वित्त मंत्री को तलब किया और जन-उपयोगी शोधों, खासकर मच्छरों की बोलती बंद करने के लिए, अधिक वित्तीय राशि के आबंटन का आदेश दे दिया. "यदि जरूरी हो तो नयी प्रयोगशालाएं भी बनायी जायें. हमारी इच्छा है कि हर क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र के परिसर में एक मच्छर-मार रिसर्च सेंटर भी बने. इससे संस्कृति और सांइस का सुंदर समन्वय होगा. इक्कीसवीं सदी में जाने के लिए विज्ञान की तकनीकी महारत के साथ-साथ नट-नर्तकियों के करतब और जादू-टोने आदि भी आवश्यक हैं," सुलतान ने प्रगति का सिद्धांत प्रतिपादित किया.

सलाहकार गदगद हो उठा, "सर, आपका यह लोकोपयोगी संदेश तो देश के कोने-कोने में पहुंचना चाहिए. यदि आप समय दे सकें तो अभी टी.वी. के कू को बुलवा दूं.", सलाहकार गिड़गिड़ाया. सुलतान ने अपनी जन-छबि वाली भोली और मोहक मुस्कराहट दराज से निकालकर चेहरे पर लगाई और शाही अंदाज में बुदबुदाया, "हां."

सलाहकार नंबर एक की सुलतानी-कृपा के शिखर से नीचे फिसलने की खबरें सत्ता के गलियारों में कानाफूंसी से गूंजने लगी थीं. वह सुलतान की नजर में उठने की जुगत भिड़ा रहा था. उसने निश्चय किया कि वह सुलतान से वेश बदलकर मिलेगा. क्या पता सुलतान को उसकी नयी 'इमेज' भा जाये. उसने शीशे के सामने खड़े होकर अपने होंठों के ऊपर मक्खीनुमा मूंछ फिट की. गंजी खोपड़ी पर आयातित लंबे बालों का फ्रेंच विग लगाया और चल पड़ा. सुलतान संसद के जंगली जीवन का आनंद लेने गये थे. सलाहकार जानता था कि दृढ़ निश्चय, लगन और सही मौके की पहचान की शासकीय शतरंज की सफलता की कुंजी है. वह सुलतान की प्रतीक्षा में लगा रहा. सुलतान लौटे. निजी सचिव ने उन्हें प्रतीक्षारत सलाहकार की व्यथा-गाथा सुनायी. सुलतान इस समय अपनी जन-छवि वाली लोकप्रिय मुस्कान को उतारकर जेब में रख चुके थे. उन्होंने सलाहकार से मिलने की मंजूरी नहीं दी. सलाहकार निजी सचिव के गुट का था. निजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचिव मैडम सुलतान का खास था. सचिव ने मैडम से सलाहकार की सिफारिश की. मैडम ने सुलतान को सलाहकारों से इंसानियत और शराफत से पेश आने की सलाह दी, ''नहीं तो वह वफादार कैसे होंगे!'' दूसरे दिन सुलतान ने स्वयं सलाहकार को बुलाया.

सुलतान के चेहरे पर उनकी चिर-परिचित टी.वी. वाली मुस्कराहट देखकर सलाहकार ने मच्छर-प्रकरण छेड़ने का साहस किया. सुलतान ने उसे बीच ही में टोक दिया, ''आपने अपनी यह हालत क्या बना रखी है! हमें युवकों और बूढ़ों को साथ लेकर चलना है. इसीलिए हमारा एक सलाहकार नवयुवक है. आपको अपनी उम्र का दिखना चाहिए'', कहते हुए सुलतान ने सलाहकार की टोपी उछाल दी और मूंछें नोच लीं.

सलाहकार का मन प्रसन्नता से भर गया. सुलतान उसमें कितनी व्यक्तिगत रूचि लेते हैं. ''सर, आपने हमेशा की तरह सही सोचा. मैं अब युवक बनने का अभिनय कभी नहीं करूंगा.'' सलाहकार ने दुम के न होने की विवशता में सिर हिलाकर अपनी भूल स्वीकार की और सही अवसर ताड़कर फिर मच्छर का विषय उठाया. सुलतान उसकी टोपी को गेंद की तरह उछालकर लोकने का खेल, खेलकर खुश थे. उन्होंने दस मिनट की मोहलत दी. फिर उन्हें सर्कस का उद्घाटन करने जाना था. सलाहकार जानते थे कि पांच मिनट भी किसी बात पर सुलतान का ध्यान टिकना अपने आप में उपलब्धि है.

''सर! मेरा तो विनम्र सुझाव है कि आप धरती के बजाय हवा में ही रहें. पच्चीस-तीस देशों ने आपको राजकीय यात्रा के लिए निमंत्रित किया है. उनकी समस्याओं का हल भी आप ही को निकालना है. आपकी विदेश-यात्रा के दौरान हम मच्छरों की नाक में दम कर देंगे. जमीन पर तोपों से केमिकल बमों की और आकाश से उसी के 'स्प्रे' की ऐसी बमबारी करेंगे कि मच्छर नेस्तनाबूद हो जायें. आपकी अनुपस्थिति में मच्छरों के विनाश उनके समर्थक आपको दोष भी दे पायेंगे. इसके अलावा कुछ दूरगामी कदम उठाये जा सकते हैं'', सलाहकार को सुलतान ने हाथ के इशारे से रोक दिया. सुलतान को विदेश-यात्रा का सुझाव अच्छा लगा ''ग्लोब लेकर हमारी यात्रा का ऐसा कार्यक्रम बनाइये कि हम तीन-चार मुल्कों की सैर कर लें. कम से कम दो-तीन हफ्तों के लिए तो इन नामाकूल मच्छरों से मुक्ति मिलेगी. इस बीच देखें कि आप इनका क्या करते हैं.'' सलाहकार आगे कुछ कह पाता कि सुलतान अपनी सर्कस-यात्रा के लिए रवाना हो गये.

जैसे ही दूसरे को पता लगा कि पहले सलाहकार ने सुलतान के पास फिर से सेंध ली है, उसने तत्काल डाक्टर से संपर्क किया, ''डाक्टर, अब गुड़ गोबर हुआ जा रहा है. तुम्हारे शोध केंद्र का रुपया डूबने वाला है. वह विज्ञान-विरोधी सलाहकार फिर से सुलतान साहब के पास जा मरा है. जल्दी आइये!''

डाक्टर अपनी सफलता पर फूले न समा रहे थे. इस अनपेक्षित खतरे से चौंके और बड़बड़ाते हुए चल पड़े, ''मौत और सुलतान का कोई भरोसा नहीं है!''

दूसरे सलाहकार ने पहले की विज्ञान-विरोधी प्रवृत्तियों की निंदा की, ''उसमें दूरदृष्टि का कतई अभाव है. अपनी मोटी तोंद पर पेटी बांधता है और कहता है कि जब तक देश का पेट पीठ से न मिल जाये, राष्ट्रीय विकास संभव ही नहीं है. साहब के खून की जांच से कुछ पता चला!''

डाक्टर ने बताया कि सुलतान की उंगली पर लगा खून एक बहुत ही मरियल मच्छर का था. वह सिर्फ अपनी भूख की यातना के वशीभूत भिनभिना रहा था, काटने की कूवत उसमें थी ही नहीं.

''पर यदि मच्छर काट ले तो मलेरिया भी हो सकता है. यदि सुलतान बीमार हुए तो जनता का क्या होगा! उसके लिए साहब ही तो एकमात्र आशा और मनोरंजन के स्थाई केंद्र हैं. आपके शोध-केंद्रों के नतीजे आने में तो वक्त लगेगा. तब तक कुछ और उपाय सोचिये न.'' सलाहकार ने डाक्टर से अनुरोध किया. दोनों गहन चिंतन के लिए कौफी पीकर अपने-अपने व्यक्तिगत हित-चिंतन की चिंता में डूब गये. सुलतान भी अभी सर्कस से लौटे नहीं थे.

''हमारे साहब को भारतीय संस्कृति से गहरा लगाव और प्रेम है. वह घंटों कठपुतली का खेल, बंदर का तमाशा और सपेरे की बीन पर सांप का नाच देख सकते हैं,'' सलाहकार ने डाक्टर को सूचित किया.

सुलतान लौटे तो उनके साथ एक अदद बूढ़ा मंत्री भी आ टपका. सुलतान के दफ्तर में सब सियासती बूढ़े संदेह के पात्र थे. पता नहीं कब कौन घाघ मौका पाकर सुलतान को कौन.सी उलटी-सीधी पट्टी पढ़ा दें. मैडम सुलतान का निर्देश था कि ऐसे बूढ़े सियार अधिक देर तक सुलतान के पास अकेले न छोड़े जायें. पर सुलतान बूढ़े के साथ देर तक चाय पीते रहे.

काफी समय बाद दोनों बुलाये गये. डाक्टर ने तत्काल उंगली का निरीक्षण किया, ''सर, अब तो बिल्कुल ठीक है.'' सुलतान के चेहरे पर कुछ विस्मृति के भाव उभरे. डाक्टर ने खून की जांच की बात बतायी. ''हम तो राष्ट्रीय सर्कस के चक्कर में मच्छर के काटे का भूल ही गये थे,'' सुलतान ने स्वीकार किया.

''पर हम कैसे भूलते. मच्छर से आपका बचाव हमारा राष्ट्रीय दायित्व है.'' सलाहकार और डाक्टर ने युगलबंदी की. डाक्टर ने सलाह दी कि सुलतान को मच्छररहित माहौल में रहना चाहिए. ''सर! रिसर्च के परिणाम आने में अभी देरी लगेगी. आपकी सेहत से हमारी पूरी नयी पीढ़ी और सारे मुल्क का भविष्य जुड़ा है. क्यों न हम एक गुप्त भूमिगत आवास बनवा लें. युद्ध स्तर पर काम लगेगा तो एक माह के अंदर तैयार हो जायेगा. मच्छरों को खबर ही नहीं होगी तो भिन-भिनायेंगे कैसे.'' सलाहकार ने मच्छर से मुंह छुपाने का तरीका बताया. इतने में फोन का बज़र बजा. दूसरे बूढ़े मंत्री का फोन था. सुलतान ने उनसे भी मच्छरजनित मुसीबत का जिक्र किया.

''बूढ़ा तो कहता है कि मच्छर प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनिवार्य अंग हैं. उनकी चीख-पुकार तो सुननी ही पड़ती है. वर्ना चुनाव में सल्तनत जाने की आशंका है.'' सुलतान ने अपनी फोन की चर्चा का सार सुनाया.

''सर, गुस्ताखी माफ, यह मंत्री तो स्वयं एक बूढ़ा मच्छर है. यह जिंदगी भर मच्छरों के साथ रहा, पला और बड़ा हुआ. इसका मच्छर प्रेम स्वाभाविक है. आपको मच्छरों से क्या लेना-देना! यह तो आपकी महानता है कि आप मच्छरों के जड़ से उन्मूलन के स्थान पर सिर्फ उनका मुंह बंद करवा रहे हैं.'' सलाहकार ने अपनी वफादारी दिखायी.

''एक ही रात की बात है. कल सुबह तो हम विदेश यात्रा पर जा रहे हैं. आप अपनी योजना बनायें. लौटकर निर्णय ले लेंगे.'' सुलतान ने दोनों मुसाहिबों को विदा किया.

देर रात सुलतान ने नींद की गोली खायी और सो गये. सपने में उन्हें अपनी शक्ल का एक हाथी दिखा. उसके बड़े-बड़े कानों के अंदर मच्छर ही मच्छर थे. वह जड़वत खड़ा, असहाय पीड़ा से चिंघाड़ रहा था. सुलतान की नींद खुल गयी. वह पसीने-पसीने हो रहे थे. उन्होंने बूढ़े मंत्री को फोन लगाकर शिकायत की,'' आप बताइये क्या करूं! बागी मच्छर तो सोने भी नहीं देते.''

बूढ़े मंत्री ने उन्हें कुछ दिन और यह कष्ट सहने की सलाह दी, ''चुनाव के माहौल में हर मच्छर शेर हो जाता है.''

सुलतान को ख्याल आया कि यह प्रजातंत्र उनका पारिवारिक तंत्र है और अपने पूर्वजों की तरह इसके ढांचे को तोड़ने-मरोड़ने का उन्हें पूरा अधिकार है. वह क्यों इसकी सीमाओं में उलझे रहें. उन्होंने निश्चय किया कि वह अभी सलाहकार को फोन पर भूमिगत आरामगाह के निर्माण का निर्देश देंगे. उन्होंने टेलीफोन की ओर हाथ बढ़ाया. वहां एक मच्छर था. उन्होंने उसे भगाना चाहा. टेलीफोन नीचे गिर पड़ा. मच्छर उड़ गया. सुलतान की भिनभिनाहट उनके कान में गूंजती रही और वह विक्षिप्त से दौड़ते रहे. कुछ समय बाद जैसे सुलतान का सिर चकराने लगा. मच्छर उनकी पकड़ के बाहर था. पर सुलतान को यह होश नहीं था कि मच्छर उनका पीछा कर रहा है या वह मच्छर का. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. रणवीर रांग्रा

क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे?

हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणि' महादेवी अब नहीं रहीं. पर उनकी काव्य-वीणा की झंकार युग-युगांतर तक अक्षुण्ण रहेगी. वे वेदना की कवयित्री थीं. दुःख उनके जीवन का प्राणधार था. वे वेदना को जीवन का ऐसा काव्य मानती थीं जो सारे संसार को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता रखता है. उनका विश्वास था कि 'विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है': **दीप मेरे जल अकंपित, घुल अचंल/ पथ न भूले एक पग भी; घर न खोए लघु विहग भी/स्निग्ध लौ की तूलिका से, आंक सब की छांह उज्ज्वल.** अपनी काव्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने एक बार बताया था: 'निहार' के रचानाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतुहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती है, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देनेवाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है. 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिंतन प्रिय था, परंतु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त करते हैं जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा था: **'विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा/दुःख सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा/ मधुर मुझको हो गए सब, मधुर प्रिय की भावना ले.** उनकी ये अमर कृतियां 'यामा' मे संकलित हैं जिस पर वे भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुई थीं.

महादेवीजी से उनके काव्य पर खुलकर चर्चा करने का मुझे दो बार सुअवसर प्राप्त हुआ. एक बार यहां दिल्ली में वर्षों पहले और दूसरी बार प्रयाग में उन्हीं के विश्वास पर. उनके कला-कक्ष में कदम रखते ही व्यक्ति के प्राण विकल हो उठते हैं और उसके भीतर का रुद्ध पारावार ठाठें मारने लगता है, उसी प्रकार जैसे पूर्ण चंद्रिका में सागर उद्वेलित हो उठता है. मेरे साथ भी यही हुआ. फिर लगा कि देहताप से मुक्त होकर काव्य-लोक में विचरता हुआ महादेवीजी के सान्निध्य की स्निग्ध छाया में उनसे पूछ रहा हूं, 'कुछ लोगों का कहना है कि कविता रची नहीं जाती. वह कवि के भीतर से सोते के समान फूटती है और उसे सराबोर कर देती है तथा वह उसका स्रष्टा न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर, मात्र द्रष्टा रह जाता है. इस विषय में आपका अपना क्या अनुभव रहा है?'

महादेवीजी बोली, 'इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता. मुझे लगता है कि हरेक आवेश-आवेग उसी समय कविता नहीं बन जाता. कविता अवचेतन में रहती है और न जाने कब और कैसे प्रस्फुटित हो जाती है. अब देखिए न, इंदिरा के जीवनकाल में उस पर कविता न लिखने की कभी सूझी नहीं, बल्कि उससे हमारा झगड़ा ही रहा. मैंने सदा उसका विरोध किया' उसके निधन के बाद एक दिन अचानक हमें चार बरस की इंदिरा याद आती है और अपने-आप उस पर कविता बन जाती है : **किसी ने रूप मांगा, सिद्धि मांगी और नवजीवन/किसी ने दूध मांगा, पूत मांगा**, दीप्त घर-आंगन/कहो प्रियदर्शिनी, **तूने अनल-शृंगार क्यों मांगा?/जला जिसने दिया सब कुछ, वही अंगार क्यों मांगा?** तो न जाने भीतर बैठा कौन कब कविता प्रस्फुटित कर देता है. मुझे कई बार लगता है कि कविता भी मनुष्य को बनाती है. वह रचता ही नहीं है, स्वयं भी रचा जाता है. बड़े कवि की पहचान यह नहीं है कि उसकी कविता बड़ी है. बल्कि वह व्यक्ति के रूप में उतना ही बड़ा होना चाहिए.'

उनका मुखर चिंतन आगे बढ़ा, 'आज के कवि की साधन-संपन्नता के बावजूद उसकी कविता निर्जीव क्यों रह जाती है? जब निराला 'राम की शक्तिपूजा' लिख रहे थे, उनकी उस समय की साधनहीनता की आप कल्पना नहीं कर सकते. उनके पास कागज नहीं, टूटा कलम, निब भी टूटा हुआ, स्याही है नहीं. पाठशाला में जाकर किसी से ये सब मांग लाए और कड़वे तेल का दीया जलाकर कविता लिखने बैठ गये नीचे फर्श पर. उनके लिखने का आलम यह था कि बर्तन मल रहे हैं, खाना बना रहे हैं और साथ-साथ कविता भी लिखते जाते हैं. इस तरह लिखी उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' जिसका लोहा अब तक सब मानते हैं. उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि ऐसा कागज हो, ऐसी कलम हो, ऐसी मेज हो. इन सबसे वे बेखबर हैं. उनकी हालत देखिए. प्रसादजी को वे बाबूजी कहते थे. एक बार उन्होंने लिखा, ''बाबूजी, जब मुझे चिट्ठी भेजें तो उसके साथ एक कोरा कागज डाल दिया करें. मेरे पास कागज नहीं होता. उसका कहीं से प्रबंध करना पड़ता है.' अब आप देखिए, जिसके पास कागज नहीं है, कलम और दवात नहीं है, वह कालजयी काव्य की सृष्टि करता है. दूसरी ओर, आज के युग में साहित्यकार तो साधन-संपन्न हो गया है, पर उसका साहित्य उसके जीवनकाल में ही मृत्यप्राय हो जाता है.

महादेवीजी को थोड़ा कुरेदते हुए मैंने पूछा, 'आज प्रतिबद्धता की बहुत दुहाई दी जाती है. क्या आप भी मानती हैं कि लेखक को प्रतिबद्ध होने चाहिए और यदि होना ही चाहिए तो किसके प्रति? वे बोलीं, 'इसके बारे में मैंने बहुत सोचा नहीं है. फिर भी मैं जानती हूं कि साहित्यकार यदि प्रतिबद्ध है तो अपने प्रति है, अपने सत्य के प्रति है और जब किसी वाद से प्रतिबद्ध होगा, तब समझिए कि वह मिथ्यावाद में पड़ गया है. हर साहित्यकार अपने सत्य के साथ अकेला ही होता है. कोई भी बाहरी तत्व उसे इस अकेलेपन से निकाल नहीं सकता. देखिए, लहरें तो अनेक होती हैं, पर जो मोती खोजता है, वह गहराई में जाता है. इस खोज में उसे अपनी ही नाव का सहारा लेना पड़ता है चाहे वह कितनी ही छोटी हो. उसे जहां जाना है, वहां पहुंचने में किसी दूसरे का बड़े से बड़ा बेड़ा भी उसके काम नहीं आ सकता. कभी किसी दूसरे का उसे क्या करना है. प्रसादजी कहा करते थे कि किसी दूसरे के बजरे अपनी से डांगी मत बांधो. वह तुम्हें कहीं नहीं पहुंचायेगा. कवि अपने में अकेला है, अपने सत्य के साथ अकेला है. उसकी कविता ही उसे दुकेला बनाती है. अन्य कोई वस्तु या वाद उसे अकेलेपन से उबार नहीं सकती, कविता ही उसे उबार सकती है. हमें लगता है कि इस विषय पर आज का युग जिस तरह सोच रहा है, जिस तरह चल रहा है, उसमें शायद कोई बड़ा कवि नहीं आ पायेगा. आज दूसरा तुलसीदास भी आ सकता था, सूरदास भी आ सकता था, टैगोर भी आ सकता था. पर आया तो नहीं. शायद इसीलिए कि आज का साहित्यकार अकेला चलने से घबराता है. उसे दल-बल की दरकार है.

आज साहित्यिक पुरस्कारों की जो होड़सी लगी हुई है उसका जिक्र छेड़ते हुए मैंने पूछा, 'क्या इन पुरस्कारों से सही साहित्य-सर्जना को बढ़ावा मिलता है?' उनका उत्तर दो-टूक था, ''कतई नहीं. हम तो यहां तक मानते हैं कि पुरस्कार व्यक्ति को छोटा बनाते हैं, बड़ा नहीं बनाते. इसलिए जब हमने न्यास बनाया तो स्पष्ट कर दिया कि पुरस्कारों में हमारी रुचि नहीं है, अगर आप किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देते हैं उसे अनुवृत्ति कहें, या कुछ और कहें, तो हमारा न्यास भी उसमें सहयोग देना. पुरस्कारों की विडंबना यह है कि कोई भी चयन निर्विवाद नहीं हो सकता. किसी की कविता, किसी का उपन्यास है और किसी का नाटक. आप कैसे तोल कर निर्णय कर सकते हैं कि इनमें कौन सर्वश्रेष्ठ है?''

चर्चा को साहित्यकार की संतुष्टि की ओर मोड़ते हुए मैंने पूछा, 'आपके निकट साहित्यकार की संतुष्टि-परितृप्ति की क्या संकल्पना है? अपनी किसी ऐसी कविता का उल्लेख करें जिसे रचने के बाद आप की सर्वाधिक संतुष्टि का अनुभव हुआ हो.' प्रश्न सुनकर पहली बार महादेवी जी असमंजस की स्थिति में प्रतीत हुई. वे बोली, 'वह मैं नहीं जानती, क्योंकि यह तो अपनी शल्यक्रिया करना हुआ. हमारे अवचेतन में कितना कुछ है, नहीं बता सकते. सो रहे हैं, सोते-सोते अचानक जाग जाते हैं और कविता लिखने लगते हैं. मेरी कविता '**दुख आया, दिलदार लौटा न दो**' की रचना बिल्कुल उसी तरह हुई. वह ठीक आधी रात में लिखी गयीं. सोते-सोते अचानक जग गई. लगा कि कुछ लिखना है. क्यों मन में आया, यह कुछ नहीं मालूम, वह बस बन गयी, एक ही रात में. पर कैसे बनी, यह नहीं जानती. हां, लिखने के बाद जरूर ऐसा लगा कि यही कहना चाहिए था. हमें आज भी लगता है, भाई, कि अगर संवेदना नहीं है, वेदना नहीं है, दुख का कोई अनुभव नहीं है तो फिर आप कुछ भी नहीं करेंगे. उसमें नींद से जागकर यही बात कही गयी है : **स्वप्न का ध्यान भी गुत्थियों में भरा/धरती विस्तार है आज मरु की. तरह/दुख आया अमर सिंधु डूब कर/यह घटा-सी है सौगात लौटा न दो.**' आगे इसकी पंक्तियां बहुत हैं. अचानक ही यह कविता प्रस्फुटित हुई. कैसे हुई यह नहीं कह सकती. हां, इतना जानती हूं, अगर कोई दुख न हो, वेदना न हो, तो बदलेगा नहीं समाज.'

हमारी बात चल ही रही थी कि चाय आ गयी और मिठाई भी और महादेवीजी मातृसुलभ स्नेह के साथ उसके प्रति न्याय करने का अनुरोध कर रही थीं. फिर न जाने क्या हुआ कि वे सत्तर-पचहत्तर वर्ष की दूरी पार कर अपने बचपन में पहुंच गईं और अपने काव्यारंभ को टटोलने लगीं : ''हमारा अवचेतन एक समुद्र है, जैसे लोक-साहित्य एक समुद्र है. उससे बादल उठते हैं—रंग के हों, पानी बरसानेवाले हों, बिजली चमकाने वाले हों—उसी के उठते हैं. इसी प्रकार, हमारा अवचेतन भी न जाने कितने युगों के संस्कार लिए हुए हैं. अब हमारे परिवार में ही देखिए. हमारे बाबा तो फारसी जानते थे जो उस समय सिरमौर भाषा थी. परदादा भी उर्दू-फारसी जानते थे. हमारे पिताजी ने कहा कि अंग्रेजी पढ़ें. वे अंग्रेजी में एम.ए. थे. उस समय हम लोग उत्तर प्रदेश में आ गये थे और फिर यहां से चले गये इंदौर. अंग्रेजी ले गयी उन्हें राजकुमार कॉलेज में. हमारे यहां हिंदी चलती नहीं थी. हमारी मां जब आयीं जबलपुर से तब लड़कियों को इतना ही पढ़ाते थे कि रामचरित मानस पढ़ लें. बस, वही लेकर वे आयीं. अपने भाई-बहनों में मैं ही सबसे बड़ी थी. छह-सात बरस की थी, तब की याद है. वे हम सबको सवेरे-सवेरे नहलाती थीं पूजा पर. उनके राम थे, श्याम थे. हम लोग पूजा पर बैठे रहते चुपचाप. खूब ठंड लगती, तब हम जोड़ने लगे, उसी अनुभूति में. क्यों जोड़ने लगे, कैसे जड़ने लगे, कुछ पता नहीं. एक हमने जोड़ा : **ठंडे पानी में नहलाती/ठंडा चंदन इन्हें लगाती/इनका मांग हमें दे जाती/फिर भी कभी न ये बोल हैं/मां के ठाकुर जी भोले हैं.**' हम सोचते कि हमारी तरह ठाकुरजी को भी ठंड लगती होगी, वे जरूर शिकायत करेंगे. पर वे तो कुछ बोलते ही न थे. हमने अपने सेवक से कहा, .यह ठाकुर जी भी कैसे हैं? ठंड लग रही है पर चुप-चाप सह रहे हैं. कुछ बोलते ही नहीं. सेवक ने कहा, 'ठाकुरजी कहीं बोलते हैं?' हमने पूछा, 'ठाकुरजी क्या गूंगे हैं?' उसने बताया कि वे भगवानजी हैं तो हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, 'क्या भगवानजी गूंगे हैं? तो इस तरह हमारे पास छोटी-छोटी बहुत-सी कविताएं हो गयीं. हमारी मां ने कहा कि एक पंडित रख दो. पंडितजी आये तो हम ब्रजभाषा में लिखने लगे. ब्रजभाषा में यह हमारा पहला प्रयास था : **''बांधे मयूख की डोरिन से किसलय के हिंडोरन में तुम झूलियो/सीकर मंद समीर तुम्हें दुलराय अंक लगाए प्रभुजी/रीझियो मोर के रान पे तितली के नतेन पैपुनि मौजियो/फूल कहे तुम्हें ऐसे कोई जब कांटन में फंस के हंसि बोलियो.'** अब यह भाव भीतर से न जाने कैसे आया होगा. हमारा एक गीत बहुत गाया गया. लेकिन लोगों को यह मालूम नहीं था कि यह किसका है. टंडनजी ने पूछा कि ये जो गीत गाये जा रहे हैं वे किसके हैं? लोगों ने बताया कि एक लड़की है, वही इन्हें लिख देती है. तो उन्होंने कहा कि उसकी कविताएं लाओ. पर तब मेरे पास कविताएं लिखी हुई कहां थीं. बड़ी मुश्किल से उन्हें बटोरा और बाद में वे 'नीहार' के रूप में छपीं. वे न कहते तो 'नीहार' कैसे बनती. टंडनजी हमें चाहते थे. वैसे तो वे सभी को चाहते थे. पर हमें बहुत चाहते थे. एक बार क्रम चल पड़ा तो बस चलता ही गया. कवि कैसे लिखता है, क्यों लिखता है, यह सब कैसे जानें? हमारे और भाई बहन भी तो हैं. वे तो कविता नहीं लिखते.'

छायावाद की देन का उल्लेख करते हुए महादेवीजी ने कहा है, 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी. छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी. अत: अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है. प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियां और कठोर शिलाएं, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिंब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं. जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोलने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक आलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा.'

पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद का कड़ा विरोध किया, विशेषकर प्रकृति के मानवीकरण की उसकी मूल प्रवृत्ति को लेकर. उसका जिक्र करते हुए मैंने पूछा, 'इससे क्या उस समय के छायावादी कवि, जिनमें आप भी प्रमुख थीं, खिन्न नहीं हुए? शुक्लजी के मत के प्रति आप

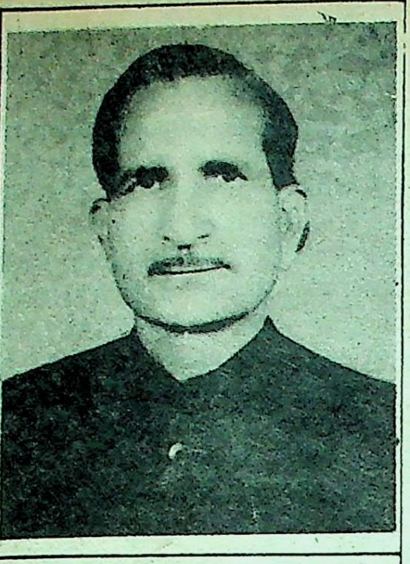

डा. रणवीर रांग्रा

लोगों का क्या रुख था?'

लंबे अतीत को पार कर पचास-पचपन वर्ष पहले के युग में पहुंचने में महादेवीजी को क्षण भर का समय भी नहीं लगा. वे इस तरह बताने लगीं मानो कल की बात हो, 'यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि शुक्लजी के विरोध के बावजूद हम लोगों ने उन्हें आदर दिया, श्रद्धा दी. इस विषय पर उनके साथ हमारी कई बार बात हुई. हमने उनसे कहा कि आप हमें तो कहते हैं, पर आखिर जो इतना देवतावाद चला है, उसके बारे में आप कुछ नहीं कहते. कज्ज कहीं सुर्य है, कहीं करुण है—ये सब क्या है? क्या यह प्रकृति का मानवीकरण नहीं है? लोकगीतों में बार-बार प्रकृति मानव के रूप में आती है. आज भी गांव में आप सुनेंगे कि ससुराल जाते समय बिटिया बाप से कहती है— **'बाबुल प्रेमिचा का रूख मत काटियो/यह मेरी कहानियां हैं.'** ससुराल में वह बादल से अनुरोध करती है : **'कारी बदरिया, तू मेरी बहिनी/बीरन के रहियो पास.'** हमने कहा कि इन लोकगीतों को तो किसी ने छायावादी नहीं कहा. कितने ही प्राचीन काव्य-ग्रंथों में पेड़ बोलते हैं पशु बोलते हैं, पक्षी बोलते हैं. उनके बारे में तो आपने कभी कुछ नहीं कहा ये जब हमारी कविताओं में बोलते हैं तो आप कहते हैं कि यह कैसे हो सकता है. हमने कहा कि हमारा यह जन्मजात स्वभाव है कि हम प्रकृति से प्रकृति की हर वस्तु से व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर लेते हैं. ऐसा न होता तो कालिदास की शकुंतला और यक्ष ऐसा व्यवहार क्यों करते. उसे स्वाभाविक नहीं मानेंगे तो फिर कालिदास का क्या करेंगे. अंत में शुक्ल जी को मानना पड़ा कि आदमी का सच्चा संगी-साथी तो प्रकृति है. हमने कहा आप प्रसादजी को छायावाद का पहला कवि कहते हैं, पर ये सब तत्व तो श्रीधर पाठक की कविता में भी मिलते हैं. आप इन्हें पहला छायावादी कवि क्यों नहीं मानते. वास्तव में, श्रीधर पाठक को महावीर प्रसाद द्विवेदी, और शुक्लजी भी, गुरुवर मानते हैं. पाठकजी उनको नाम से बुलाते थे और ये लोग उन्हें 'पंडितजी' कह कर संबोधित करते थे. इसलिए, उन पर उंगली कैसे उठाते? फिर भी शुक्लजी ने छायावाद के प्रति अपना रुख बदला और अपने पहले मत में समुचित संशोधन किया. शुक्लजी व्यक्ति भी बहुत बढ़िया थे. शास्त्र की जितनी व्याख्या हमारे यहां हुई है, उतनी कहीं भी नहीं हुई. पर उसे विज्ञान के नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का काम तो शुक्लजी ने ही किया. शुक्लजी की उस देन को हम भूल नहीं सकते.

श्रीधर पाठक का जिक्र छिड़ने पर महादेवीजी ने बताया, 'हिंदी के मूर्धन्य कवियों से हमारा परिचय श्रीधर पाठकजी के घर पर ही हुआ. उन्हें मैं पहला छायावादी कवि मानती हूं, प्रसादजी को नहीं. वैसे यह प्रवृत्ति तो बहुत पहले से चली आ रही थी, श्रीधर पाठक जी के घर पर हर रविवार को बैठक जमती थी. उस समय काफी हाउस आदि तो थे नहीं जहां साहित्यकारों का जमावड़ा होता. पाठकजी के 'पद्मकोट' के बड़े कमरे में ही छोटे-बड़े सब लोग नीचे बैठ जाते थे. सब अपना-अपना लिखकर लाते और सुनाते. पंतजी भी वहीं, मिले, निराला जी वहीं मिले. उन दिनों हम बहुत छोटे थे पंडित जी को पहली बार देखकर हमें हैरानी यह हुई कि वे हम महिलाओं-लड़कियों के साथ न बैठकर पुरुषों के बीच क्यों बैठे हैं. यह तो बाद में पता चला कि उनका पुरुषों में बैठना अनुचित नहीं था. हम लोगों को भी पाठकजी मौका दे देते थे. कहते थे—'अच्छा, नया क्या लिखा है? सुनाओ तो.' उनका यह अनुरोध हमें बहुत अच्छा लगता था. एक समय ऐसा होता है, ऐसा युग होता है, जब कोई कह दे कि अच्छा लिखा है तो मन खुशी से झूम उठता है. अगर कोई कह दे कि कुछ नहीं लिखा है तो मन भर जाता है. इसलिए हम कभी किसी के लिखे को बुरा नहीं कहते. हम जानते हैं कि इससे चोट लगती है. इसीलिए हम कहते हैं कि किसी की रचनाओं के बारे में लिखना है तो अच्छा लिखो, अच्छा नहीं लिखना तो लिखो ही मत. इस प्रकार, महादेवीजी अतीत की परत पर परत खोलती जा रही थीं. काल की अखंडधारा में निर्बाध तरती हुई. पर हमारी गर्दन तो काल के हाथ में थी. जिस पर टेप पर हमारी बातचीत रिकार्ड हो रही थी आखिर वह भी चूक गया और हम काव्याकाश से धरती पर आ गिरे.

देह और काल के बंधनों को तोड़, ससीम से निस्सीम हो जाने की विकलता उनके समूचे काव्य में व्याप्त है: **फिर विकल हैं प्राण मेरे! तोड़ दो यह क्षतिज में भी देख लूं उस ओर क्या है!/जा रहे जिस पंथ से युग-कल्प उसका छोर क्या है?/क्यों मुझे प्राचीर बन-कर/आज मेरे श्वास घेरे?**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

आरोपित ऊंचापन बहुत समय तक टिक नहीं पाता

इस सदी के चौथे दशक के अन्त से पूर्व (1938-39) लाहौर में 'हिंदी समाज' एक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था का रूप धारण कर चुका था. मैं उसका प्रधान मंत्री था. एक बैठक में मेरे निमंत्रण पर किशनचंदर और राजेंद्रसिंह बेदी दोनों एक साथ आये. अपनी कोई रचना तो उन्होंने नहीं पढ़ी, पर जो हिंदी रचनाएं पढ़ी गयी थीं, उनकी चर्चा में पूरी दिलचस्पी से भाग लिया. तब भी उन्होंने यही सलाह दी थी कि हिंदी और उर्दू का फासला और अधिक नहीं बढ़ना चाहिए. किशनचंदर और बेदी दोनों उस समय तक उर्दू साहित्य में सम्मान का स्थान प्राप्त कर चुके थे. वास्तव में किशनचंदर को यह एहसास हिंदी समाज में पढ़ी गयी कहानियां और कविताएं सुनकर ही हुआ था कि दोनों भाषाएं एक दूसरे के बहुत निकट हैं. उससे पहले उनकी धारण थी कि हिंदी संस्कृत के निकट की कोई बहुत कठिन भाषा है. उसी बैठक में ही उन्हें यह भी ख्याल आया कि उर्दू, पंजाबी और हिंदी का एक सम्मिलित कहानी संग्रह प्रकाशित होना चाहिए. इस दिशा में कुछ काम भी उन्होंने किया था.

तब से मैं निरंतर किशनचंदर के संपर्क में रहा. लाहौर से वह दिल्ली आल इंडिया रेडियो में काम करने चले आये थे. डायरेक्टर जनरल अताउल्लाह शाह बुखारी ने उन्हें उर्दू विभाग में ले लिया था. देश विभाजन के बाद वह बंबई चले गये– फिल्मी कहानियां और डायलाग लिखने के लिए.

क्रमशः किशनचंदर ने अपना कार्यक्षेत्र काफी बढ़ा लिया था. विचारों से वह कम्यूनिस्ट थे और इस बारे में काम भी करते थे, विशेषतः बौद्धिक मोर्चे मे संबंध में योजनाएं बनाने का. उर्दू के वह हामी थे और उनका निरंतर यह प्रयत्न रहा कि भारत में उर्दू जीवित ही नहीं, बल्कि शक्तिशाली भाषा बनी रहे. बहुत बार इस संबंध में वह मुझसे विचार-विनिमय भी करते रहे. फिल्मों के लिए वह लिखते ही थे. इस सब कामों के साथ किशनचंदर सृजनात्मक लेखन नियमित रूप से करते रहे. उनका सब से अधिक प्रिय क्षेत्र सृजनात्मक लेखन नियमित रूप से करते रहे. उनका सब से अधिक प्रिय क्षेत्र सृजनात्मक लेखन ही रहा. हिंदी उर्दू को एक दूसरे के निकट लाने का मैं प्रारंभ ही से हामी हूं.

विभाजन के बाद उर्दू को भारत में काफी बड़ा धक्का लगा था. विभाजन से पहले पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग की प्रमुख भाषा उर्दू थी. विभाजन के बाद इन तीनों

किशनचन्दर

क्षेत्रों में उर्दू की स्थिति एकाएक बहुत कमज़ोर हो गयी. पंजाब का जो अंश भारत में आया, उस पूरे क्षेत्र से लगभग सभी और दिल्ली तथा उत्तरी यू.पी. से बहुत से मुसलमान, जिनमें साक्षर अधिक थे, पाकिस्तान चले गये. पंजाबी, हिंदू और सिखों ने शीघ्रता से हिंदी तथा पंजाबी को अपना लिया. भारती संविधान के अनुसार उर्दू भारत की एक राष्ट्रीय भाषा (मेरा राय है कि संविधान में स्वीकृत सभी भाषाएं भारत की राष्ट्रीय भाषाएं हैं. हिंदी तथा अंग्रेजी भारत की संपर्क भाषाएं हैं) अवश्य है, पर उन दिनों यह पाया गया कि उर्दू पढ़ने वालों की संख्या में बहुत अधिक उत्तार आ गया है. यह स्थिति उर्दू-लेखकों के लिए निस्संदेह चिंताजनक थी. इस सिलसिले में किशनचंदर ख्वाजा अहमद अब्बास, अली सरदार जाफरी आदि बार-बार दिल्ली आया करते थे. मुझे भी उनकी बैठकों में बुलाया जाता था. इस उद्देश्य से यदि हिंदी और उर्दू के निकट आ जायें तो उर्दू लेखकों की रचनाएं उसी रूप में हिंदी पत्रों में छप सकेंगी. मैंने अपने इन मित्रों को बताया कि 1638 में हिंदी साहित्य सम्मेलन यह प्रस्ताव पास कर चुका है कि उर्दू ही हिंदी का एक रूप है, जैसे ब्रज, अवधी, मागधी आदि हिन्दी ही के रूप हैं. इस स्थिति में यदि उर्दू लेखक सरल भाषा में लिखेंगे तो उनकी रचनाएं हिंदी पत्र खुशी से उसी रूप में छापेंगे. बल्कि यदि उर्दू रचनाएं शक्तिशाली हुई, तो वे हिंदी के रूप को भी स्पष्टतः प्रभावित करेंगी.

परिणाम यह हुआ कि बहुत से उर्दू लेखक अपनी रचनाओं का नागरी लिप्यंतर हिंदी पत्रों को भेजने लगे थे और वे उसी रूप में प्रकाशित भी होने लगी थीं. कठिन उर्दू शब्दों का हिंदी अनुवाद या तो साथ दे दिया जाता था या मूल शब्द की जगह दे दिया जाता था.

अपने पत्रों में मैंने निरंतर किशनचंदर की बहुत-सी रचनाएं छापीं. उसी रूप में, जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है. उनकी वास्तविक आय फिल्मों से थी, पर हिंदी पत्रों तथा हिंदी में प्रकाशित उनकी पुस्तकों से भी उन्हें खासी अच्छी आय थी. बहुत से हिंदी लेखकों की अपेक्षा कहीं अधिक.

किशचंदर बहुत अच्छे दोस्त थे. दोस्तों के लिए वह कुछ भी कर सकते थे. उनके दोस्त भी उन पर जान देते थे. इसके साथ ही किशनचंदर अत्यधिक महत्वाकांक्षी भी थे. बड़े शाइस्ता ढंग से वह अपना प्रचार आयोजित और संगठित करते थे. आज की दुनिया में इस सबका लाभ भी है. हिंदी में भी अच्छे-अच्छे, यानी आज के खूब लब्धप्रतिष्ठ लेखकों ने भी ऐसा किया है. पिछली आधी सदी में निरंतर मैंने कितने ही हिंदी लेखकों को इस तरह के योजनाबद्ध प्रयत्न करते और उनमें से कुछ को यथेष्ठ सफलता प्राप्त करते भी देखा है. किशनचंदर को यह शिकायत नहीं हो सकती थी कि उन्हें यथोचित यश नहीं मिला. यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्लेटफार्म से उन्हें गालिब के समकक्ष पहुंचा दिया गया था– पर साहित्य के क्षेत्र में किसी तरह का आरोपित ऊचापन बहुत समय तक टिक नहीं पाता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथद्वारे की सिर चढ़ी राधा

अतीत के हादसों के कब्रगाह को कुरेदने में माहिर बाला दुबे के धारावाहिक आयोजनों— 'अनजानी इतिहास कथाएं' और 'गलियां जहां इतिहास कैद है' को सारिका के पाठकों द्वारा बेहद सराहना मिली थी. पिछले अंक से हमने इन्हीं का एक नया स्तंभ 'अनजानी प्रेम कथाएं' प्रारंभ किया है. प्रस्तुत है इसकी दूसरी किस्त.

राजस्थान का बृज-नाथद्वारा मथुरा से श्रीकृष्ण को यवनों के हाथों से बचाने को ही उन्हें यहां पधराया गया था. और फिर राजस्थान के आंचल में यह छोटा-सा बृज मंदिर आस्था का केंद्र बनता चला गया. मथुरा-शैली की आराधना रहस्य-लीला एवं सखीं-भाव फलने फूलने लगा. उन दिनों गोसाईं गोकुलस्य नाथद्वारा के महंत थे. वैष्णवों का वल्लभाचार्यी मत उन्हीं के निरीक्षण में पनप रहा था. 'पुरुष और प्रकृति' ही सृष्टि का आधार है '— इसी धारणा के हेतु नाथद्वारा में अनेक पुरुष कृष्ण रूप में और अनेक राधा उनकी संगिनी बनकर 'शक्ति-साधना' में लवलीन थे. आग और फूंस साथ रहकर भी नहीं सुलगें यह निःसंदेह एक सिद्धि ही तो थी, पर यह 'कामजित स्थिति' हरेक को प्राप्त भी तो नहीं सकती थी. खुले आम तो वह राधा-कृष्ण के निर्मल प्रेम का प्रदर्शन कर तो पर एकांत में मन उद्विग्न हो उठता और मनुष्य अपने असली रूप में आ जाता— एक जानवर मात्र, जो समाज के बनाये सीखचों में बंद रहता था. नाथद्वारे की भक्ति-शैली की सुगंध चारों तरफ बही. यही सुनकर जोधपुर के महाराजा विजय सिंह भी वहां आये. महंत गोकुलस्य के प्रभावशाली प्रवचन और फिर रंग-बिरंगी रास-लीला देखकर वे प्रभावित हुए. जगह-जगह राधा-कृष्ण की जोड़ियां और अपार प्रेम से लिप्त हाव-भाव देखकर महाराजा विजय सिंह का मन-सिंहासन डंवाडोल हो गया. और तभी उन्होंने निर्णय कर डाला कि वे उसी दिन से मांस-मदिरा का परित्याग करते हैं और राधा-कृष्ण की भक्ति को अपने जीवन की अमूल्य निधि मानते हैं. महाराजा विजय सिंह को 'पुरुष' रूप में स्वीकार करते ही गोसाईं गोकुलस्य को उन्हें 'प्रकृति' की जुगाड़ सतायी और उन्होंने अपने इस नये श्रीकृष्ण को एक बहुत ही मनभावनी राधा प्रदान की—गुलाब राय.

गुलाब राय हाड़-मांस का गुलाब ही था. रेशम जैसा शरीर, यौवन की सुगंध से सराबोर, दामिनी वर्ण, अमियां की फांकें जैसी आंखें. गुलाब राय का जब गाती तो मिश्री के कूंजे फूटने लगते. अपनी राधा को निहारकर कृष्ण-रूपी महाराजा विजय सिंह निहाल हो गये. फिर कुछ दिन वे मानों श्री कृष्ण ही बन गये हों— वैसे ही हाव-भाव, मान-मनौतियां, रास लीलाएं. राधा-कृष्ण लीला के हेतु उनका विवाह वैसे विवाह की ही मान्यता-श्रेणी में माना जाना चाहिए था— अग्नैध-प्रेम रहित, समाज द्वारा मान्य. पर एक महाराजा के लिए यह सब कुछ दरबारियों के लिए मान्य नहीं था. गुलाब राय किसी ओसवाल की बेटी थी और महाराजा विजय सिंह राठौर वंश के सिंह गोसाइयों ने लाख राधा-कृष्ण के अनुराग-रहस्य का बखान किया पर दरबारियों ने गुलाब राय को 'पासबिन' ही घोषित किया जो कि राजपूत चलन के अनुसार 'रखैल' मात्र मानी गयी है. दरबारी अपना ढोल पीटते रहे पर गुलाब राय ने अपने-प्रपंच में कुछ भी कमी नहीं की. दिल ब दिन वह महाराजा विजय सिंह पर छाती गयी और महाराजा उसके रूप की छांव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आत्मविमोर पड़े रहते. गुलाब राय ही उनके जीवन की राधा बन गयी थी और वे स्वयं रास बिहारी श्री कृष्ण. उन्हें संपूर्ण रूप से राधा-मय बनाकर ही गुलाब ने राज्य-रथ के घोड़ों की रास पकड़ना शुरू किया था.

पोखरन के सरदार सवाई सिंह के साथ मंत्रणा करके गुलाब ने अपने विश्वसनीय चाबुक-सवार भैरौ सानी को कर्त्ता-धर्त्ता बनाया. फिर धीरे-धीरे उसने जागीर और ठिकानों पर भी अपने पंजे जमाना शुरू किया था. गुलाब की बढ़ती पैंगें देखकर मारवाड़ के सरदार चौंके और उन्होंने इस छीना-झपटी के विरुद्ध आवाज भी उठायी.

और जब गुलाब ने महाराजा विजय सिंह से जन्मे अपने पुत्र तेज सिंह को राजसी हक दिलवाने की चाल चली, तब तो सरदार लोग भड़क ही उठे थे. महाराजा विजय तो इस कदर 'कलियुगी-कृष्ण' बन गये थे कि गुलाब की हरेक बात बगैर सोचे समझे मानने लगे थे. उनको अपने प्यार के मकड़-जाल में फंसाकर ही तो गुलाब ने अपने बेटे तेज सिंह को मेड़ता का जागीरदार घोषित करवा लिया था. मेड़ता का जागीरदार बहुत रुतबे का पदाधिकारी माना जाता था— स्वयं राजा के बाद पदासीन सरदार. इस घोषणा से राठौर सामंत भड़क उठे और वे सामूहिक विप्लव की योजना बना ही रहे थे कि भाग्य से तेज सिंह लड़कपन में ही मर गया.

और फिर समय-चक्र के साथ जोधपुर का यह कृष्ण बुढ़ापे की देहरी फलांग गया. शक्तिहीन, विवेकशून्य, गुलाब के स्नेह में लिप्त—महाराजा विजय सिंह अपने बाद युवराज घोषित करने में भी ढील दिखलाने लगा. उसके सरदारों ने फिर उसके पांचवें बेटे के लड़के भीम सिंह का नाम तजवीज किया था. महाराजा विजय सिंह बौखला गया और अपने सरदारों की बात काटने को कटिबद्ध हो गया. उस समय उसने फिर प्रश्नसूचक दृष्टि से अपनी राधा की ओर देखा. गुलाब ने तुरंत ही उसे नाम सुझाया— उसके छटवें बेटे के पुत्र मान सिंह का नाम.

गुलाब की चाल वैसे सधी हुई थी. उसने होल्कर की अहल्या बाई की नकल करनी चाही— पहले राजकुमार मान सिंह को गोद लेना फिर अपने गोद लिये बेटे की जगह राज्य की बागडोर संभालना. गुलाब जानती थी कि उसका कृष्ण अब पतझड़ का पत्ता रह गया है और कभी भी जिंदगी की शाख से गिरकर अलग हो सकता है. इसीलिए तो वह राजकुमार मान सिंह की संरक्षिका बनना चाहती थी.

7 नवंबर 1791.

इसी दिन गुलाब ने मान सिंह के आगे सरदारों को तिखाचा भरने की योजना बनायी थी. पर इसी दिन राठौर परिवार में विस्फोट हो गया और महाराजा के निकट सम्बंधी तक एक हो गये.

"हम इस पासबिन के गोद लिये इस लड़के के आगे सर नहीं झुकाएंगे— हम इस बांदी के दत्तक पुत्र को अपना युवराज कभी नहीं मानेंगे." जितने भी तलवार के धनी सरदार थे वे शहर छोड़कर दूसरे शहर जा पहुंचे.

इसके बाद खून-खराबा और षड्यंत्र का बोलबाला हो उठा. मारवाड़ के राजपरिवार के सामन्त अब लगातार हत्याएं कराने लगे. जब गुलाब चंडी-रूप में बिफरी तो उसने दरबार में आये बूढ़े मंत्री खूब चंद सिंघवी की हत्या ही नहीं करवायी बल्कि उसकी लाश को जंगली कुत्तों के आगे डलवा दिया. इसके साथ ही गुलाब ने खूब चंद के भाई बिजै चंद और उसके बेटे को भी मरवा डाला. यही नहीं, उसने खूब चंद के परिवार की औरतों और बच्चों को बेरहमी से पिटवाया और कारावास में बंद कर दिया. पांव तले आयी नागिन की भांति गुलाब ने फिर महाराजा विजय सिंह के एक छोटे भाई गुमान सिंह को जहर देकर भी मरवा डाला.

और तो और राधा के नाम को कलंकित करने वाली गुलाब ने एक और भी हरकत की जिससे राठौर सुलग गये. चंपावत के सरदार का नाम भी विजयसिंह ही था जिसे गुलाब ने प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अपना 'नया कृष्ण' भी बना डाला. उस रात जब एक राठौर सरदार ने उसे गुलाब के शयन-कक्ष में जाते देखा तब तो तूफान ही मच गया. सब सरदार लोग एक मत होकर चिल्लाने लगे "भले ही बांदी हो या रखैल पर क्योंकि वह हमारे महाराजा की भोग्या है वह हमें माननीय है हमारी माता के समान है. हम इस कलंक को बरदास्त नहीं कर सकते!" और गुलाब 'पासबिन' को सबक सिखाने की नीयत से ही उन्होंने चंपावत विजय सिंह के पास उसी का एक रिश्तेदार 4 जनवरी, 1792 को भिजवाया जिसने उसके सीने में खंजर उतार दिया. कत्ल करने के बाद वह रिश्तेदार भागकर बागियों की शरण में आ गया.

महाराजा विजय सिंह अपनी ही राजधानी में बेगाना बन गये और फिर कुछ महीने इधर-उधर भटक कर 20 मार्च 1793 को वापस जोधपुर के महल में आ गये. बूढ़े के सामने दो टके के सियार भी सीना फुलाकर घूमने लगते हैं. महाराजा विजय की जीवन-संध्या का अनुमान लगाकर ही सामंतों ने अपना आखिरी मोहरा बढ़ाया.

उन दिनों गुलाब शहर से बाहर अपने हजार-बारह सौ संरक्षकों के साथ एक बाग में रहती थी. सामंतों ने सबसे पहले इन संरक्षकों को फुसलाया, "तुम अपना बकाया वेतन हमसे ले लो और इस पासबिन का साथ छोड़ दो." पर वे संरक्षक नहीं माने. नतीजा यह हुआ कि सामंत-सेना ने ऊपर हमला बोल दिया. खूब लोहा बजा और दोनों तरफ से बीस-पच्चीस आदमी मारे गये. आखिरकार उन संरक्षकों ने स्वीकार कर ही लिया— "हमारी बकाया तनख्वाह दे दो तो हम चले जायेंगे." और सचमुच वे चले गये.

गुलाब राय फिर महाराजा विजय सिंह की अनुपस्थिति में एक गढ़ी में रहने लगी थी. राठौर सामंतों ने फिर एक और योजना बनायी थी. गुलाब को संदेशा भिजवाया— "महाराजा विजय सिंह ने तुम्हें याद किया है." इतना सुनते ही गुलाब राय ने पालकी मंगवायी और वह अपने कृष्ण से मिलने के लिए चलने को तैयार हुई. जैसे ही वह पालकी में चढ़ी कि किसी ने एक ही साथ में उसको निर्जीव बना दिया.

3 जुलाई को शहर में स्थित बालकृष्णमंदिर से लौटकर महाराजा विजय सिंह अपने किले वाले महल में आये. जब उनके कान में उनकी राधा के वध की भनक पड़ी तो वे विचलित हुए और रात के सवा बजे उन्होंने गुलाब की दोनों बांदियों किशोरी-मधोरी को बुलवाया. उनके ही मुंह से उन्होंने सब कुछ सुना. महाराजा विजय सिंह सिसकियां लेकर रोने लगे और फिर थोड़ी देर बाद मूर्छित हो गये. फिर तो जैसे वे पत्थर के हो गये हों. शून्य में टकटकी बांधे देखते रहते और 'गुलाब, गुलाब' बुदबुदाते रहते.

8 जुलाई को अपनी राधा को रटते-रटते वे सदा के लिए शांत हो गये. 'पुरुष और प्रकृति' का अनूठा मिलन हो ही गया जैसे आत्मा एक बार फिर हाड़ मांस के पिजड़े में आ गयी हो जीवन की रास लीला करने. □

चलते-चलते

एक व्यक्ति हॉस्पिटल के 'विशेष देखभाल कक्ष' में भर्ती था. उसी हॉस्पिटल में उसकी पत्नी नर्स थी. हर शाम की तरह वह नर्स की ही यूनीफार्म में अपने पति से मिलने पहुंची. कुछ देर बाद जब उसने जाने की इजाजत चाही तो पति ने उसे अपने बांहों में कस लिया. तभी सामने से गुजरते दो रोगियों ने यह सब देखा. दोनों चार कदम आगे बढ़े, फिर एक ने रुककर दूसरे से कहा, "क्यों नहीं हम भी कुछ विशेष पैसे खर्च करें और इसी तरह के विशेष देखभाल के लिए अपनी भर्ती 'विशेष देखभाल कक्ष' में करवा लें." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा के विरुद्ध

राजेंद्र राव

छोटे शहर का बड़ा लेखक

क्या छोटे शहरों में रहकर लिखने वाले लेखक 'बड़े' नहीं माने जा सकते? हिंदी कहानी का एक ध्रुव महानगरीय संत्रास है तो दूसरा आंचलिक या ग्रामीण प्रष्ठभूमि बीच में उपेक्षित रहकर बराबर कहानियां लिखने वाले छोटे शहर, शाहजहांपुर, के कथाकार हृदयेश ने 1951 में लिखना शुरू किया था. जीवन और साहित्य, दोनों में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए इस मध्यवर्गीय नौकरी-पेशा प्राणी ने जो संघर्ष जारी रखा, उसकी झलक उनकी कहानियों से मिलती है. 'हत्या', 'गांठ', 'सफेद घोड़ा काला सवार' और 'सांड' जैसे उपन्यासों के लेखक का हमारे कथा साहित्य में क्या योगदान है, इस पर विचार करने का कष्ट आलोचकों ने नहीं उठाया. 'अंधेरी गली का रास्ता', 'एक मरी हुई चिड़िया', 'हत्या' और 'बारात' जैसी कहानियों के माध्यम से हृदयेश की पाठकों तक सीधी पहुंच रही है इसलिये उनकी कृतियों के प्रकाशन का सिलसिला चलता रहा. उनकी रचनायात्रा अनवरत चल रही है. उनकी रचनाओं के माध्यम से छोटे शहर की जिंदगी के विभिन्न आयाम उभरे हैं और पाठकों ने चित्रित जीवनस्थितियों के प्रति संवेदनात्मक जुड़ाव का अनुभव किया है. अब समय आ गया है कि छोटे शहर के इस बड़े लेखक का ईमानदारी से मूल्यांकन किया जाये.

इसकी पहल भी छोटे शहर से ही हुई है याने शाहजहांपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'संदर्श' ने 'हृदयेश विशेषांक' प्रकाशित करके एक सराहनीय कार्य किया है, 267 पृष्ठ के इस अक में आत्मकथ्य, बातचीत, दूसरों की नजर में, परिचर्चा, समीक्षाएं, डायरी और पत्राचार खंडों में हृदयेश से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री दी गई है. सबसे अच्छी बात यह है कि इसे अभिनंदन ग्रंथ का रूप देने से भरसक बचा गया है और हृदयेश के रचनाकर्म और व्यक्तित्व का वस्तुपरक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है. मधुरेश का संस्मरण, गर्दिश के दिन, डायरी और पत्रखंड उल्लेखनीय हैं. रमेश उपाध्याय के 4-1-77 के लिखे पत्र का एक अंश देखिये— "अपने कहानी-संग्रह पर आपकी राय पढ़कर आश्चर्य नहीं हुआ, न दुख ही. दरअसल आप जैसी सोच-समझ के लोगों के लिए वे कहानियां हैं भी नहीं. 'प्रतिमान' के लिए भेजी गयी कहानी को भी आपने सामान्य और कमजोर लिखा है ---- अपने उपन्यास की आलोचना न सह पाने के कारण जिस आक्रोश में आपने यह पत्र लिखा है, उसी के कारण यह सब कुछ हुआ है ---- आप अपनी महानता में खुश रहें, यही आपके लिये ठीक है."

सुधीर विद्यार्थी से हुई बातचीत में समांतर आंदोलन के बारे में हृदयेश की दो टूक राय भी गौर तलब है, "कमलेश्वर के इस पत्रिका (सारिका) से हटकर फिल्म जगत में जाने के बाद फिर यह आंदोलन खत्म हो गया. कुछ कहानीकारों ने स्वयं को कमलेश्वर पर इतना आश्रित बना लिया था कि कमलेश्वर के 'सारिका' से अलग हो जाने पर उनकी स्थिति हिंदू विधवाओं जैसी हो गयी."

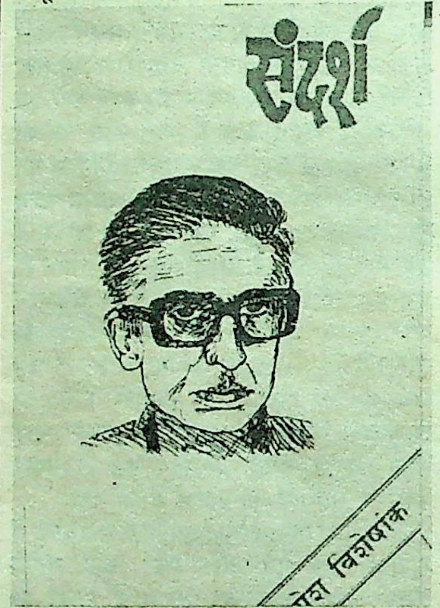

रचना, रचना, रचना

अधिकतर लघु पत्रिकाओं में सृजनात्मक साहित्य बहुत कम होता है और सैद्धांतिक लेख, उपदेशामृत आदि अधिक. अफलातूनी बहस-मुबाहिसों, तत्वचिंतन और आयातित वैचारिकी की भरमार अधिकांश पाठकों के सिर के ऊपर से गुजर जाती है. लघु पत्रिकाओं के सीमित साधनों को देखते हुए उन्हें पांडित्य प्रदर्शन का मंच बनाना कहां तक उचित है? अपवाद के रूप में दो सद्यप्रकाशित पत्रिकाओं के कहानी विशेषांक हमारे सामने हैं. राजस्थान के कांकरोली नाम के एक अचर्चित कस्बे से पिछले 21 वर्ष से लगातार प्रकाशित हो रही पत्रिका 'संबोधन' के कहानी विशेषांक 1987 में 17 कहानियां हैं— स्वयंप्रकाश, पुन्नी सिंह, बीर राजा, गुरुबचन जैसे जाने-माने लेखकों के साथ मदन मोहन, शोभानाथ शुक्ल, मधुसूदन पंड्या और गिरीश चंद्र श्रीवास्तव जैसे नये नामों की बहुत अच्छी कहानियां भी हैं. पंद्रह रुपये में यह पुस्तकाकार कहानी अंक किसी तरह भी महंगा नहीं है.

इसी क्रम में प्र.ले.सं. हरियाणा द्वारा प्रकाशित 'अथ' के कहानी विशेषांक में एक दर्जन कहानियां हैं, गिरिराज किशोर से लेकर सुकीर्ति गुप्ता तक. और ताज्जुब इस बात पर होता है कि बिना पारिश्रमिक दी जाने वाली भर्ती की कहानियां यहां नहीं हैं. यहां भी बाजी एकदम नये लोगों के हाथ रही है. हरजेंद्र

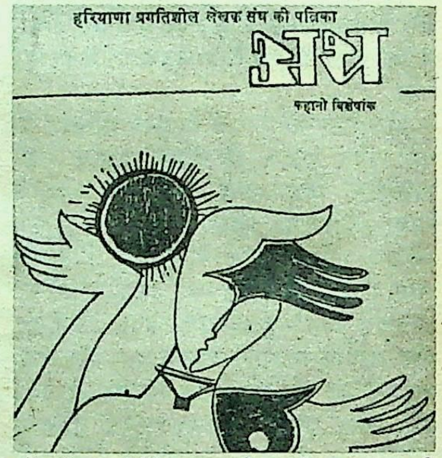

चौधरी, सुकीर्ति गुप्ता और अनिल ख्याल की आगामी रचनाएं पढ़ने की उत्सुकता रहेगी.

उन्माद के खिलाफ हिंदी कहानी का मोर्चा

गांधीजी के शब्दों में सांप्रदायिकता कोढ़ की तरह लाइलाज बीमारी है. यह बीमारी जिन जीवाणुओं से फैलती है उन्होंने हमारे सामाजिक ढांचे को अंदर ही अंदर घुन की तरह खाकर खोखला कर दिया है. 1947 से लेकर 87 तक सांप्रदायिक हिंसा-प्रतिहिंसा का सिलसिला चला आ रहा है. भूख-बेरोजगारी-गरीबी-शेषण-उत्पीड़न, सांप्रदायिक उन्माद के सामने ये सब महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्दे गौण होकर रह गये हैं. धर्म, भाषा, जाति और क्षेत्रीयता से संबंधित विवाद जानबूझकर इसलिये उठाये जाते हैं कि इससे हमारा ध्यान मूलभूत समस्याओं पर केंद्रित न रह पाये. लेकिन नवंबर 84 में जो कुछ हुआ, उसने हम सबको बुरी तरह आहत कर दिया. एक बार तो ऐसा लगा कि हमारी राष्ट्रीय मुख्यधारा बेगुनाहों के खून से रंग कर अपनी निर्मलता खो बैठेगी. चारों ओर हैवानियत के नंगे नाच को देखकर शर्मसार होकर बैठने के अलावा अगर कुछ किया जा सकता था तो वह हिंदी कथाकारों ने किया. उन्होंने असलाह के जखीरे के मुकाबले कलम उठाई. मानसिक संकीर्णता के और तंगदिली के खिलाफ लिखी गयी कहानियों को लेकर सारिका ने सांप्रदायिकता विरोधी अंक निकला. इस तरह सुस्त और परंपरावादी समझी जाने वाली हिंदी की कहानी विधा ने एक जोरदार पहल की. इसी क्रम में 28 हिंदी कथाकारों की दंगों की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखी गई कहानियों का एक महत्वपूर्ण कथासंकलन 'काला नवंबर' प्रकाशित हुआ है. इस संकलन का संपादन किया है सुरेंद्र तिवारी ने. इसमें

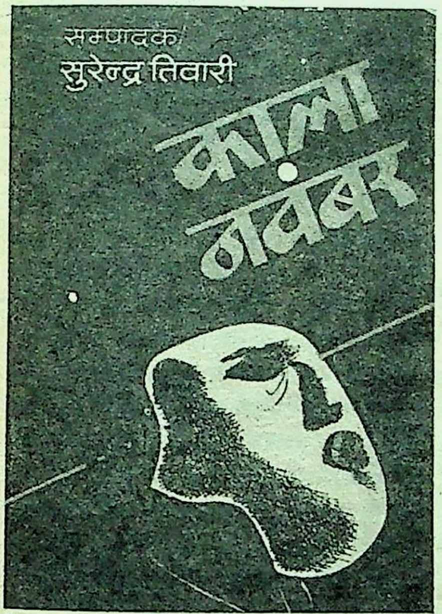

विष्णु प्रभाकर जैसे वरिष्ठ रचनाकारों से लेकर राकेश तिवारी जैसे युवा कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियां हैं जिनमें से अधिकांश चर्चित होती रही हैं. यहां हम 'सत्य को जीने की राह' (विष्णु प्रभाकर), 'एक मरा हुआ दिन' (महीप सिंह), 'भैय्या एक्सप्रेस' (अरुणप्रकाश) और 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है?' (स्वयंप्रकाश) का विशेष उल्लेख करना चाहेंगे. काश इसमें नये कथाकार अमरीक सिंह दीप की कहानी 'कहां जायेगा सिद्धार्थ' भी संकलित हो पाती. बंद हो गयी साप्ताहिक पत्रिका 'परिवर्तन' में छपी यह सशक्त कहानी सांप्रदायिकता विरोधी रचनात्मक हस्तक्षेप की जीती जागती मिशाल है.

इतना अच्छा कथाकार !

शाम हो गयी थी. एक टी.वी. प्रोड्यूसर और 'बड़े' प्रगतिशील कथाकार किसी भी सूरत में चाय पीने को तैयार नहीं थे. उनके हिसाब से सागर-ओ-मीना के सामने होने का समय था. रास्ता लंबा था. हमने सुझाव दिया कि राह में एक युवा कथाकार का घर पड़ता है, समय निकालकर उनसे मिल लिया जाये. बेमन से दोनों ने हामी भरी. युवा कथाकार उन दो महान हस्तियों को अपने घर आया देखकर हर्षित हुए. हमने परिचय कराया कि उनकी कहानियां अमुक-अमुक पत्रिकाओं में छपी हैं, चर्चित भी हुई हैं, लेकिन ऐसा लगा कि दोनों महानों ने उनकी कोई भी रचना नहीं पढ़ी थी.

युवा कथाकार ने हमारी ओर देख कर पूछा, 'बताइये क्या चलेगी, कौफी या चाय?' हमने दोनों साथियों के चेहरे पर विरक्ति के भाव उठते देखकर कहा, "भैय्या, ये लोग तो ठंडी चाय पीने के मूड में हैं."

"नो प्राब्लम. क्या लेंगे, व्हिस्की या रम? दोनों हैं." देखते ही देखते बीच की सजावटी मेज पर बोतलें, गिलास और तले हुए काजू लग गये. टी.वी. प्रोड्यूसर और प्रगतिवादी कथाकार की बांछें खिल उठीं. "अरे वाह! ये इतने अच्छे कथाकार हैं ये तो आपने पहले बताया ही नहीं था. इनकी कहानियां तो अब ढूंढ कर पढ़नी पड़ेंगी." उन दोनों ने सम्मिलित स्वर में कहा.

वहां से चले तो फिर एक बार शिकायत सुननी पड़ी. "ये इतने अच्छे कथाकार हैं यह आपने पहले क्यों नहीं बताया राजेंद्र भाई!"

पुरस्कार विजेता का जलवा

पिछले दिनों संपन्न हुई एक कथा प्रतियोगिता में पुरस्कृत एक युवालेखक से हमारे एक मित्र ने अपनी लघुपत्रिका के लिए कहानी भेजने का अनुरोध किया और कहानी उनके पास पहुंच भी गयी. हस्तलिखित रचना को पढ़कर वह हैरान रह गये. व्याकरण और हिज्जे की गलतियों की ऐसी भरमार थी कि अगर लेखक पुरस्कृत होने के कारण चर्चित और यत्रतत्र खूब प्रकाशित न हुआ होता तो रचना लौटती डाक से वापिस भेज दी जाती. प्रकाशित करने के पहले उस कहानी का लगभग पुनर्लेखन करना पड़ा. नमूने के तौर पर उनकी लिखावट की जो बानगी संपादक मित्र ने हमें दिखाई है उसका आनंद आप भी लें— रिछ (रीछ), दान्त (दांत), यानि (यानी), बडोल (बेडौल), प्रसंशा (प्रशंसा), जनलर (जनरल), वट (बट-अंग्रेजी का), पैन (पेन), एडिसन्ज (एडिशन्स), ठोडी (ठोड़ी), एस्ट्रे (एशट्रे), रिएक्सन, फराम, सिल्लेट, बढ़ाया, आदि. ☐

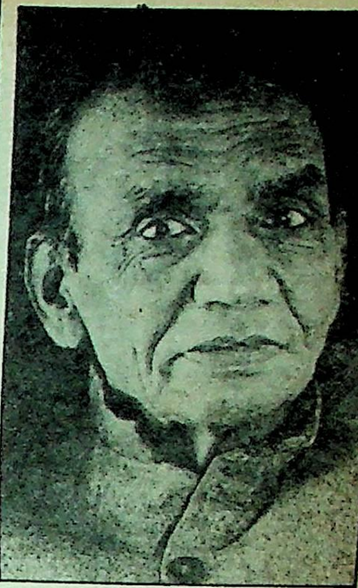

हंसराज रहबर

शुभकामनाएं

प्रख्यात कवि-कथाकार-विचारक हंसराज रहबर जहां इस माह अपने जीवन के पिचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं वहीं लंबे समय से देश के लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में अपने चित्रों और कला-आलेखों के जरिए छाये रहने वाले चिंतनशील कलाकार भाऊ समर्थ जीवन के साठ वर्ष पूरे कर रहे हैं. सृजन-संघर्ष को समर्पित इन विभूतियों को इस शुभ अवसर पर 'सारिका-परिवार' की शुभकामनाएं....कि ये साहित्य और कला को लंबे समय तक समृद्ध करते रहें.

भाऊ समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिप्रकाश त्यागी

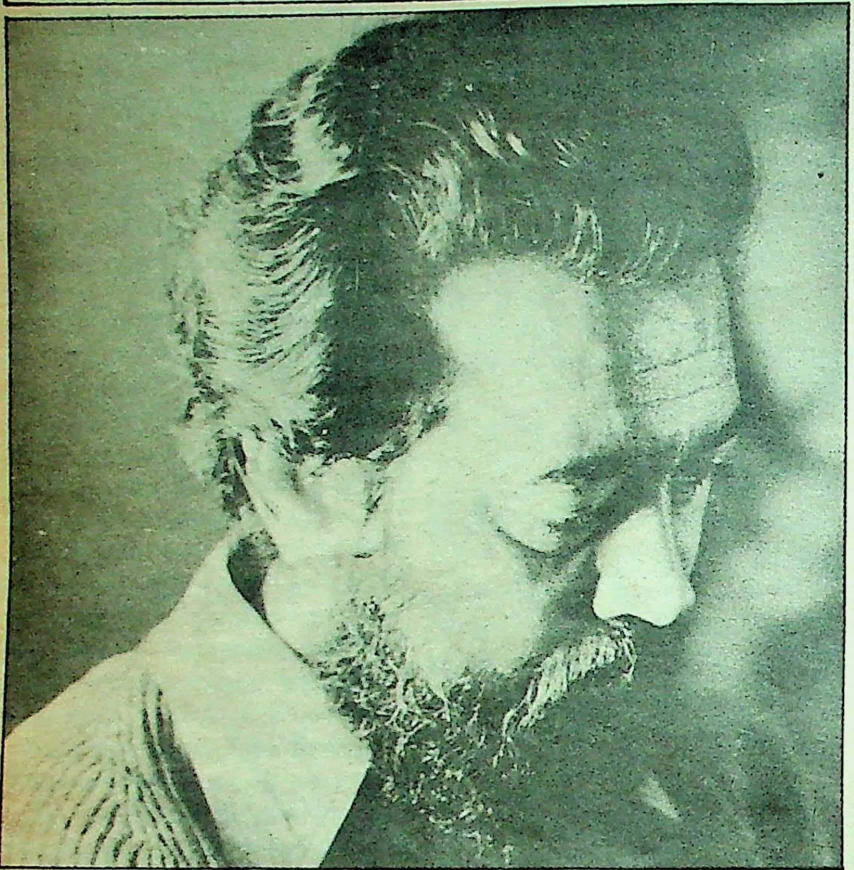

मानवीय संबंधों के एक्स रेज़

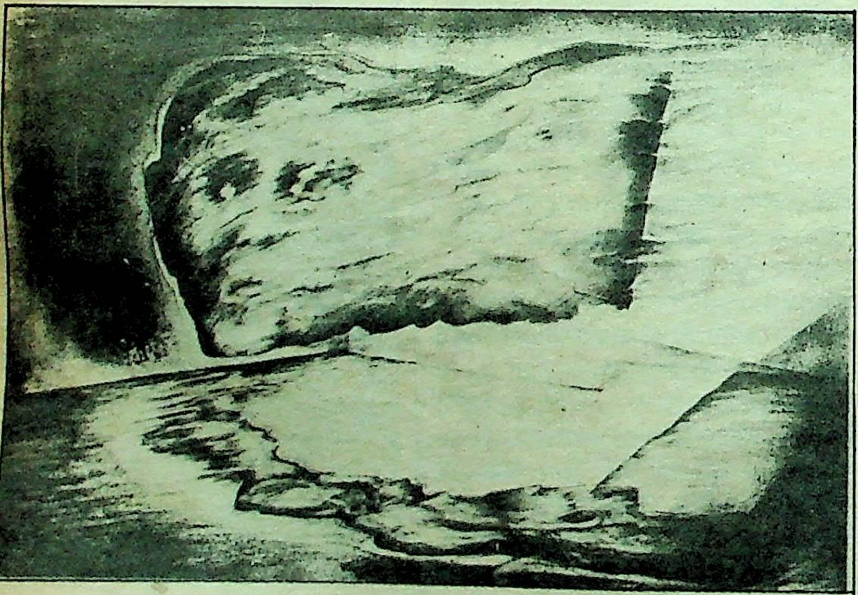

ऐसा जान पड़ता है कि सुविधाजीवी कलाकार अपनी शैली और सोच से इतना अधिक बंध जाता है कि वह नयी खोजों और मानवीय चेतना के आयामों से आंखें मूंदे रहता है. इस कारण उसकी कला को 'टाइप्ड' माना जाने लगता है. ये चित्रकार अपनी शैली की दक्षता और विकास पर इतना अधिक ध्यान देते हैं या तकनीक को इतना अधिक विकसित कर लेते हैं कि उसका संबंध मन से न होकर मस्तिष्क से हो जाता है जिसके कारण इनकी कला मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को संप्रेषित नहीं करतीं और सिर्फ दिमागी खुराफात भर दिखाई पड़ने लगती हैं.

दूसरी ओर अल्प आयवाले ऐसे कलाकार हैं जिनकी सोच मानवीय संवेदनाओं और जीवन से गंभीरता से जुड़ी हुई है. ये कलाकार जीवन के भौतिक स्वरूप को नहीं देखते, बल्कि वे जीवन से जीवन, और मानवीय संवेदनाओं को कला की गहराई से अभिव्यक्त कर मानसिक धरातल पर आसानी से संप्रेरित कर देते हैं. वे 'टाइप्ड' होना पसंद नहीं करते तथा लगातार कला के मानवीय आधार व आयाम खोजने में लगे रहते हैं. वे अपनी शैली में बदलाव व काम करने के तरीकों में बदलाव, तकनीक और माध्यम बदलने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते. वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि अगर उनकी कलाकृति विशिष्ट शैली के कारण बिकने लगी है, तो शैली में बदलाव होने के कारण शायद बिकना बंद हो जाये, यानी ये कलाकार शैली और तकनीक को अनुभूत भावनाओं पर हावी नहीं होने देते, भले ही आर्थिक और व्यावसायिक दबाव में काम कर रहे हों. वे कला को मानवीय भावनाओं से जुड़ा ऐसा माध्यम मानते हैं, जिसकी पहली शर्त संप्रेषणीयता होती है.

के. खोसा (सारिका, मई 1986) ऐसे चित्रकार हैं जो अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं, उनकी सोच और कला-यात्रा से सारिका के पाठक परिचित हैं ही परंतु पिछले दिनों के. खोसा ने अपने को सार्थकता के साथ जोड़ने और अभिव्यक्ति को संप्रेषित करने के लिए नाटक को भी माध्यम बनाया. एम. मुकुंदन की कहानी 'विराजपेट्टा से आयी औरत' के आधार पर मंचित नाटक में के. खोसा के चित्रों ने नाटक की गंभीरता को ही अभिव्यक्त नहीं किया. बल्कि नाटक के पात्रों की अभिव्यक्ति को भी सार्थकता प्रदान करते हुये, नये आयामों की खोज की. (सारिका, दिसंबर, 1987)

हाल ही में के. खोसा ने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए नयी तकनीक और माध्यम को आधार बनाया है. के. खोसा के प्रारंभिक दौर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

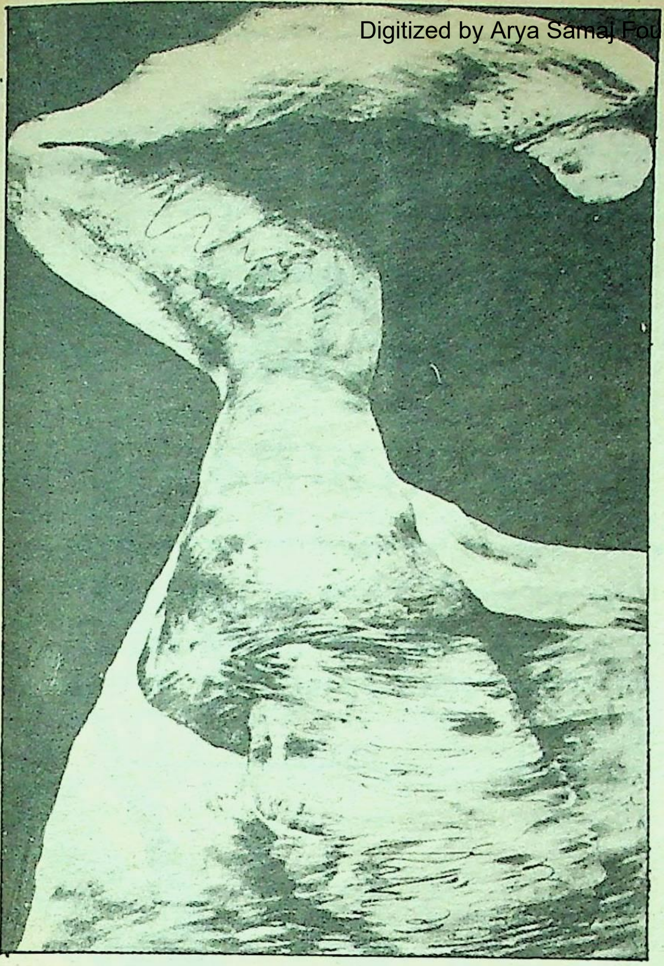

इरेजर और पैसिल

चित्र प्रकृतिजन्य रहस्यों से जुड़े रहे तो बीच के दौर के चित्र सामाजिक विसंगताओं को अभिव्यक्त करते रहे हैं, परंतु हाल ही में बने चित्रों का विषय एक ही है: नर-नारी संबंध जो व्यक्तिगत अनुभव से प्रभावित लगते हैं. के. खोसा का कला अनुभव विकसित होकर एक ऐसे व्यक्तिगत बिंदु पर पहुंचता है जहां यह व्यक्तिगत कला-बिंदु पूरे समाज को अनुभूत सत्य-सा प्रतीत होता है. यानी खोसा अपनी सोच की गहराई में अधिक संशलिष्ट और कला अभिव्यक्ति में अधिक सरल और सहज हुए हैं.

के. खोसा के नये चित्र श्वेत-श्याम रंगों में हैं. विभिन्न पैंसिल रंगों की सतहें से तैयार इन चित्रों में के. खोसा ने रंगों का प्रयोग नाममात्र को ही किया है. केनवास के स्थान पर ट्रेसिंग पेपर, प्लास्टिक कोटेड ट्रेसिंग पेपर और पतंग बनानेवाले कुरमुरे कागज पर पैंसिल द्वारा इन चित्रों की रचना की गयी है.

ट्रेसिंग पेपर के धरातल पर पैंसिल कहीं रेखा के रूप में उभरती दिखाई देती हैं तो कहीं पैंसिल रंग की सतहें हल्का और गहरा बनाती हुई नर-नारी देहाकारों को बादल-चट्टान, पानी और हवा में बदलती हुई, कठोर तथा तरल बनाती हुई आगे खिसकती हैं. ट्रेसिंग पेपर अपने पारदर्शीय भौतिक गुण के कारण फिल्म पर बनाये गये चित्रों जैसा प्रभाव पैदा करता है.

समकालीन युवा चित्रकारों में के. खोसा का नाम अगली कतार में आता है. के. खोसा ऐसे चित्रकार हैं जो अपनी शैली और तकनीक बदलते रहने के बावजूद अलग पहचान रखते हैं. यहां प्रस्तुत है इस माह होने वाली उनकी प्रदर्शनी के कुछ रेखाचित्र और हरिप्रकाश त्यागी की टिप्पणी...

जितनी सुनिश्चित है, संयोजन उतना ही संतुलित.

इन नर-नारी रूपाकारों के द्वारा के. खोसा ने बिस्तर पर घटनेवाली क्रिया-प्रक्रियाओं को खाली आंख या भौतिक दृष्टि से अभिव्यक्त नहीं किया है. उन्होंने सोच, अनुभव और कल्पना, के द्वारा मानसिक दुविधा, संतोष संताप और सम्मोहन को पवर्ताकार रूप में कागज पर निचोड़ा है इसलिए नर-नारी देहाकार कहीं बर्फ की तरह पिघलते हैं तो कहीं चट्टानों आकार लेकर हवाएं बादलों की तरह उड़ती-फैलती हैं.

के. खोसा अपने इन चित्रों के वातावरण से सुपरिचित हैं. बीच के दौर में बनाये चित्रों में के. खोसा स्पेस और दृष्टिगत बाहरी वातावरण को भी सुनिश्चित करते थे, तो इन चित्रों में बाहरी वातावरण की दृष्टिगत वस्तुएं न के बराबर हैं जो हैं वे भी इस वातावरण में अपना आकार फंसाती-रूप में ही ग्रहण करती हुई मुख्य विषय से अपना सार्थक तालमेल बिठाती हैं. भौतिक दुनिया की वस्तुओं से छुटकारा पाने के कारण खोसा बताते हैं, ''टुकड़ों-टुकड़ों में मुखौटे पहने आदमी को जान लेना, पहचान लेना ही मुश्किल है, इसलिए अभी तो मैं इस बिना मुखौटे पहने आदमी के सौंदर्य को महसूस करने और ईमानदारी से अभिव्यक्त करने में लगा हुं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

☐ वेदिका वेद
संप्रति : डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून, छात्र-संघ के अध्यक्ष. कथालेखन में विशेष रुचि.

पहाड़

वेदिका वेद

''शहर क्या होता है?'' बच्चा फिर पूछता तो स्त्री बताती कि ''जहां लोहे के ऊंचे ऊंचे मकान होते हैं, जहां गाड़ियां हर वक्त दौड़ती रहती हैं और जहां रात नहीं होती.''

सर्प की तरह बल खाती हुई सफेद पगडंडी पर सहसा रुककर जब स्त्री पीछे मुड़ती और अपनी भाषा में चिल्लाती तो बच्चा भाग-भागकर फिर से स्त्री के पीछे हो लेता. कभी वह उसके कदम से कदम मिलाने की कोशिश करता और फिर गिरते-गिरते बैठ जाता. तब उसे हल्की-सी झिड़की मिलती और वह फिर चुपचाप स्त्री की उंगली पकड़े चलने लगता.

बच्चा घुटनों तक झूलता हुआ मलेशिया का कुरता पहने था. उसके पांव नंगे थे और सिर के कुतरे हुए बाल ऐसे लगते मानो चूड़ाकर्म करने से पहले ही किसी दुर्भाग्य के कारण काटे गये हों. स्त्री का चेहरा किसी गहरे विशाद में डूबा हुआ था. उसने कमर में घास काटनेवाली दराती खोंस रखी थी. रास्ता मीलों से खामोश चला आ रहा था.

''ये देखो बोये, ये देखो!'' बच्चा पगडंडी के किनारे ठंडी, नम दीवारों पर खिले फयौंली के पीले-पीले फूलों को देखकर चहक उठता और बड़ी मुस्तैदी के साथ झटपट उन्हें तोड़ने में लग जाता. यह देखकर स्त्री माथा पीट लेती और मुंह से कर्कश गालियां उगलती पीछे लौटती और फिर उसे खींचकर चलना शुरू कर देती. गालियां देते-देते अचानक स्त्री अपनी ही कही बातों पर कुछ सोच पड़ती और फिर सहसा फूट-फूटकर रोने लगती. पहाड़ पल भर में द्रवित हो उठते. बच्चा कुछ न समझ पाता. उसका चेहरा भी तब जैसे रोने-रोने को हो आता. वह एक बार स्त्री के

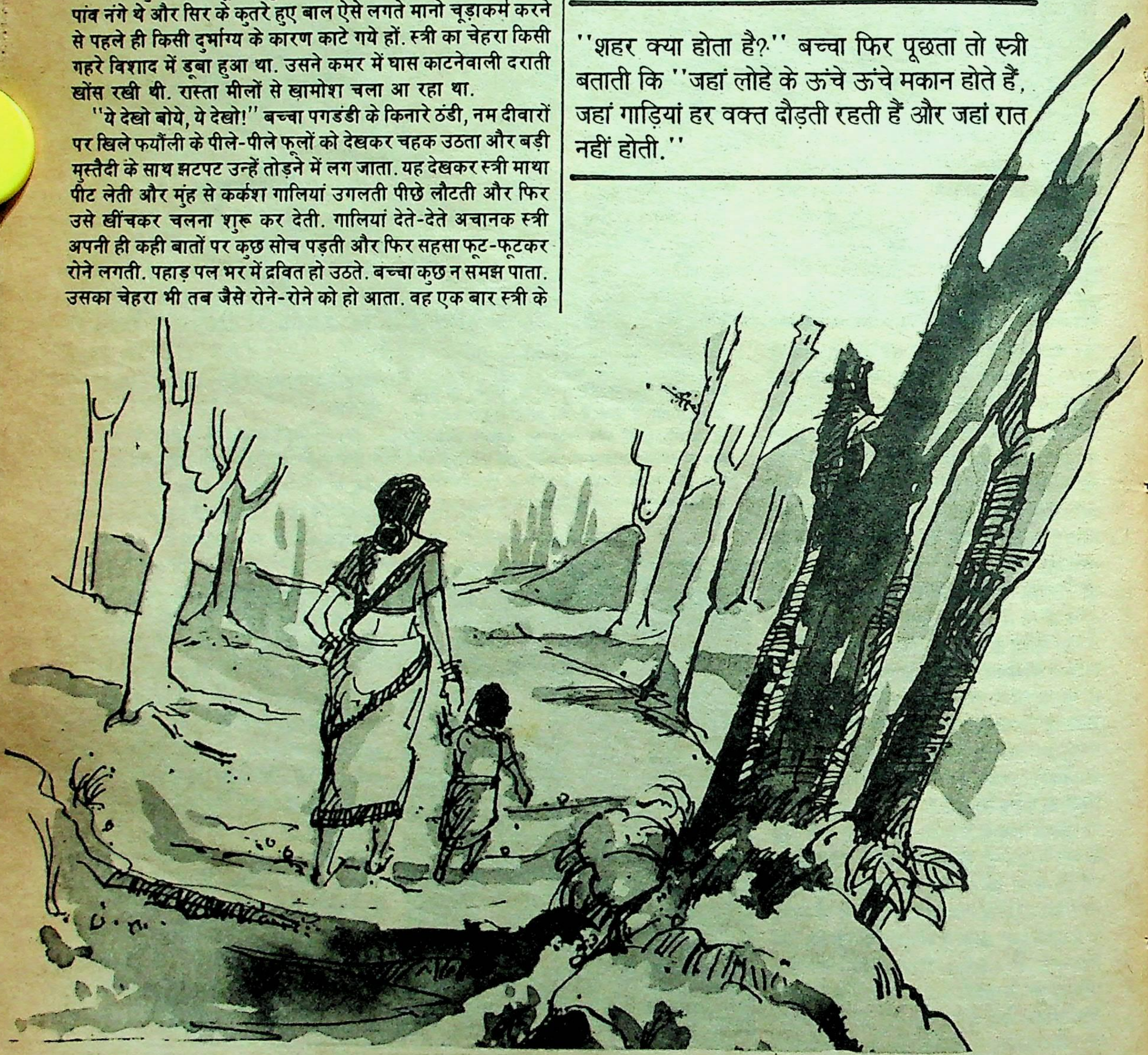

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवांकुर

देश के तमाम महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के जरिये आज कैसी प्रतिभाएं सामने आ रही हैं, लेखन के प्रति उनमें कैसा लगाव है...और रचनात्मकता के संदर्भ में वे क्या सोच रहे हैं. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसी नयी प्रतिभाओं की तलाश करते हुए हर माह एक उभरते रचनाकार की कहानी प्रकाशित की जायेगी. रचना भेजते समय यह न भूलें कि अपने विभागाध्यक्ष अथवा संस्थान के प्रधान का इस आशय का प्रमाण पत्र भेजना अनिवार्य है रचनाकार संस्थान में अध्ययनरत है और 'सारिका कहानी मंच' का सदस्य है.

यदि आपकी संस्था में 'सारिका कहानी मंच' नहीं है और आप विधिवत इसका गठन करना चाहते हैं तो 'नवांकुर' स्तंभ के कूपन की कटिंग लिफाफे पर पते के साथ चिपका कर संपादक से पत्र व्यवहार करें? रचनाएं भेजते समय भी कूपन का प्रयोग अनिवार्य है.

विशाद भरे चेहरे की ओर देखता तो दूसरी बार मुठ्ठी में फंसे अपने फूलों पर. कुछ देर बाद स्त्री उसे कंधे में बिठाये चलने लगती है और बच्चा तब मजे से दोनों तरफ अपने पावों को झुलाता उसकी कानों में लटकती नकली बालियों से खेलने लग जाता.

वे जब अपने गांव से चले थे तो स्त्री के बूढ़े और अशक्त ससुर व गांव के एक भले कुत्ते ने काफी दूर तक उन्हें विदाई दी थी.

''अब मैं तुम्हें देवी चंद्रबदनी के भरोसे छोड़ता हूं!'' विदा होते वक्त बूढ़ा आसमान की ओर देखते हुए बच्चों की तरह रो पड़ा, पर उसकी आंखों के आंसू बीते हुए महीनों ने सोख लिये थे. स्त्री ने सिसकियां भरी थीं और बिछड़ते हुए सिर्फ इतना ही कहा था, ''अपना खयाल रखना ज्यू!''

धीरे-धीरे गांव लुका-छिपी करता दूर होता गया और फिर देखते-देखते अचानक पहाड़ी के पीछे सरक गया. ब्यूंल, तिमले, बयड़ व आम के सगे से पेड़ एक-एक कर पीछे छूटते चले गये. कुत्ता भी काफी दूर तक उनके साथ चला और फिर उसी तरह चुपचाप पैदल वापस लौट गया.

पतझड़ के इन अंतिम और उदास दिनों में मैदानों की तरफ से धीरे-धीरे वसन्त शुरू होने लग गया था. और दूर तलक पहाड़ की ढलानों में गुमसुम से खड़े पेड़ों की नंगी शाखाओं पर श्वेत हरियाली लिये नन्हीं-नन्हीं कोंपलें फूल रही थीं. पगडंडी के ऊपर जब कभी-कभार हल्की-सी हवा चलती तो इक्का-दुक्का पेड़ों में फड़फड़ाकर पीलापन लिए हुए वे पत्ते गिर-गिर पड़ते जो टहनियों से नाता तो कभी का तोड़ चुके थे लेकिन हवा की हल्की-सी थपकी की इंतजार में बस, अभी तक चिपके हुए थे और फिर हवा में तैरते-लुढ़कते वे दूर अनंत में विलीन हो जाते.

''हम कहां जा रहे हैं? क्या बताया था तूने?'' बच्चा बार-बार सहज तोतलेपन से अपनी भाषा में जब स्त्री से पूछता तो स्त्री हमेशा ही एक थका हुआ सा जवाब देती, ''हम शहर जा रहे हैं.''

''शहर क्या होता है?'' बच्चा फिर पूछता तो स्त्री बताती कि ''जहां लोहे के ऊंचे-ऊंचे मकान होते हैं, जहां गाड़ियां हर वक्त दौड़ती रहती हैं और जहां रात नहीं होती.''

''पर हम वहां जा क्यों रहे हैं?'' बच्चा जब यह पूछ बैठता तो स्त्री कोई जवाब नहीं दे पाती. वह चुपचाप जमीन को घूरती हुई चलती रहती और सहसा किसी गहरे सोच में फिर से डूब जाती. बच्चा यह सब देखकर चुप हो जाता. किसी गहरी आशंका के कारण जैसे तब वह डर सा जाता और घाटियों की तरफ अपनी उदास नजरें छुपा लेता.

''मैं तो वापस गांव जाऊंगा!'' रुआंसा होकर कुछ देर बाद वह स्वयं ही नाराजगी से भर उठता अपना मुंह फुला लेता पर स्त्री कुछ नहीं कहती...कुछ भी तो नहीं.

काफी दूर तलक वे खामोश पहाड़ों के साथ चलते चले जाते हैं. 'सरग ददा पाणि-पाणि!' की आवाज करता चोल पक्षी आसमान में उठता और पंख फैलाये घाटी के ऊपर स्थिर हो गया.

''वो देखो, वो देखो!'' बच्चा उछल पड़ता है और स्त्री के पांवों पर लिपट-लिपटकर अपनी ताकत भर से उसे रोक लेता है. फिर जब वे चलने लगते हैं तो स्त्री उसे बताती है कि वह प्यासा पंछी है जो पानी ढूंढ रहा है. भगवान ने उसे शाप दिया है इसलिए कि उसने अपने बैलों को पानी नहीं पिलाया.

फिर बच्चा चोल पक्षी, भगवान और बैलों के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछता रहता है.

''पर क्या अब हम वापस नहीं लौटेंगे?'' बच्चा चिंतित स्वर में पूछ बैठता तो स्त्री भोलेपन से उसे जवाब देती, ''नहीं छोरे, हम लौटेंगे! तब तक दादा जो हमारी बाट देखता रहेगा.''

''और दादा का तंबाकू अब कौन भरेगा?'' बच्चा अचानक जिज्ञासा से पूछ बैठता है तो स्त्री की हंसी छिटक जाती है. बच्चा किलकारी मारता, ताली पीटता उछल पड़ता है. उसने पहली बार मां का हंस पड़ता हुआ चेहरा देखा जो उसे बहुत ही सुंदर और भला लगा. उसे जैसे तुरंत ही आभास हो आया कि उसने कोई बुरी बात नहीं पूछी है लेकिन स्त्री का हंसमुख चेहरा फिर उदास हो जाता है और फिर देखते-देखते मुरझा जाता है.

ढ़लान के बाद गहरी घाटी शुरू हो जाती है. छोटे-बड़े असंख्य पत्थरों के बीच से दूधिया झाग उगलती नदी की आवाज से संपूर्ण घाटी एक विचित्र खामोशी में डूब जाती है. सामने नदी के पार छाया की हल्की-सी लंबी चली गयी रेखा बताती है कि दिन ढलना शुरू हो गया है. फिर नदी के किनारे-किनारे जंगल को छूती हुई पगडंडी से वे तेज-तेज कदमों से आगे बढ़ जाते हैं.

कुछ ही दूर रास्ते के किनारे पर पेड़ के एक बड़े से तने को देखकर बच्चा उंगली छुड़ाकर भागता है और पलभर में उस पर बने बड़े से छेद से दूसरी तरफ निकल जाता है. स्त्री भागते हुए दूसरी तरफ सहसा उसे पकड़ लेती है और फिर एक हल्का-सा थप्पड़ लगाकर उसे खींचते-खींचते ले चलती है. बच्चा रो पड़ता है. उसकी आंसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें झरने की तरह गालों से नीचे ढलकने लगती हैं और उसके गाल लाल हो उठते हैं. आसपास का वातावरण कुछ देर के लिए करुण हो जाताहै और हंसुर, किनगोड़े की झाड़ियों के ऊपर चिड़ियों की चहचहाट सहसा रुक जाती है. फिर काफी दूर तक बीच-बीच में बच्चे का रोता हुआ अलाप सुनाई देता रहता है.

''तुझ छोकरे के लिए ही मुझे यह दिन देखने पड़ रहे हैं.'' स्त्री चलते-चलते कहने लगती है, ''अगर तू ही न होता तो...'' सहसा स्त्री सहम जाती है और फिर अपनी किस्मत को दोष देते-देते उसकी आंखें नम हो उठती हैं.

''क्या उस पर किसी ने कुल्हाड़ी चलायी थी?'' तभी बच्चा एक हाथ से अपने आंसू पोछते हुए सिसकते-सिसकते पूछ बैठता है.

''नहीं! वह छोटे से ही ऐसा रहा होगा.'' स्त्री शांत भाव से जवाब देती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और बच्चा स्त्री के पीछे खिंचते-खिंचते फिर उसी तरह मनचाहा रोना रोने लगता है.

कुछ देर बाद एक घने और अंधेरे जंगल के बीच से वे जल्दी-जल्दी पग भर रहे होते हैं, जैसे शाम होने से पहले ही वे कहीं पहुंच जाना चाहते हों. फिर देखते-देखते वे दूर होते चले गये और तरह-तरह के कोलाहल से पल भर के लिए ठिठक गया जंगल फिर से डरावना लगने लगता है.

अंधेरा होने के कुछ पहले ही वे ढलान पर बसे छोटे से गांव में दाखिल हो जाते हैं. एक साथ कई कुत्तों के भौंकने की आवाजें आती हैं जो फिर क्रमशः धीमे होने लगती हैं. और फिर पत्थर के बने एक घर के बाहर वे सहमे से खड़े दिखाई देते हैं. क्षण भर बाद ही एक बुढ़िया लकड़ी के सहारे बाहर निकलती है और गहराई से आगंतुकों को पहचानने की कोशिश करते हुए उनसे नाम-पता पूछती है. स्त्री झिझकते-सहमते अपनी भाषा में कुछ कहती है फिर सहसा रुककर बच्चे की ओर देखती है. बच्चा फौरन अपने दादा का नाम बता देता है. सुनते ही वह उनकी ओर बढ़ जाती है और स्त्री को बच्ची की तरह अपने अंक में समेटे फफक पड़ती है. काफी देर तक बुढ़िया और स्त्री का सामूहिक रुदन सुनाई देता है. फिर बुढ़िया बच्चे की ओर झुककर उसका माथा चूमने लगती है और उसके खुरदरे सर पर बार-बार हाथ फेरते हुए रुआंसे स्वर में बुदबुदाती है, ''निरभागे! तूने कैसे अपने बाबू को डस लिया!''

बच्चा चुप रहता है. घने अंधेरे की तरह एक अपराध भाव उसके चेहरे पर छा जाता है. फिर कुछ देर बाद वे अंदर चले जाते हैं.

थोड़ी देर बाद ही एक बूढ़ा और एक जवान लड़का मिट्टी से सने कहीं बाहर से आते हैं और फिर लोहे के अपने औजारों को छान के बाहर रखकर उसी घर में दाखिल हो जाते हैं. स्त्री का क्रंदन फिर सुनाई देता है. फिर धीरे-धीरे शांति छा जाती है.

कुछ देर बाद धीमी-धीमी बातचीत सुनाई देने लगती है.

स्त्री बताती है कि, ''शहर से उन्हें पोस्टकार्ड आया है. वकील ने उसे बुलाया है.''

फिर लड़के की आवाज सुनाई पड़ती है जिससे पता लगता है कि वह कुछ कानूनी बातें बता रहा है.

''सुनकर हमें बहुत दुख हुआ. लेकिन ईश्वर के आगे हम बहुत छोटे हैं.'' बूढ़े की भर्रायी हुई आवाज सुनायी पड़ती है.

स्त्री बताती है कि, ''पिछली दीवाली में उन्होंने घर आने को कहा था उसने एक दिन पहले ही वे रात को पत्थर लादे जब खान से उतर रहे थे तो सीधी उतराई वाली पगडंडीनुमा सड़क पर एक किनारे टायर पड़ते ही जमीन धंस पड़ी और ट्रक ने नीचे की तरफ लुढ़कना शुरू कर दिया. फिर ट्रक ने कई पलटे खाये और...'' स्त्री सुबक पड़ी.

बूढ़े ने उसको फिर ढाढस बंधाया और ईश्वर का नाम लेकर मृत आत्मा के लिए शांति की कामना की.

कुछ देर बाद रुंधे स्वर से स्त्री फिर बोलने लगी, ''नदी के दूसरी तरफ बसे गांव के लोगों ने पहाड़ी पर से किसी भारी चीज के गिरने की आवाज सुनी तो मशालें जलाये जंगल से गुजरते हुए वे नदी की तरफ उतर पड़े. उन्होंने वहां काफी खोजबीन की. फिर रात ही उन्होंने नजदीक शहर में घटना की खबर भिजवायी. सुबह जाकर ही मालिक और दूसरे लोग वहां पहुंचे लेकिन मटमैले पानी और तेज बहाव के कारण कुछ पता नहीं लग पाया....सारी पहाड़ी पर पत्थर और कांच के टुकड़े बिखरते चले गये थे. एक झाड़ी पर एक पोटली अटकी हुई मिली जिसमें उनके कपड़े थे.''

फिर कुछ देर तक कमरे में खामोशी छा जाती है जैसे दुःख के अथाह सागर में सारा परिवार डूब गया हो. कमरे में रोशनी दप-दप करने लगती है जो थोड़ी देर बाद अपने आप ही फिर ठीक हो जाती है. सामने छान से बैलों के रंभाने की आवाज आती है.

बाद में स्त्री खानों के मालिक का कुल नष्ट हो जाने की मनौती करती रहती है.

पहाड़ों में डैने फैलाये बाज की तरह जल्दी ही रात उतर आती है.

फिर देखते-देखते गांव, पहाड़, घाटियों, जंगल...सब कुछ काले और डरावने अंधेरे में खो जाते हैं लेकिन दूर घाटियों के बीच नदी का पानी निरंतर शोर गुल करता निस्तेज खामोशी को चीरता हुआ मैदानों की ओर भागता रहता है...भागता रहता है. रात गहरी होते ही टीं-टीं की आवाज करते पक्षियों का झुंड कतारबद्ध आसमान में दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर दौड़ जाता है और अंधेरे में ही पत्तों में छुपी कफुआ चिड़िया चिल्लाने लगती है— ''फाल्गुन गया, चैत आया, काफल तक पक गये लेकिन मैंने नहीं चखे!''

सोने से पहले स्त्री सोचती है कि सुबह छह बजते ही अब उन्हें बस पकड़कर फिर से आगे की ओर चल देना होगा, एक भारी-सा डर उसके सीने में बैठ जाता है.

बच्चा, जो बिना कुछ खाये ही बहुत पहले सो गया था, एक सपना देखता है कि वह एक बड़े से लोहे के अहाते में दुबका ऊंघ रहा है और स्त्री धीरे-धीरे सांस लेती हुई गहरी निद्रा में देखती है कि कोर्ट में तरह तरह के कागजों पर उसके अंगूठे के छापे लगवाये जा रहे हैं और फिर वकील कहता है कि उसे दो महीने बाद फिर आना होगा.

घने अंधेरे में छुपी कफुआ चिड़िया फिर बोलने लगती है, तब से निरंतर करुणा स्वर में बोलती रहती है.

''इस बार पहाड़ों में गर्मी लेकर आयेगा—बसंत!'' क्षण भर के लिए नींद से जग गये लोग सोचते हैं और घाटी की तरफ नदी का शोर और अधिक गहरा हो जाता है. □

परिवर्तन

श्याम बिल्लौरे

उस दिन अपनी परिचित-चींटी को रास्ते में रोककर मैंने कहा, ''आजकल तो तुम्हारे कीट-पतंग जगत में परिवर्तन की लहर-सी आयी हुई है.''

चींटी ने शक्कर का दाना एक ओर रखकर पूछा, ''भला वह कैसे?''

मैं बोला, ''देख रहा हूं कि तुममें से कई चींटियां आटे और शक्कर का स्टॉक अपने घर में जमा करने के बजाय उन्हें गरीबों में खुले हाथों बांट रही हैं. एक जोंक प्याऊ खोलकर बैठी है. कुछ तितलियां फूलों का रस चूसने के बजाय पौधों पर पानी छिड़क रही हैं. गुबरैले साफ सफाई में जुटे हैं. घोंघा दौड़कर लोगों के काम कर रहा है. यहां तक कि मच्छर कुनैन बांट रहे हैं. और कुछ खटमल रक्त दान भी कर रहे हैं.''

आगे पूछा, ''आदतों में यह बदलाव कैसा? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम लोगों में भी किसी भगवान, महर्षि, बाबा या योगी का अवतार हो गया है, और उसके उपदेशों के कारण आधार और विचार-परिवर्तन की यह क्रांति घटित हो रही है?''

चींटी बोली, ''जी ऐसा तो कुछ नहीं है. हां, याद आया, हमारे यहां अगले महीने आम चुनाव जरूर हो रहे हैं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

प्रेमचंद का कत्ल हो रहा है

दूरदर्शन पर आजकल प्रेमचंद की कहानियों का साप्ताहिक कत्ल हो रहा है और प्रेमचंद की परंपरा में पलने-पुसने वाले एवं उसे आगे बढ़ाने का सच्चा संकल्प करने वाले लोग इस कत्ल को हर हफ्ते देख रहे हैं. इससे पहले 'अमृता' में कुछ महाकवियों की कविताओं की साप्ताहिक बेइज्जती की जाती रही. किंतु तमाम संवेदनशील लोग और रचनाकार सदा की तरह शुतुरमुर्गी मुद्रा अपनाये रहे. संचार माध्यमों के बिना जिनका काम ही नहीं चलसकता, ऐसे साहित्यकर्मियों की यह शुतुरमुर्गी मुद्रा माध्यमों और साहित्य के अंतः संबंधों पर एक शोचनीय टिप्पणी है.

प्रेमचंद की कहानियों की दूरदर्शन पर प्रस्तुतियां अक्सर होती रही हैं. कई बार उनके अच्छे नाट्य रूपांतर भी दिखाये गये हैं. किंतु हिंदी के इस कथा-पितामह के साथ प्रायः अन्यान्य ही हुआ है. 'जेवर का डिब्बा' (नाटक) और 'सद्गति' (टेली फिल्म) को या रघुवीर सहाय द्वारा नाट्य रूपांतरित की गयी एक अन्य कहानी की प्रस्तुति को छोड़ दें तो प्रेमचंद के नाम पर हमें जो कुछ दिखाया जाता रहा है, वह उनको व्यर्थ बना डालने वाला है.

प्रेमचंद की कहानियों में वर्णनात्मकता और अकृत्रिम नाटकीयता है. उनके चरित्र दृश्य प्रस्तुति के लिए अतिरिक्त श्रम की, कल्पना एवं प्रतिभा की वास्तविक मांग करते रहे हैं. प्रेमचंद ने अपनी कथायें जिस वक्त लिखीं उस वक्त संचार माध्यमों का इतना जोरनहीं था. यद्यपि फिल्मों में 'पटकथा' पर उतना स्पष्ट जोर उनके समय में शुरू नहीं हुआ था, फिर भी हर फिल्म को एक अच्छी पटकथा का आधार जरूरी तो होता ही था. उनके फिल्मों में असफल रहने के अन्य कारणों में एक कारण यह भी रहा कि वे कथाकार थे, पटकथा लेखक नहीं.

प्रेमचंद की कहानियों को यदि हम फिल्म बनाने के लिए चुनें तो प्रथमतः हम निराश होते हैं क्योंकि वहां चाक्षुष दृश्यों के प्रति वैसी सचेतनता नहीं दिखती. दृश्य बांधते हुए भी, उनकी कहानियों में बहुत कुछ पाठक के सहज ज्ञान और कल्पना पर छोड़ दिया जाता है. दृश्य विवरणों, नाट्य प्रसंगों के बीच पात्रों, परिस्थितियों और कथा-उद्देश्य को समझाने वाले नीति वाक्य भी बीच-बीच में होते हैं. यह पुरानी किस्सागोई की शैली है जो प्रेमचंद अत्यंत सहजता से इस्तेमाल करते हैं. प्रेमचंद की कहानियों का ताना बाना इस तरह कई रंगों वाला है. एक ही वक्त में वे यथार्थवादी और आधुनिक हैं, वहीं नाटकीयता लिए भी हैं, कहीं उसमें विवरणात्मकता है, कहीं दृश्य-व्यंजना, कहीं सूक्तियां चलती हैं तो कहीं सांकेतिकता. और ये तमाम बातें उनकी तमाम कहानियों में मौजूद हैं. ऐसे में उनके कथा के मर्म को समझना ही काफी नहीं, उस कहानी को उतनी ही मार्मिकता के साथ रूपांतरित करने की क्षमता भी बेहद जरूरी है. इसीलिए, 'सद्गति' जैसी अत्यंत लघु कहानी में भी सत्यजित एक महाकाव्यात्मक विस्तार देख लेते हैं और वैसी पटकथा लिखकर उसे फिल्माते हैं.

'प्रेमचंद की अमर कहानियां' में न केवल कथा संकलन मूर्खतापूर्ण हैं बल्कि उनकी प्रस्तुति और भी भयावह है. वहां ईदगाह, गुल्ली डंडा, मंत्र, मूठ, कर्ज जैसी कहानियां तो ले ली गई हैं किंतु इन कहानियों को ऐसी दो कौड़ी की 'पटकथाओं' में बदल लिया गया है कि मूलकथा की आत्मा का दूर-दूर तक पता नहीं चलता. पटकथा लेखक दीपक (भगवान जाने कौन सज्जन हैं या थे!) ने सबसे बड़ा काम यह किया है कि पटकथा लिखने के बहाने उन्होंने सबसे पहले प्रेमचंद की कहानियों की आत्मा का वध कर डाला है. आप चाहे कोई भी प्रस्तुति ले लें, हर बार प्रेमचंद की एक कहानी का खुले आम 'वध' उन्होंने किया है, और रहा सहा क्रिया-कर्म अमृत नाहटा जी के कर कमलों से हुआ है.

प्रेमचंद

'ईदगाह' प्रेमचंद की सचमुच अमरकथा है किंतु वह क्यों है यह नाहटा को नहीं मालूम. न वह बच्चे की दुनिया रच पाती है और न बुढ़िया की तरफ से करुणा पैदा कर पाती है. वह 'ईदगाह' न रहकर, नाहटा जी की ईद बन जाती है. 'मंत्र' कहानी में तो दो हाथ आगे निकल मूल प्रसंगों को ऐसा तोड़-छोड़ दिया गया कि लगा कि कहीं हम प्रेमचंद की किसी दूसरी कथा को तो नहीं देख रहे? 'गुल्ली-डंडा' हर नजर से व्यंजनापूर्ण कहानी है किंतु उसे मार-मारकर अभिधा में अधमरा कर दिया गया. आगे के खंडों में भी कुछ कहानियों के साथ यही सुलूक किया जाता है. यह सरासर अन्याय है. हम चुप रहेंगे तो यही होगा.

किंतु क्या इसमें सिर्फ दूरदर्शन जिम्मेदार है? एक हद तक ही नहीं वह काफी हद तक जिम्मेदार है किंतु उससे भी अधिक वे लोग जिम्मेदार हैं जो दूरदर्शन के माध्यम को कुछ साहित्यिक जेब कतरों, मूर्खों और मतिमंदों के हाथों सिर्फ इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि उनके शुद्ध पातिव्रत्य धर्म (यानी शुद्ध प्रिंट-मीडिया में ही बंधे रहने को) को कैमरे के आगे आने से खतरा पैदा हो जाता है. यदि प्रतिभाशाली लोग इस माध्यम में हस्तक्षेप नहीं कर सकते तो फिर वह दोयम दर्जे के लोग इसका दोहन करेंगे ही. स्वयं दूरदर्शन भी ऐसे ही लोगों को प्रोत्साहित करेगा किंतु जब तक वह संसद या जनता के लिए जिम्मेदार है तब तक उसे उसके संचालकों की प्रतिभाहीनता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता. प्रतिभाशाली लोग इसमें पहल कर सकते हैं.

अमृत नाहटा के सीरियल को देखकर प्रेमचंद को हम सिर्फ भूलने योग्य रचनाकार समझ सकते हैं. वह प्रेमचंद का 'निगेशन' कर रहे हैं और लाखों लोगों को समझा रहे हैं कि प्रेमचंद एक दोयम दर्जे का कथाकार था जिसकी कथायें हमारे जीवन का स्पष्ट आईना न होकर, जंग लगा शीशा भर हैं. यदि नाहटा की जगह कोई राम या मृणाल सेन या गोविंद निहलानी इसे बनाता तो यह स्थिति न होती.

किंतु दूरदर्शन की सीरियल दूकान में जो अपनी अर्जी पास करा लेता है, वह सीरियल बना लेता है. दूरदर्शन को प्रेमचंद और खेमचंद में फर्क करने की तमीज कहां? कायदे में तो दूरदर्शन को बड़े लेखकों के साथ अन्याय करने वाले ऐसे दूकानदारों से कठोरता से पेश आना चाहिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी राह का दर्द

मदन मोहन

"शिवपूजन मास्टर, जिंदाबाद! इनकलाब जिंदाबाद! जिंदाबाद, जिंदाबाद! शिवपूजन मास्टर...."

ये नारे शिवपूजन मास्टर के दिमाग के एक गोशे में लगातार बज रहे थे और उनकी निगाह जेल के बड़े फाटक की आमदरफ्त पर टिकी हुई थी. आंखें थकतीं तो एक नजर सूरज के चटख होते गोले की तरफ डाल लेते. निराशा की एक और टीस लहक उठती. मस्तिष्क-पटल पर रह-रहकर वही मंजर उभर रहा था, जब सात साल पहले एक जुलूस उन्हें जेल तक विदा करने आया था. आगे-आगे धरनीधरन, जगदीश, अब्दुल्ला, मधु काकी और उनके पीछे सैकड़ों उठती-गिरतीं हथेलियां—"शिवपूजन मास्टर, जिंदाबाद. इनकलाब, जिंदाबाद. शिवपूजन मास्टर...."

उनकी बेचैन आंखें फिर उसी जुलूस को तलाश रही थीं, जिसे आज उनके स्वागत में आना था, पर ....

धरनीधरन जब पिछली बार मिलने आया था, तो कह गया था, "हम आयेंगे मास्टरजी. रिहाई के मौके पर हम जरूर आयेंगे... आपने हम गरीबों के लिए बड़ा त्याग किया है, जेल काटी है ... "

और मसौदे पर दस्तखत के बाद भी उनका विश्वास बना हुआ था कि धरनीधरन बात का खरा है. आयेगा. जरूर आयेगा.

वे कल से ही धरनीधरन और नौरंगपुर के अपने पुराने साथियों का इंतजार कर रहे थे. कायदे से उन्हें कल शाम को ही आ जाना चाहिए था,

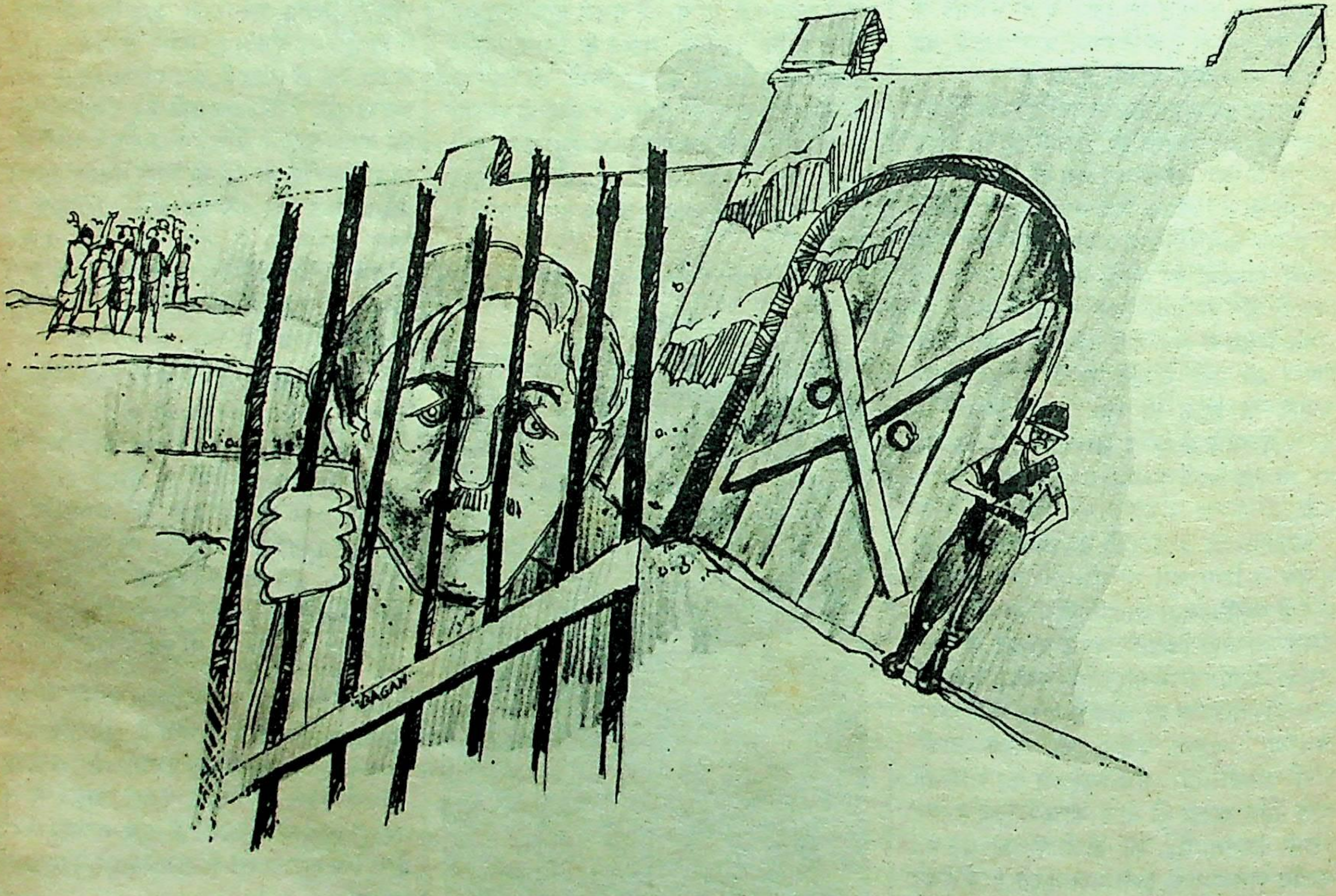

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर शाम की कौन कहे, बांस भर दिन चढ़ आया था, अभी तक एक का भी पता न था. टैक्सी-बस का कोई चार ही घंटे का तो सफर है. मुंह अंधेरे चल पड़ो, तो दसेक बजे तक नमूदार हो जाओ.

सात साल जेल काटने के बाद आज शिवपूजन मास्टर की रिहाई का दिन था. किंतु उनके भीतर खुशी की जगह निराशा और क्षोभ की टीस लहक रही थी. किंकर्तव्य विमूढ़–से वे अपनी बैरक में ही पड़े थे. मसौदे की बात चली, और जब उन्होंने दस्तखत किये, तब पता चला था कि वे अपनी आत्मा को खुद अपने हाथों गिरवी रख रहे हैं. आत्मा, जो नौरंगपुर की माटी में पैदा हुई थी और उसी माटी में तप कर सोना बन गयी थी. किंतु धीरे-धीरे उसके निस्तेज और निष्प्राण होते जाने की अनुभूति उन्हें कचोट देने लगी थी.

कहां से शुरू होती है उनकी जिंदगी? पढ़ाई पूरी करने के बाद बेकारी से ही न? आप तो जानते हैं, बेकारी की मार? शिवपूजन मास्टर पर वह मार कुछ अधिक की गुजरी. बी.एड. करने के बाद युवक शिवपूजन को साल-दर-साल भटकते बीते. अब वे थक चुके थे कि तभी नौरंगपुर से ठाकुर वीर सिंह का बुलावा आया. इलाके का होने के कारण शिवपूजन को इस बुलावे का मतलब मालूम था—बंधुवा मजदूरी. राप्ती के कछार में नौरंगपुर और गजूपुरा के बीच वीर सिंह का मदरसा बंधुवा मजदूरों की बदौलत ठाठ से चल रहा था. अध्यापक तो सभी योग्य थे, पर थे सभी बंधुवा मजदूर. वीर सिंह की बगुला दृष्टि अपने शिकार पर लगी रहती.

तुमने विश्वासघात किया है मास्टर? हमने तुम्हारी दिखायी राह पर चलने की कसम खायी थी. और तुमने ही अपनी राह बदल दी. तुम जेल से छूट जाओगे पर तुम्हारी आत्मा मर चुकी होगी. और तुम एक निर्जीव पदार्थ में तबदील होकर हमारी राह के रोड़े बनोगे.

शिकार थककर हताश बैठ जाता तो वह उसे अपना बंधुवा बना लेता. युवक शिवपूजन के साथ भी ऐसा ही हुआ. वीर सिंह का बुलावा आया तो सच्चाई जानते हुए भी चल पड़े नौरंगपुर की ओर. सोचा था, बैठकर कुंठित और समाप्त होने से तो अच्छा है, मास्टर बिरादरी के साथ भविष्य की कोई योजना ही बनायी जाये. शिवपूजन एक योग्य, संवेदनशील और जिम्मेदार युवक थे, पर उनकी योग्यता की परख कौन करे? परख की एक भोले-भाले मछुआरे युवक धरनी धरन ने. बचपन में क, ख, ग से कुछ अधिक ही पढ़ाई कर ली थी उसने. पढ़ाई हालांकि काफी पहले छूट चुकी थी, पर टोले के समीप स्कूल पाकर सीखने की एक नयी ललक जग उठी. सो मदरसे के गिर्द अक्सर मंडराने लगा. उसकी इस ललक ने शिवपूजन मास्टर को चुंबक की तरह खींचा. उनकी दोस्ती हो गयी. उन्हीं दिनों नौरंगपुर में एक घटना घट गयी. मामला राप्ती नदी के छाड़न को लेकर सामने आया. तलहटी में बसे मछुआरों ने राप्ती की छाड़न पर खेती करना अपना हक समझा. उधर वीर सिंह की गिद्धदृष्टि भी लगी हुई थी. एक दिन पटवारी-अमीन के साथ वीरसिंह के कारिंदों ने छाड़न की भूमि पर दो-दो एकड़ के सैकड़ों गाटें बनवा डाले और मछुआरों का कहलवा भेजा कि साल और गाटा के हिसाब से पांच सौ रुपईया जमा कर वे खेती कर सकते हैं.खबर न केवल मछुआरों के टोले तक पहुंची, बल्कि पूरे इलाके में सड़े डांगर की बदबू की तरह फैल गयी. जिसने सुनी, थू-थू की —नौरंगपुर के बबुआन के अन्याय अब बर्दाश्त नहीं होने को. इतनी जर-जमीन, ठीका-पट्टा, मिल-फैक्ट्री सब तो है, तो भी धन की प्यास न मरी....

किंतु धरनीधरन और शिवपूजन मास्टर ने दूसरी तरह से सोचा कि बबुआन की धन की प्यास सिर्फ आपस में हाय-हाय करने से नहीं मरेगी.

नये हस्ताक्षर

वह तो ऐसी प्यास है, जिसे मुस्तैदी से रोका न गया तो बढ़ती ही जायेगी. सो उन्होंने दिन-रात एक करके, इलाके में घूम-घूम कर अपने इरादे पर समर्थन जुटाया. कुछ ने तो बबुआन के अन्याय के खिलाफ तन-मन-धन से साथ देने की बात कही और कुछ ने अगर अपनी मजबूरी जाहिर की, तो भी जोर-जबरदस्ती की दिल से निंदा की. धरनीधरन और शिवपूजन मास्टर को यह विश्वास हो चला कि वीर सिंह के पालतू लठैतों के अलावा और कोई मैदान में न आयेगा. बाद में गवाही-सबूत की बात रह जाती है, तो देखी जायेगी. पुलिस-थाना की ओर से उन्हें अपने पक्ष की एक पैसे की उम्मीद न थी. पटवारी-अमीन तो पहले से खिदमत में जुटे थे बबुआन की.

धरनीधरन-शिवपूजन से मिलकर मछुआ टोले को सहेजा. गंगामैया की झोली से मिली भूमि की हिफाजत के लिए वे मर-मिटने को भी तैयार थे....

एक-रात, कार्तिक मास की टह-टह अजोरी रात थी. शिवपूजन मास्टर की मौजूदगी में समुचा टोला जुट गया. सैकड़ों की तादाद में लोग आंधी की तरह छाड़न पर पहुंच गये. देखते-देखते कारिंदों द्वारा बनवायी गयी मेड़ियों की जकड़ ढहा दी गयी और कुछ ही देर में छाड़न की भूमि मुक्त करा ली गयी.

इलाके के लिए तथा नौरंगपुर के ठाकुर वीर सिंह के खिलाफ यह एक अभूतपूर्व घटना थी, किंतु अखबार और रेडियो पर नादारद थी. जिस किसी ने जुबानी या किस्से-कहानी के बतौर सुने उन्हें भी यह अविश्वसनीय लगी. जिसका नतीजा बहुत बुरा हुआ. एक रात मछुआरों की बस्ती धू-धू कर जल उठी और श्मशान में तब्दील हो गयी. अनगिनत चौपाये, दुधमुंहे बच्चे और बुखार में बेसुध मधु काकी का सुहाग बिरजू काका वीर सिंह की हैवानियत की भेंट चढ़ गये.

वीर सिंह के भीतर धधक रही नफरत की आग यहीं ठंडी न हुई. अब वह शिवपूजन मास्टर के पीछे हाथ धोकर पड़ गया. उसका विश्वास पुख्ता हो गया था कि सारी खुराफात की जड़ में उसका बंधुवा मास्टर शिवपूजन है. पहले तो उसके लठैतों ने उसकी तलाश की, पर जब मास्टर हाथ न लगे तो वीर सिंह ने पुलिस की सेवा प्राप्त की.

और एक दिन आपने अखबारों में पढ़ा कि मछुआरों को बगावत के लिए भड़काने के जुर्म में शिवपूजन मास्टर गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये.

जेल पहुंच जाने के बाद भी काफी दिनों तक उनका उत्साह बना रहा. वे जानते थे, उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है—शीघ्र ही जमानत हो जायेगी और चार-छह महीनों के भीतर अपने देश-कोस होंगे. पर ऐसा न हुआ. ऐसी दफा लगी कि जमानत की नौबत ही नहीं आयी. वे बगैर किसी सुनवाई के, अनिश्चित काल के लिए जेल की चार-दीवारी के हवाले कर दिये गये. उन्होंने सुन रखा था कि गरीब के भले की रट लगानेवाली सरकार गरीब की हक की लड़ाई सहन नहीं करती. पर उस विसंगति को अपने जीवन के साथ घटित होते देख उनका मन एक ताजे अवसाद से गीला हो उठा था. एक हद तक निरुपाय से वे एक-एक दिन, एक-एक वर्ष की तरह काटते रहे. राप्ती कछार में स्वच्छंद विचरनेवाले जीव शिवपूजन मास्टर जेल के घुटन भरे माहौल में तड़पकर रह गये. वे भी हाड़-मांस के बने इंसान थे. उनकी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरी-पूरी गृहस्थी थी—बीवी-बच्चे थे. मां-बाप का प्यार-दुत्कार भी था. यह भी सुन लीजिये, मास्टर शिवपूजन सवर्ण अर्थात् जाति के ब्राह्मण थे. महीने-दो महीने पर मां-बाप, पत्नी-बच्चों या जगदीश-धनीधरन के आ जाने पर कुछ पलों के लिए उनके जीवन में हरियाली आ जाती. पर जैसे ही परिजन चले जाते, फिर वही उदासी और मनहूसियत धर दबोचती. उनके लिए वे पुस्तकें भी सार्थक नहीं सिद्ध हो पा रही थी, जिन्हें पढ़कर उन्होंने जीवन की वैतरणी पार करने का तरीका सीखा था. अपनी इस स्थिति से वे हतप्रभ थे—खुद के बारे में किये गये अनुमान एक-एक कर बालू की खूबसूरत दीवारों की तरह ढहते जा रहे थे. जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, वैसे-वैसे उनकी चिंताएं भी गहराती जा रही थीं. बच्चों का क्या होगा? पत्नी? बूढ़े मां-बाप? खेत-खलिहान तो कब से परती-परास हो गये. कुल मिलाकर एक आतंककारी भविष्य...

तभी एक दिन उनके सामने जेलर ने मसौदे का कागज रखा था. उन्हें अजीब लगा था—मन कसैला हो उठा था. सहसा भीतर से एक तेज लहर उठी थी कि नहीं, उन्हें नहीं चाहिए मसौदे का कागज. किंतु लहर होंठों तक आकर लुप्त हो गयी थी और उन्होंने जैसे किसी जादू के वशीभूत हो एक-एक दिन में विचार कर बताने के लिए कागज रख लिया था.

कुछ दिन तो यूं ही गुजर गये, उन्होंने उसे फिर देखा तक न था. उस रात जब जेल का घड़ियाल दो बजा चुका था और बैरक के चारों तरफ खामोशी पहरा देने लगी थी तो उन्होंने चुपके से टार्च की रोशनी में मसौदे की करारें पढ़नी शुरू कर दी थीं. दिल की धड़कन तेज हो गयी थी और पूरा बदन थरथरा रहा था. तभी उस भयंकर काली रात में उन्हें लगा, तीन-चार कद्दावर परछाइयां उन्हें घेरकर खड़ी हो गयी हैं. वे दहल उठे. टार्च तुरंत बुझा दी. भयाकुल आवाज में फुसफुसाकर पूछा, ''कौन हो तुम लोग? क्या चाहते हो?''

जवाब में उन्हें केवल प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी. आंखें फाड़कर उन्होंने अंधेरे के पार देखने की चेष्टा की—नजर जहां कहीं ठहरती, परछाइयां वहीं से उनकी ओर आती हुई दिखाई देतीं. इतना साहस! कौन हैं ये परछाइयां! वे सिहर उठे. और जैसे प्रत्येक से पूछ पड़े हों—तुम धरनीधरन? तुम जगदीश? तुम अब्दुल्ला? और तुम मधु काकी—? मेरी जासूसी कर रहे हो तुम लोग? बेवकूफो, अभी तलक तो मैंने उसे पढ़ा भी नहीं है...लो पढ़ता भी नहीं......

उन्होंने मसौदे को फिर सिरहाने के नीचे रख दिया और कंबल तानकर सीधे हो गये. किंतु हलकी-सी झपकी लगी थी कि उन्होंने एक विचित्र सपना देखा—वृद्ध शिवपूजन मास्टर जेल से छूटकर जब अपने गांव पहुंचते हैं, तो तलाशने पर भी उन्हें अपना घर नहीं मिल रहा है. मां-बाप, पत्नी-बच्चे, खेत-खलिहान सब नादारद. समूचा गांव अपरिचित, जैसे दूर के किसी ऐसे गांव में पहुंच गये हों, जहां उन्हें कोई न जानता हो.

जाहिर है, सपना विचित्र ही नहीं खौफनाक भी था. अपने सपने पर कभी यकीन न करनेवाले शिवपूजन मास्टर कंबल दूर फेंककर उठ बैठे और हांफने लगे. इस बार बिना किसी तरफ देखे उन्होंने शीघ्रता से टार्च जला दिया और मसौदे के कागज को सीधा कर, उसकी खाली जगहों को भरते हुए नीचे दस्तखत कर दिये.

उनका हांफना अभी जारी था और लग रहा था, शरीर का सारा सत निचुड़ गया है, वह बेकाबू हो रहा था. चाहते हुए भी उन्होंने फिर अंधेरे के पार देखने की चेष्टा नहीं की. किंतु उन्हें लग रहा था, उस दरमियान कोई चीज चुपके से अंतर्मन में प्रवेश कर गयी है और कुंडली मारकर बैठ गयी है. क्या हो सकती है वह चीज? बोध? कैसा बोध? अपराध बोध? ऐसा कोई काम तो नहीं किया उन्होंने! आखिर जेल में सड़ने से फायदा भी क्या? वे खुद को समझाने लगे थे.

किंतु बाद में कई दिनों-महीनों तक उनका मन बेचैन हो भटकता रहा था. वे जब भी निर्दोष होने के तर्क ढूंढ़ते तो सहसा उस रात की कद्दावर परछाइयां बोल उठतीं—''तुमने विश्वासघात किया है मास्टर? हमने तुम्हारी दिखाई राह पर चलने की कसम खायी थी और तुमने ही अपनी राह बदल दी. तुम जेल से छूट जाओगे, पर तुम्हारी आत्मा मर चुकी होगी. और तुम एक निर्जीव पदार्थ में तबदील होकर हमारी राह के रोड़े बनोगे....''

''नहीं, नहीं, मेरी आत्मा बेसक निष्प्राण हो जाये, किंतु मैं तुम्हारी राह का रोड़ा नहीं बनूंगा! नहीं बनूंगा!''

वे सफाई देते. परछाइयां डटी रहतीं. वे दुम हिलाते उनके करीब होना चाहते तो वे गायब हो जातीं. वे रुक जाते कि तभी दूसरी ओर से वही आवाज उन्हें फिर सुनाई देती—''मसौदे पर दस्तखत के बाद तुम हमारे विरुद्ध हो चुके हो शिवपूजन! अगर तुमने इस पर अमल नहीं किया, तो तुम्हें फिर जेल में आना होगा.''

''फिर जेल में क्यों आना होगा? ऐसा तो मसौदे में कुछ नहीं था.''

हर हाल में वे अपने को निर्दोष साबित करने की कोशिश करते.

''भोला बनने की कोशिश मत करो मास्टर! तुम्हें सब पता है. मसौदे में जो नहीं है, दरअसल वही खास है. अब तुम्हें हमसे नफरत करनी होगी. हमारे हो रहे शोषण-उत्पीड़न में वीर सिंह और पुलिस की मदद करनी होगी. हमारी लड़ाई को तोड़कर हमें गुमराह और पस्तहाली में डालना होगा. गरज कि तुम्हें हर वो काम करने होंगे मास्टर....''

''बस-बस! बस भी करो तुम लोग....!''

उनका सिर तेज-तेज चक्कर खाने लगता और वे सिर पकड़कर बड़बड़ा पड़ते—''कैसे हरामी का पट्ठा मुझसे ये काम करायेगा? मैंने तो सिर्फ कानून कायदे के दायरे में रहने का वचन दिया है. इसके माने ये तो नहीं कि मैं वीर सिंह और पुलिस की कठपुतली बनकर रहूंगा? नहीं, वीरसिंह मुझे नहीं खरीद सकता...''

किंतु आपको बताना गैर-मुनासिब न होगा कि पिछली बार जब धरनीधरन जेल में उनसे मिलने आया तो उन्होंने उसे अपने भीतर की इस लड़ाई की भनक नहीं लगने दी. उन्होंने उत्साह से उसे अपनी रिहाई की खबर दी और इच्छा व्यक्त की कि साथियों के साथ नौरंगपुर वापस होना चाहेंगे. आज के दिन पिता और पत्नी को आने से मना भी कर दिया था.

मसौदे के जरिये शिवपूजन मास्टर की रिहाई की खबर से धरनीधरन को धक्का लगा था, किंतु उसने इस गम को जब्त किया था. चाहकर भी अपनी नाखुशी जाहिर न की थी. और साथियों के संग आने का वायदा किया था!.....

किंतु जैसा कि अब आपको स्पष्ट हो चुका है, यह मसला केवल धरनीधरन तक ही महदूद न था. नौरंगपुर के लोगों ने मिलकर अपने प्रिय साथी मास्टर शिवपूजन के खोने का बड़ा अफसोस मनाया और उनके जेल तक के सफर को यादगार मानते हुए आगे की राह ली.

राप्ती-कछार और साथियों से छुटते हुए मास्टर का हृदय चित्कार रहा था. पर अब हो क्या सकता था? हस्ताक्षरयुक्त मसौदा स्वीकार हो चुका था, और आज रिहाई का दिन भी आ पहुंचा था. पर वे अपनी बैरक में मानो संज्ञाशून्य हो पड़े थे. दिन को जैसे पंख लग गये थे, देखते-देखते तीसरा पहर भी आ धमका था.

रिहाई की औपचारिकताएं पूरी हो चुकी थीं. उनके आखिरी दस्तखत भी ले लिये गये थे. बड़े फाटक पर टिकी उनकी निगाहें गीली हो चली थीं। कभी-कभी होंठों में एक बेजान-सी हरकत हो जाती—धरनीधरन ने कहा था, हम आयेंगे मास्टर....रिहाई के मौके पर हम आयेंगे.....

बाहर सब कुछ सामान्य था. सुस्ताती जेल की बसों और लारियों की कतारें. यहां-वहां डोलते परिजनों के झुंड. आम, जामुन और नीम के छायादार दरख्त और उन पर चहचहाती चिड़ियां. सब कुछ सामान्य था. पर शिवपूजन मास्टर की हालत नाजुक होती जा रही थी. गला रुंधा हुआ था और शरीर पूर्णतः श्लथ. बड़े फाटक की ओर एकटक निहारती आंखों से आंसू अब धार बांधकर बह चले थे.....

थोड़ी ही देर में कैदियों, चौकीदारों और सिपाहियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, जो उन्हें विस्मय और कौतूहल से देख रही थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पौद

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वयं लेखक बनना चाहते हैं ... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो नयी पौद की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं ... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित ३०० शब्दों में लिख भेजिए.

सृजन के लिए प्रेरणा जरूरी

ममता पोपली

साहित्य को पढ़कर कई बार अपने अंदर वैसा साहित्य पैदा करने की कोशिश की कि मैं भी उसी स्तर का साहित्य-सृजन कर पाऊं. जब भी साहित्य पढ़ा उसी वक्त कुछ विचार दिमाग में कौंधते जरूर हैं मगर वह लिखने की भाषा नहीं ले पाते हैं. ऐसी अवस्था में दिमाग की क्या हालत होती है यह एक परिपूर्ण लेखक जानता है क्योंकि जो स्थिति आज मेरे साथ है बिल्कुल वही स्थति आज के बने हुए लेखक के साथ कभी जरूर हुई होगी. जब कोई विचार दिमाग में आता है मगर अच्छी भाषा नहीं ले पाता. तब मुझे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है. विषय मिल जाने के बावजूद जब उसका शीर्षक उचित नहीं मिल पाता तो कभी उस विषय के अनुकूल पात्रों को उस विषय में दौड़ाते व खिलाते वक्त सही सहानुभूति व स्थति नहीं उत्पन्न कर पाती. अगर मैं कभी जबरदस्ती मानसिकता बनाती हूं तो कबी खास तौर से अच्छा साहित्य रचने के लिए नहीं बना सकती. उसके लिए साहित्यिक किताबें जो हमारे बड़े लेखकों ने हमें अपनी महज वसीयत रूप में दी है, उसको लिए बिना मैं तो क्या कोई भी इस पथ पर पग नहीं बढ़ा सकता.

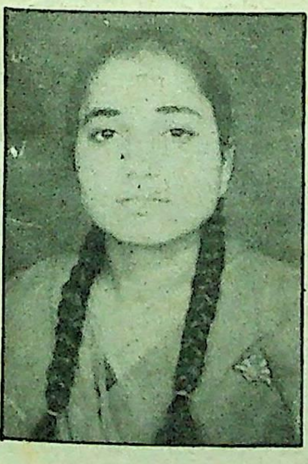

संस्कार रूप लेखन में भी अच्छा पढ़ना आवश्यक होता है. जब तक अच्छा लेखक अच्छे वाक्य जो पढ़ता है उन्हें समझता नहीं तब तक वह लिखने में असमर्थ तो होता ही है साथ ही वह अपने आधुनिक साहित्य की जानकारी न प्राप्त करने के कारण काफी पिछड़ा साहित्य उपजाता है. जो किसी को प्रेरणा नहीं दे पाता. अपने आप की संतुष्टि के लिए कोई चीज लिखी जाती है चाहे वह कोई लेख, कहानी, कविता या उपन्यास ही क्यूं न हो. सब तभी लिखा जाता है जब तक उसके पास किसी का अध्यापन न हो, प्रेरणा न हो. अगर यह नहीं होता तो उसका साहित्य, उसका लेखन दूसरी चीज लिखने तक में काफी अंतर पैदा करता है और वह अंतराल एक लेखक नहीं बनने देता. □

लेखन अनंत यात्रा है

कु. जीनत नकवी

कई बार इच्छा होती है कि मैं भी अच्छी कहानियां लिखूं और आदर्श लेखिका बनूं. कहानियों का प्लाट भी बना लेती हूं.... आदि अंत भी तय कर लेती हूं विचारों का ताना-बाना बुन लेती हूं... किंतु एक ऐसा बिंदु आता है जिस पर सारे के सारे विचार बिखर जाते हैं. यह बिंदु है कहानी को विस्तार देने का. कभी कभी ऐसा लगता है कि जैसे मुझ में शायद इतनी योग्यता ही नहीं कि कहानी को विस्तार दे सकूं. फिर लगता है जैसे चारों ओर का वातावरण सकारात्मक नहीं है. जो कहीं लिखने को प्रेरित कर सके. लिखना क्यों चाहती हूं कई बार इस पर भी सोचा है. यों तो मनुष्य के चारों ओर अनेकों कहानियां बिखरी पड़ी हैं लेकिन बात फिर वहीं आती है कि इन्हें एक सूत्र में कैसे बांधा जाये. इन्हीं कहानियों में से सांप्रदायिकता और भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत कुछ लिखना चाहती हूं. मन में हूक उठती है कि कुछ ऐसा लिखूं जो समाज को झकझोर दे. उसे यह सोचने पर विवश करे कि जो कुरीतियां सुरसा की तरह मुंह फैला रहीं हैं उनका सामना किस तरह किया जाये. अच्छे से अच्छा साहित्य पढ़ने के बाद भी न जाने क्यों मैं लिख नहीं पाती! लगता है कि इस सब के लिये जिस परिश्रम, त्याग और तपस्या की जरूरत है उसी की मुझमें कमी है. लेखन का अंत यात्रा है और इस यात्रा में अनेक अवरोध आते हैं जो मुझे लिखने को प्रेरित करते हैं.

ईश्वरीय देन है लेखन

मीनाक्षी पंत

लेखन अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम मानसिक व अनुभव जन्य विचार व्यक्त कर सकते हैं. कथा-रचनाओं के साथ-साथ ही लेखनी के माध्यम से राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को समझते हुए नये समाधान प्रस्तुत किये जा सकते हैं. जब-जब मैंने ऐसा करने का प्रयास किया है, मुझे लगता है, संभवतः लेखन ईश्वरीय देन है... जो निरंतर अभ्यास व अनुभव द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है. मेरे लिये सबसे बड़ी समस्या यह है कि कहानी की शुरूआत कैसे की जाये. मन होता है कि कुछ ऐसा 'प्रारंभ' हो जो रचना के प्रति पाठक में आकर्षण पैदा करे. यदि यह संभव हो भी जाये तो दूसरी समस्या यह आ खड़ी होती है कि तथ्यों से पूरी तरह परिचित हुये बगैर उन्हें प्रस्तुत करना बहुत कठिन काम है. ऐसा भी लगता है कि विचारों में सही तारतम्य नहीं बैठ पर रहा है. बार-बार एक ही विचार उभरकर ऊपर आ जाता है. एकाग्रता और लगन जिसे कहते हैं उसकी कमी बराबर महसूस होती है. भाषा का सही इस्तेमाल न कर पाना भी आड़े आने लगता है. पर मैं निराश नहीं हूं. धीरे-धीरे समय के साथ-साथ मुझमें सुधार आयेगा... ऐसा मेरा विश्वास है. मेरा मन है आगे चलकर मैं सामाजिक कुरीतियों के विरोध में तथा विशेष रूप से नारी जीवन की समस्याओं व उनके समाधानों की दिशा में सार्थक रचना कर सकूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

नये स्तंभ 'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' : फरवरी, 1988 अंक पर आधारित हैं. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि 20 मार्च, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा मई : 1988 के अंक में की जायेगी.

सारिका कथा-पहेली : मार्च, 1988

1. 'राबिंसन क्रूसो' उपन्यास किस नाविक के संस्मरणों पर आधारित है?
....
2. वह कौन-सी घटना थी जिसके बाद जेंग जियांग अपनी पत्नी को प्रेम नहीं कर सका?
....
3. अपने संबंध में गर्वोक्तिपूर्ण किंतु काफी अंशों तक सही भविष्यवाणी करने वाले लेखक...थे.
4. "पंछी बहुत अच्छे होते हैं. आपस में बहुत प्यार करते हैं और मस्ती से आसमान में उड़ते फिरते हैं. शाम को फिर लौट आते हैं घौंसलों में."
यह...कहानी में.................................
...का संवाद है.
5. यह पात्र जिन रचनाओं के हैं उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
1. आरती (............................) 2. नीषा (..............................)
3. चेतन (...................) 4. गोरख (.......................)
6. इस अंक में एक रचना का शीर्षक दो जगह भिन्न-भिन्न छपा है. यह रचना है—
....
7. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी...है.
8. "...........सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है यदि पूरी जनसख्या को पढ़ना सिखा दिया जाये." यह विचार...के हैं.
9. मास्टर टीकाराम जिस व्यक्ति को अपने जैसी स्थिति में देख रहे थे वह कौन था?
....
10. इस अंक में चित्रांकन, सज्जा और ले-आउट की दृष्टि से ये दो पृष्ठ सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं. सर्वोत्तम पर (✓) चिन्ह लगाएं.
26-27 ( ), 42-43 ( ), 47 ( ),
59 ( ), 52-53 ( )

नाम.................................आयु.....................................

पता...

कथा पहेली : जनवरी, 1988 के सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार विजेता

जनवरी 1988 की कथा पहेली के हजारों प्रतियोगियों में से केवल आठ ही दो-दो अशुद्धियों के साथ पुरस्कार विजेता बनने का गौरव पा सके हैं. सर्वशुद्ध हल भेज पाने में कोई भी प्रतियोगी सफल नहीं हुआ है. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में बराबर-बराबर बांट दी जायेगी. पुरस्कार विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं:—

1. आशीष दशोत्तर, 39, नगरवास, रतलाम (म.प्र.)
2. नरेंद्र कुमार चौबे, मकान नं. 384 संचार विहार कालोनी, आई.टी.आई. लिमिटेड. मनकापुर, गोण्डा (उ.प्र.) 3. अजय मेंढेकर राजेंद्र नगर, बिलासपुर (म.प्र.) 4. ज्योतिर्मय आनंद, द्वारा सोना लाल साह, ग्राम/पो. सोनाली, जि. कटिहार (बिहार) 5. एच.पी. साह, उद्योग निरीक्षक, जिला उद्योग केंद्र, रायगढ़ (म.प्र.) 6. राधा रमण पुरी, मुहल्ला-पटना का फाटक' पो. दाउदनगर जिला-औरंगाबाद (बिहार) 7. अनिल राज, 7/113 सराय नवाब, अलीगढ़ (उ.प्र.) 8. अनिल कुमार गुप्ता, मेसर्स, आभा मेडिकल हॉल, (चौक) पो. दाउदनगर जिला-औरंगाबाद (बिहार)

....और यह है कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. शरलॉक होम्स, 2. 'सर्वोच्च शिखर', 'शरलॉक होम्स का भ्रम', 'हेड मास्टर', 3. 'हीरोल'—इसका अर्थ है—सेना की अगुआई, 4. 'सर्वोच्च शिखर', 5. (27 और 56), 6. 'मनुष्य जन्म', 7. पारदर्शी का दुहरा इस्तेमाल, 8. 'कहानी अंग्रेजी भाषा की है' यह सूचना प्रकाशित होने से रह गई है, 9. गोविंद मिश्र, 10. 'हीरे की चोरी' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतियां

सार्वजनिक जीवन का 'थ्री डी' परिदृश्य

आजादी के बाद यह उम्मीद की गई थी कि गरीबी, बीमारी, भूख, निरक्षरता अंधविश्वास, निराशा, जातिगत तनाव आदि से हमें मुक्ति मिल जायेगी. सरकार ने सामूहिक विकास-योजना चलाकर ग्रामीण जनता को विशेषरूप से अपने पैरों आप खड़े होने की प्रेरणा देने के प्रयास किये. इस योजना के अधीन सामाजिक शिक्षा, ग्रामीण जीवन के सभी घरेलू तथा ग्रामीण उद्योग, पशुपालन, कृषि विकास आदि पहलुओं पर ज़ोर दिया गया. किंतु परिणाम उतने गुणात्मक और धनात्मक नहीं मिले. इसके कारणों की तह में कहीं न कहीं हमारा 'चरित्र' काम कर रहा है, खासतौर से वह चरित्र जिसने आजादी के बाद 'विकास' पाया है.

श्रीलाल शुक्ल के तीन व्यंग्यकथाओं के संग्रह 'उमराव नगर में कुछ दिन' उपर्युक्त का गहरा संदर्भ सामने लाने की रचना-चेष्टा है. उन्होंने उत्तर-प्रदेश के 'उमरावनगर' नामक किसी एक गांव को आधार बनाकर एक व्यंग्यकथा रची है, जो अधिक व्यापक है और अन्य दो कथाओं— 'कुंती देवी का झोला' तथा 'मम्मी जी का गधा', को सम्मिलित कर पाठकों को सार्वजनिक जीवन का त्रिआयामी परिदृश्य दिखाया है, अपनी उसी विशिष्ट शैली में जिसके लिए उन्हें 'राग्दरबारी' से ख्याति मिली थी.

संग्रह की पहली कथा 'उमरावनगर में कुछ दिन' पढ़ कर तो रंगनाथ की याद आ जाती है, जो लगता है शिवपाल-गंज से बस में बैठकर सीधा उमरावनगर में कुछ दिन के लिए पत्रकार बन कर आ गया है.

कथानायक इन शब्दों के साथ प्रकट होता है, "बस के रुकने पर समझने में देर नहीं लगी कि यहां उतरने में, चढ़ने के मुकाबले ज्यादा जीवट की जरूरत होगी. पर मेरा मुर्गीवाला साथी मुझसे ज्यादा उतावला था. अभिमन्यु की तरह भीड़ का चक्रव्यूह तोड़ता हुआ वहां तक पहुंच गया जहां दरवाजा होना चाहिए और नीचे कूदते ही मैं भी उसी के साथ जमीन पर चू पड़ा." (पृष्ठ 9) उसके इस तरह प्रकट होने के साथ ही बहुत कुछ प्रकट हो जाता है. पहले तो 'परिवहन-व्यवस्था', फिर 'यात्री'. इसके बाद विकास करता गांव "सड़क पर जहां बस रुकी थी उसके किनारे पर एक दवाखाना था जिस पर किन्हीं डा. अंसारी का नाम लिखा था. विज्ञापन पट्टी पर ए.ए.यू. पी., पी.एम.पी. यम.डी. जैसी डिग्रियां लिखी थीं.... यम. डी. के नीचे कोष्ठकों के भीतर उर्दू या फारसी लिपि में लिखा है 'मैनेजिंग डाइरेक्टर, 'अंसारी क्लीनिक'! (पृष्ठ 10) यहीं से मिलते हैं कथानायक को गांव के विभिन्न रंग-ढंग और कारोबार वाले पात्र—इकबाल मियां, मित्र, बी.डी.ओ. साहब, विधायकजी जिलेदार साहब, रखबरदासजी, सियादुलारीजी, रर्मसर भाई अर्थात् ठाकुर साहब, मजहर मियां और फूलमती आदि. इन सब पात्रों में भष्टाचार, उठाईगीरी, अवसरवादिता, कुटिलता, बदमाशी जैसी आधुनिक अमूर्त 'विशेषज्ञतायें, हाड़-मांस का रूपाकार ग्रहण कर चुकी हैं. उदाहरण के लिए रईस इकबाल मियां के इस 'रूप' में उठाईगीरी, काईयापन आदि के दर्शन पायें, "वे लगभग साठ साल के होंगे. मोटे बदन पर लंबा कुर्त्ता और तहमत सर पर चौकोर टोपी नाक के कोने पर एक बड़ा-सा काला मस्सा, जो बड़ी-बड़ी आंखों के नीचे बस कर पूरे चेहरे को समुद्री डाकुओं जैसा खूंखार बनाता था. यही, जब वे आंखें मूंद लेते होंगे, उनके चेहरे की ध्यान मुद्रा को और भी गहनता देता होगा, धार्मिक भाषणों को मार्मिक बनाने में सहायता करता होगा." (पृष्ठ 12) विशेषज्ञता वाला उनका सही परिचय कथानायक और उसके मित्र के वार्तालाप में इस तरह सामने आता, "उन्हें क्या कहा जाये— एक तरह से ग्रामीण अर्थशास्त्र का ही विशेषज्ञ कर लो. खासतौर से जंगलों की कटान और जंगली लकड़ी के उपयोगी के बारे में उन-जैसा माहिर इधर कोई नहीं है." "तुम्हारा मतलब पर्यावरण-सुरक्षा और वानिकी से है?" "मुझे पता नहीं ये क्या हैं," मित्र बोले, "पर इनका मतलब चोरी और उठाईगीरी हो तो तुम्हारी बात सही होनी चाहिए." (पृष्ठ 13)

ऐसे अनेक पात्र उमरावनगर में हैं, जो नाम और रूप के बगैर ही 'फब्ते' हैं. अपनी प्रतीकात्मकता को सार्थक करते. कभी हरे-भरे और रमणीक रहे, कटे वृक्षों, एक-एक कर ऊंची उठती पक्की हवेलियों, ऐसी गलियों की 'अगर कोई औरत-मर्द आमने-सामने से निकल जाते तो इतने पर ही एक का बलात्कार या दोनों का व्यभिचार के जुर्म में चालान हो सकता था,' से लैस उमरावनगर में वह सब है जो 'स्वतः नियोजित विकास' के बाद होना चाहिए. इसी 'विकास-पद्धति' के विषय में कथानायक मंत्री जी से कहता है, "अब मान भी जाइए. घूसाखोरी, फरेब काले-धंधे आदि के खिलाफ शोर न मचाकर अब इन धंधों वालों से समन्वय करके कुछ दिनों के लिए एक सचमुच की समन्वित ग्राम विकास परियोजना लागू हो जाने दीजिए. फिर देखिए विकास कैसी तेजी से होता है!" (पृष्ठ 42)

सरकार द्वारा नियोजित विकास के चमत्कार के लिए चुने गए ऐसे गांवों में चाहे कंप्यूटर ट्रेनिंग के सरकारी प्रशिक्षण कार्यक्रम क्यों न चलें, वहां का विकास डा. अंसारियों और सरकारी डाक्टरों के गठजोड़, इकबाल मियाओं और ठाकुर साहबों के गठबंधन, तथाकथित विकास-संगठनों आदि-आदि पर ही निर्भर रहेगा. लेखक तो इस नतीजे पर पहुंचा है कि, "उमरावनगर का विकास चाहे वित्तमंत्री के सिद्दांतों से हो, चाहे इकबाल मियां की व्यवहार बुद्धि से, इन नरकों की सत्ता पर कोई असर नहीं पड़ेगा!"

इस व्यंग्यकथा में एक व्यापक कथापटल को समेटा गया है. एक कहानी के लिए यह बड़ा भारी है. इतने भार को उठाने के लिए मजबूत कदकाठी की कहानी की जरूरत रहती है. और निःसंदेह शुक्लजी ही ऐसी कहानी दे पाये हैं.

अब दूसरी व्यंग्यकथा: 'कुंती देवी का झोला.' इस छोटी कहानी में सबसे पहले कुछ डाकू अवतरित होते हैं जो हिम्मतपुरा नामक गांव वालों के चेतावनी देते हैं कि कुंती देवी का झोला यहां रह गया है. किसी ने छिपा लिया है. "और खबरदार, अगर इस सब के बारे में पुलिस को बताया तो किसी की खैर नहीं. तुममें से एक-एक को गोलियों से भून दिया जाएगा." (पृष्ठ 51) उसी दिन सरेशाम पुलिस ने धावा बोला. आते ही अपनी कार्यप्रणाली के अनुरूप एक-एक घर की तलाशी ली, पिटाई की और गांव वालों को इकट्ठा कर कहा, "हमें पता चल गया है कि कुंती का गिरोह आज यहां आया था. तुमने हमें इसकी इत्तला क्यों नहीं दी?" मूल मुद्दा यह कि, " कुंती ने हरगांव में दो किलो वजन के सोने के जेवर लूटे हैं. पांच लाख की कीमत के. निकालो झोला! पूरे गांव पर दफा चार सौ बारह चलेगी!"

घूमते-घूमते दो लड़कों को झाड़ियों में एक झोला मिलता है. यह वही रहस्यमय और बेशकीमती झोला है, किंतु उसमें है क्या— चार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूखी रोटियां, प्याज, नमक और तमंचा! कौतूहलवश एक लड़का उलट-पलटकर देखने के बाद तमंचा चला देता है. तमंचे से गोली छूटते ही लड़के सब कुछ जैसे का तैसा छोड़कर भाग खड़े होते हैं. यह क्या? उनकी ओर रुक-रुककर गोलियां दागी जाने लगी थीं. एक घर में छिपने पर बुजुर्गों की बातों से पता चला कि आज भी दोपहर में पुलिस गांव में आयी थी पर लौटते-लौटते उनका दस्ता जंगल के पास अचानक रुक गया. उन्होंने जंगल के तीन तरफ से घेराबंदी कर ली है. पुलिस का एक जत्था अब बीहड़ की तरफ बढ़ रहा है. शुरू में एक गोली चला कर डाकू जंगल में अब चुपचाप घात लगाये गोलियां चलायेंगे तो घमासान लड़ाई होगी. पर पुलिस को उन्हें अंधेरा होते-होते मार लेना चाहिए नहीं तो मुश्किल होगी.

कुल मिलाकर इस घटना से दो बातें प्रकट होती हैं—एक तो यह कि, डाकू और पुलिस के दो भारी पाटों के बीच निर्दोष जनता ही पिसती है. दोनों अपनी-अपनी तरह से आतंकित करते हैं. दूसरी पुलिस की कार्यकुशलता!

संग्रह की तीसरी कहानी है- ''मम्मीजी का गधा.'' इस कहानी में अफसरशाही के अहं को विषय बना कर प्रसंगतः इस बात को खोला गया है कि नेता लोग किस प्रकार अर्थहीन-सी स्थितियों का लाभ उठा लेते हैं.

बचपन में अपनी मम्मीजी का गधा कहलाने वाला बालक पढ़लिखकर अफसर बन जाता है. बिदेश से लौटा वह अफसर 'विशेषज्ञ बनाम जनरलिस्ट' का जुमला उछालकर देशव्यापी हड़ताल खड़ी करता है. इसी बीच अपनी अफसरशाही के अहं के प्रतीक रूप में उसकी बंदूक एक गधे को मार देती है. यह घटना जटिल स्थिति पैदा कर देती है. जब जनता एकत्र होती है और व्यक्ति आगे आकर इस स्थिति का लाभ उठाकर नेता बन जाता है. वह अफसर को सस्पेंड करा देता है, जेल भिजवा देता है. नेताओं की पहल पर जेल से लौट कर और बहाल होकर यह अफसर 'नेता' बन जाता है. वह अपने प्रदेशीय संघ का अध्यक्ष और अखिल भारतीय संघ का महामंत्री बन जाता है. उसकी वर्तमान स्थिति यह है कि, ''वह अपने इशारे से सारे चक्के जाम करा सकता है, बड़े-बड़े सरकारी तीसमार खां उसके नाम से दलहते हैं, सड़क का आदमी अखबार में सबसे पहले ही टटोलता है कि आज इसने कहा क्या है. आज दिल्ली के दस सांसदों ने मिल कर उसे राज्य सभा में बुलाने का अनुरोध किया है. पर वह अभी नौकरी करेगा, क्योंकि यहां भी अब उसे बिना कोई काम किये पूरे तनख्वाह मिलती है.'' (पृष्ठ 79) शुक्लजी अपने इस तथाकथित बेटे के माध्यम से वर्तमान राजनीति ओर राजनीतिज्ञों के कपड़े हटवाकर पाठकों को सब कुछ दिखा देते हैं. और पाठकों के सामने ही उस

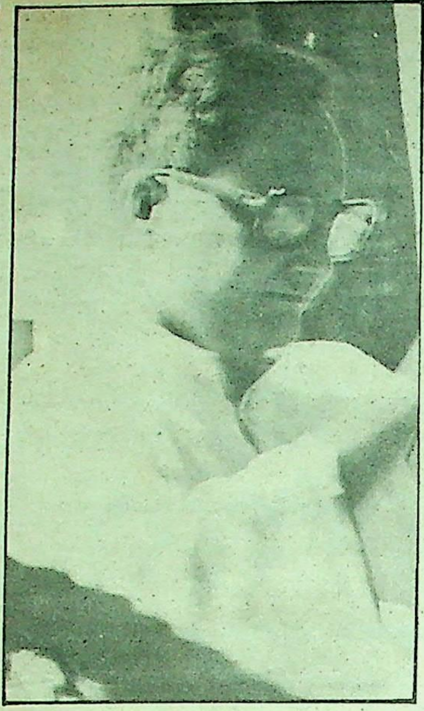

'गधे' से कहते हैं, '' बेटा, यह सही है. यहां तक पहुंच कर तुम अपनी मम्मी के गधे नहीं रहे. पर वह कौन है इन दस सांसदों के मुंह से तुम्हें राजनीति के मैदान में दुलत्ती झाड़ने को बुला रहा है? मत भूलो, तुम्हें पता भी नहीं है और अनजाने ही तुम किसी दूसरे के गधे बन चुके हो. अब तुम खुद पता लगाओ कि तुम्हें गधा बनाकर अपनाने वाले तुम्हारे नये पापा या नयी मम्मी कौन है?'' यह सचेत कर देने वाली मुद्रा ही लेखक की असली मुद्रा है.

'रागदरबारी' के बाद 'अंगद का पांव' और फिर इन कथाओं को पढ़कर पक्के तौर पर श्रीलाल शुक्ल को कथाकार से ज्यादा व्यंग्यकार मानने का आधार मिल जाता है. छोटी-छोटी और कम महत्व की बातों को वे जितने गहरे अर्थों से जोड़ कर व्यंग्य धार देते हैं, उतना कौशल अन्य लेखकों में कम देखने को मिलता है. वे इन कथाओं में भी ऐसी सच्चाइयों से रूबरू कराते हैं, जिन्हें हम अपने आसपास घटते हुए भी नहीं देख पाते. विन्यास ऐसा कि पढ़कर मन ही मन हंसी आये, किंतु भीतर एक चिंता विचलित कर दे. कार्यकारण संबंधों का ऐसा गठ-जोड़ कि प्रश्नों-शंकाओं की की गुंजाइश ही साफ हो जाए. बतकही और किस्सागोई से अलग 'कहानी' में व्यंग्य का जैसा चमत्कारपूर्ण संयोजन शुक्ल जी करते हैं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है. भाषा का रचाव इन कथाओं की ऊर्जा का वास्तविक स्रोत है, लेकिन कहीं-कहीं उसमें निरंतर चलती नाटकीयता इतनी बढ़ गई है कि एकरसता पैदा हो गई है और वहां अनुभव फिसल गया है पहली कथा अन्य दो से ज्यादा प्रभावपूर्ण है.

कुल मिला कर जनहित, लोककल्याण, सार्वजनिक विकास, स्वाधीनता, सुधार, उत्पादन जैसी शब्दावली का प्रयोग सरकारी दावों में जिस ढंग से किया जाता है, उसे शुक्ल जी का यह कथासंग्रह पटकनी दे देता है, क्योंकि वे जानते हैं कि 'जो बात अपने देश के चरित्र के लिए सच है, वही पानी के लिए भी है. पानी हर हालत में अपना धरातल ढूंढ़ लेता है. और सचमुच इस चरित्र के चलते न तो उमरावनगर जैसे गांवों का नियोजित विकास संभव है, न डाकुओं और पुलिस के आतंकवाद से निर्दोष जनता की मुक्ति और न ही 'मम्मी जी के गधों' के रहते अफसरों और राजनीतिज्ञों-द्वारा जनता का कल्याण! इस संग्रह की तीनों कथाओं में देश के इसी पनीले चरित्र ने अपने धरातल ढूंढे हैं.

☐ डा. हरिमोहन

चर्चित पुस्तक : उमरावनगर में कुछ दिन
व्यंग्यकार : श्री लाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1988, पृष्ठ 81, मूल्य 30.00 रु.

व्यंग्य की जुगलबंदी

देश में तालाबंदी, चकबंदी, नसबंदी वगैरा न जाने कितनी बंदियां चल रही हैं. अब अगर जुगलबंदी भी हो जाए तो क्या हर्ज?' —बकौल रवींद्रनाथ त्यागी के इसे फर्ज मानकर लतीफ घोंघी ने एक अन्य सशक्त व्यंग्यकार ईश्वर शर्मा के संग संगीत की तर्ज में साहित्य में भी जुगलबंदी पेश कर दी है— 'व्यंग्य की जुगलबंदी'. व्यंग्य की इस जुगलबंदी में इन दोनों व्यंग्यकारों ने एक-एक विषय को लेकर स्वतंत्र व्यंग्य लेख लिखे हैं. पतझड़ से प्रश्न चिह्न, फिल्म से क्रिकेट, आदरणीय से बेशरम, अस्पताल से शवयात्रा, चिता से जूता तक ऐसे सत्रह विषयों को व्यंग्यकार द्वय ने अपने लेखों का आधार बनाया है.

देश के राजनीतिक हालात, सामाजिक रूढ़ियों, जातिवादी प्रवृत्तियों आदि के संग रोजमर्रा की जिंदगी के आसपास फैली विरूपताओं और बिडबनाओं को इन व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है. व्यंग्य की धारदार मार ज्यादातर राजनीति से जुड़े व्यक्तियों पर ही पड़ी है, पर फैशन परस्त युवा पीढ़ी, फिल्मों हस्तियों की दीवानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिलाएं, पढ़ाई से ज्यादा क्रिकेट के कीड़े बने हुए स्टूडेंट्स आदि भी उनकी पैनी नजर की पकड़ में आ ही गये हैं. बानकी बतौर 'जूता' पर लिखी पंक्तियां देखी जा सकती हैं. घोंघीजी, 'सरकारी जूता बहुत समझदार होता है. हिसाब से पहनोगे तो बिल्कुल नहीं काटेगा, रगड़ने पर ही तुल गये तो काटेगा नहीं तो और क्या करेगा?' इधर ईश्वर शर्मा जी का कहना है, 'समाज में हम सबकी स्थिति जूते के समान ही तो है. हम सब किसी न किसी पांव में चढ़ने के लिए ही तो अपनी दुकान सजाए बैठे हैं..... जूता मखमली हो या शेर की खाल वाला, सस्ता हो या महंगा, लेकिन जूता हर हालत में जूता ही कहलाता है. पहना तो उसे पैरों में ही जाता है. जो इस तथ्य को समझ गये हैं, वे मजे से पैरों के पास पड़े रहते हैं और जिन्हें अपने बारे में कुछ अधिक भ्रम हो जाता है, वे ठुकरा दिये जाते हैं और काम भी क्या है, केवल तलवे चाटते रहो.' की कोई कमी थोड़े ही है इस समाज में. जूते का और काम भी क्या है, केवल तलवे चाटते रहो.'

श्रोताओं को संगीत में सुखात्मक अनुभूति देने वाली जुगलबंदी की शुरूआत इस पुस्तक के द्वारा अब साहित्य में भी हो रही है. विभिन्न विषयों पर ज्वाइंटली लिखे इन व्यंग्य लेखों से पाठकों को प्रसन्नता और परितोष प्राप्त होगा— क्योंकि इनमें व्यंग्य की कचोट को विनोद का संग-साथ देकर मुस्कान को मिसरी जैसा बना दिया है. बकौल के.पी. सक्सेना— 'खेमों में बंटी व्यंग्य-बाजी के इस युग में एक ही पेड़ की छांव तले बैठे लिख रहे हैं— यह मामूली बात है क्या?' मामूली से विषयों का यह वैविध्य व्यंग्य की विधायिका शक्ति की सामर्थ्य का सबूत देता है, जो साहित्य क्षेत्र के लिए सचमुच ग्खद सूचना है.

लेखक : लतीफ घोंघी और ईश्वर शर्मा
प्रकाशकः सत्साहित्य प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6
मूल्य : पचास रुपये

बिके हुए लोग

पैसा प्रधान इस युग में हर चीज बिकाऊ है— यहां तक कि मानवीय मूल्यों के वाहक समझे जाने वाले साहित्यकार और कलाकार भी. सरोजिनी प्रीतम ने आज के उन तथाकथित कवियों और लेखकों की कलई खोली है जिन्होंने या तो अपनी कलम बेच दी है या फिर जो योग्य और प्रतिभा सम्पन्न न होते हुए भी पैसे के बूते पर अपने को प्रतिष्ठित कर पाने में सफल होते हैं.

आज के कवि-लेखक समाज में कीर्ति को पैसे के बल पर कमा लेने की प्रवृत्ति किस हद तक जा पहुंची है— इस सब स्थितियों का जायजा सरोजिनी प्रीतम ने व्यंग्य विधी के माध्यम से कथात्मक फॉर्म में लिखी अपनी कृति 'बिके हुए लोग' में किया है. यश लोभी इन्हीं साहित्यकारों की इसी कमजोरी का लाभ उठाने के लिए कुंभन सिंह लेखक कॉलोनी में 'अभिनंदन करवा लो' की फेरी लगाता फिरता है और उसे राशिबाई, नेत्रवती, सपनावती अभिनंदन के लिए आतुर लेखिकाएं-कवयित्रियां मिल भी जती हैं जो एडवांस में मोटी रक[illegible] देकर अपने सत्कार में साहित्यिक आयोजन [illegible]रा लेना जीवन की सार्थकता समझती हैं. व्यंग्य विधा में बात की बारीकी शब्दों और अर्थों के भीतर से ज्यादा झांकती है और विनोद-विद्या में वह अधिक स्पष्ट हो जाती है. लेखिका का कथ्य व्यंग्य के रास्ते आया तो है, पर ज्यादातर वह हास्य-विनोद की सपाटबयानी के रास्ते चल कर कई बार फिसल भी पड़ा है. ऐसे स्थलों पर व्यंग्य के पैनेपन की कमी अखरती भी है. व्यंग्य को विनोद का जामा पहनाने की इस प्रवृत्ति से कई कल्पित नामों और स्थितियों से वास्तविक चेहरे और सच्ची घटनाएं बेनकाब भी हो जाती हैं और दिल्ली साहित्यिक जीवन से सरोकार रखने वाले उन्हें आसानी से पहचान भी सकते हैं. सपाटबयानी की यह तर्ज काबिले तारीफ नहीं मानी जा सकती.

लेकिन इसमें शक, नहीं किसी महिला द्वारा व्यंग्य-विधा को लेकर लिखा गया यह पहला ही उपन्यास है. साहित्य की दुनिया से जुड़े हुए जन इसे पढ़कर विनोदित भी होंगे और कसमसायेंगे भी. हास्य-व्यंग्य की मिलीजुली विद्या में लिखी यह कथाकृति अपने समानधर्माओं पर कहीं चोट करती है तो कहीं उन्हें सावधान भी करती है. कलम से प्रहारक बनना लेखिका को यहां रुचा है— शायद पाठकों को भी रुचे.

प्रो. विश्वंभर 'अरुण'

लेखिका : सरोजिनी प्रीतम
प्रकाशक : राजेश प्रकाशन, कृष्णा नगर, दिल्ली
मूल्य : पैंतीस रुपये

सफल व्यंग्य लेख

भारतेंदु युगीन व्यंग्य की अपेक्षा आधुनिक काल का व्यंग्य-साहित्य ने में कुछ अधिक ही प्रखरता लिये हुए है. आधुनिक पीढ़ी के व्यंग्यकारों ने सम सामयिक राज-नीति, व सामाजिक विसंगतियों पर अनेक रूपों के मारक प्रकार किये हैं. वर्तमान पीढ़ी में. यशवंत कोठारी एक परिचित हस्ताक्षर हैं. प्रस्तुत पुस्तक में व्यंग्य उपन्यास के अतिरिक्त उनके उन्नीस व्यंग्य लेख और दो कहानियां संकलित हैं. यश का शिकंजा एक विशुद्ध राजनैतिक उपन्यास है. आज की राजनीति उठ-पटक का पर्याय बन कर रह गई है. लोक तंत्र के नाम पर आज के राज नेता किस सीमा तक टुच्चेपन पर उतर आते हैं, पक्ष-विपक्ष में फूट डाल कर किस प्रकार सरकारें गिरायी-उठायी जाती हैं, 'राजनैतिक चाल' के रूप में किन-किन हथकड़ों से विरोधी दल दूसरे दलों के लोगों की हत्या कर डालते हैं— यही नहीं, 'बलात्कार' किये और करवाये जाते हैं. द्रष्टव्य है एक वरिष्ठ मंत्री रानाडे का स्वचिंतन, **"मैं 50 वर्ष से भारतीय राजनीति में भाड़ झोंक रहा हूं, और ये कल के लड़के मुझ पर सार्वजनिक रूप से आरोप लगाते हैं, और मुझे बलात्कारी और अत्याचारी करते हैं..."**

कोठारी ने 'सूत्रात्मक व्यंग्य' द्वारा सामाजिक नाम संज्ञाओं पर भी तीखे प्रहार किये हैं. संस्कृत सूत्रों के परिदृश्य में उन्होंने अपनी बात को सुस्पष्ट किया है. टीकाओं, शंकाओं और निवारण द्वारा उन्होंने विशेष चरित्रों को निर्वस्त्र किया है. दृष्यव्य है 'चमचे' की विशेषताएं, "चमचा हर समय अपनी कमर में 90° का कोण बना कर खड़ा रहता है. यह मुद्रा चमचे के लिये अत्यंत स्वास्थयवर्द्धक और उपयोगी है." 'बाढ़-सूत्र' की चारित्रिक विशेषता का एक उदाहरण लें, "वत्स, बाढ़ और स्त्री में कोई अंतर नहीं है. वैसे भी दोनों व्याकरण की दृष्टि से स्त्रीलिंग ही हैं. अतः इनके चरित्र का भगवान ही मालिक है. लेखक ने आधुनिक कवि का चित्रांकन 'कवि-सूत्र' में इस प्रकार से किया है : 'जटा के समान बालों वाला, दुबला-पतला, अर्द्ध विक्षिप्त, फटे वस्त्रधारी तथा पैरों में स्लीपर पहनने वाला जीव कवि होता है..." फिल्म ने हमारे समाज को किस कदर प्रभावित किया है. इसे 'फिल्म-सूत्र' में देखा जा सकता है.

शीतांशु भारद्वाज

यश का शिकंजा : ले. यशवंत कोठारी, प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6, मूल्य तीस रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्द्र धनुष, इन्द्र धनुष..."

चालीस वर्ष पहले, अपने पैतृक फार्म पर घूमते हुए नन्हीं सुषमा को प्रकृति से प्यार हो गया। यह जीवन ...न का आरम्भ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सुखद है

आज डा० सुषमा मित्रा — जो वनस्पतिज्ञ हैं, जिन्हें इस बात का गर्व है कि उन्होंने नेत्र-दान का संकल्प किया है।

"बरसात की पहली बौछार में सारे खेत नहाये हुए, दूर तक फैले, जहां इच्छामोती से मिलते थे वहां बरसते पानी की रेखायें अब भी नज़र आ रही थीं। जब मैं अपने दादा जी के साथ बाहर निकली तो मेरी आँखों के सामने कोई सामान्य हरियाली नहीं बल्कि एक जीवंत, धड़कन भरी, वर्षायी-हरियाली थी।

हम बहुत दूर नहीं गये थे कि मैंने आकाश में इन्द्र धनुष देखा — अपनी पूरी सजावट के साथ। मैं जीवन में पहली बार इन्द्र धनुष देख रही थी और मेरे मस्तिष्क में वे परी कथायें घूम रही थीं जिनका दावा था कि यदि कोई इन्द्र धनुष के छोर तक पुहंचने का साहस कर सके तो वहां उसे एक स्वर्ण-कलश मिलेगा।

इतिहास ने करवट ली जिसके परिणामस्वरूप वे खेत हमारे परिवार से छिन गये।

फिर भी मुझे लगता है कि उस सुदूर बरसाती सुबह को, मुझे तो मेरा स्वर्ण-कलश मिल गया था, क्योंकि, इन्द्र धनुष को ताकते हुये और दादा जी से उसके रंगों का रहस्य समझते हुए... मैं प्रकृति की आराधिका बन गई। बर्षों बाद, कुछ नाटकीय ढंग से, मुझे असली रहस्य का ज्ञान हुआ।

"मेरे छात्र और मैं प्रकृति दर्शन के लिए शिमला में निकले थे। उस दिन बसंत — प्रभात की निर्मल शान्ति थी। तभी एक अद्भुत घटना हुई। अकस्मात् तेज हवा चली जिसने चीड़ के वृक्षों से पके हुए सूक्ष्म पराग-कणों को नीचे गिरा दिया। फिर क्या था पर्वतीय ढलानों पर लाखों-करोंडों की संख्या में ये मकरन्द-कण स्वर्ण की निरन्तर वर्षा के रूप में बह रहे थे। इसे ही पर्वतीय गाथाओं में 'गंधक की फुहार' के नाम से सराहा गया है।"

"पवन से बिखरते हुये पराग के दृश्य को देखकर मुझे आभास हुआ कि ये सभी चीजें इतनी सुन्दर इसलिए मालूम होती हैं, क्योंकि मैं उन्हें देख सकती हूँ।"

घर लौटने पर मैंने एक काम किया जिससे उस एहसास का कुछ भला परिणाम निकले, मैंने संकल्प किया कि मेरी मृत्यु के उपरान्त, मेरे नेत्र किसी दृष्टिहीन को दान कर दिये जायें — डा० श्रीमती सुषमा मित्रा कहती हैं।

परिवार के लिये गर्व का विषय :

वह आगे कहती हैं : "आपको प्रसन्नता होगी कि मेरे पति और बच्चों ने भी नेत्र-दान का संकल्प किया है। हालांकि मेरे पति वैज्ञानिक हैं, किन्तु आरम्भ में उन्हें कुछ दुविधा थी, अतः मुझे कुछ बातें उन्हें समझानी पड़ी। अन्त में, वह मुझसे सहमत हो गये जैसे कि वह सदा करते हैं। (शायद यह भी एक कारण है कि मैं उन्हें प्यार करती हूँ) मेरे पति ने ही और परिवार जन को संकल्प पत्र भरने के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि मेरी वृद्ध दादी माँ ने भी नेत्र-दान संकल्प किया है।

नेत्र-दान का संकल्प कीजिये :

दृष्टि, अन्य सभी इन्द्रियों से बढ़कर, अत्यन्त ज्ञानवर्धक अनुभव है।

और डा० सुषमा मित्रा की तरह, वह चमत्कार कर दिखाने का सामर्थ्य आपमें है। नेत्र-दान का संकल्प कीजिये। इसके लिए केवल आपके हस्ताक्षर की आवश्यकता है।

और एक दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए किसी दिन देखने की सामर्थ्य पा लेना, एक चमत्कार से कम नहीं है।

नेत्र-दान के विषय में कुछ आधारभूत तथ्य :

1. किसी भी उम्र का, लगभग कोई भी व्यक्ति नेत्र-दान कर सकता है, यदि नेत्र-दाता चश्मा पहनता हो, उसे मोतियाबिन्द हो या आँखों का सफल ऑपरेशन हो चुका हो, तो भी नेत्र-दान सम्भव है।
2. मृत्यु के उपरान्त 6 घन्टों के अन्दर-अन्दर आँखों को निकाल लेना चाहिये। अतः निकटतम नेत्र-बैंक को तुरन्त सूचित करना आवश्यक है।
3. नेत्रों को निकालने में केवल 10-15 मिनिट लगते हैं और उससे कोई निशान या विकृति उत्पन्न नहीं होती।
4. आपके नेत्र-दान से दो दृष्टिहीन व्यक्तियों को दृष्टि मिलती है, एक दृष्टिहीन व्यक्ति को एक नेत्र प्रदान किया जाता है।
5. कानून में यह प्रावधान है कि आप किसी मृत सम्बन्धी के नेत्र-दान कर सकते हैं — यदि उसने कभी नेत्र-दान के विरुद्ध अपना मत व्यक्त न किया हो तो।

कृपया अपने परिवार के साथ इस विषय पर चर्चा करें। नीचे दिया गया प्रपत्र भरें। और टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को डाक द्वारा भेज दें। हम आपको एक नेत्र-दाता के रूप में पंजीयन कर लेंगे और आपको नेत्र-दाता कार्ड और प्रमाण पत्र भेजेंगे जिसमें आपके निकटतम नेत्र-बैंक का नाम, पता व टेलीफोन नम्बर, अंकित होगा।

राष्ट्र को नेत्र-दान करने की घोषणा

मैं/हम, अधोहस्ताक्षरीगण, एतद्द्वारा संयुक्त रूप से/पृथक-पृथक राष्ट्र को अपने नेत्र दान करने का संकल्प लेता हूँ/लेते हैं तथा एक दूसरे पर दायित्व डालते हैं कि हममें से किसी की भी मृत्युपरांत नेत्र-चिकित्सक को बुला कर, प्रत्यारोपण के उद्देश्य से हमारे नेत्र निकाल कर हमारी इच्छा पूर्ण की जाए।

1. श्री/श्रीमति ______ आयु ______ हस्ताक्षर ______
2. श्री/श्रीमति ______ आयु ______ हस्ताक्षर ______
3. श्री/श्रीमति ______ आयु ______ हस्ताक्षर ______

पता ______ पिनकोड ______ राज्य ______ तिथि ______

साक्षी की आवश्यकता है जब केवल एक या परिवार के 3 से कम सदस्य नेत्रदाता हों।

1. श्री/श्रीमति ______ 2. श्री/श्रीमति ______

रिश्ता ______ रिश्ता ______

हस्ताक्षर ______ हस्ताक्षर ______

पता ______ पता ______

दृष्टि टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन

टाइम्स ऑफ इंडिया, 10, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002.

दृष्टि के आनन्द को बांटिये. नेत्र-दान का संकल्प कीजिये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन को दी जाने वाली वित्तीय सहायता आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80(जी) के अंतर्गत कर रहित है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठहरकर सोचने पर विवश करती कहानियां

स्वाधीनता के चार दशकों में, इस देश में जो होना चाहिए था, वह नहीं हो सका. यही वजह है कि आर्थिक विषमता की खाई चौड़ी होती चली गयी. परिणामतः 'जीवन' को संचालित करने वाली शक्तियां अपने में फलती-फूलती चलीं गईं और हमारा समाज धीरे-धीरे अपने मूल चरित्र की तस्वीर धुंधलाता चला गया. सामाजिक परिवर्तन के जिस चक्र को विकास की ओर चलना था, वह विपरीत दिशा की ओर लौटने लगा. इस सत्य से साक्षात करना हो तो हमें सरकारी प्रचार माध्यमों की खबरों से अलग, खुद आंखें खोलकर यह देखना होगा कि कैसे इस एक समाज के लोग अलग-अलग शताब्दियों में जी रहे हैं! पांच सितारा संस्कृति से नीचे झांकते ही क्यों चारों ओर मौत के इर्द-गिर्द मंडराते जीवित नर-कंकाल नज़र आते हैं! भ्रष्ट राजनीति के इशारे पर चल रहे इस समाज में कैसे 'व्यक्ति' एक इकाई न रहकर 'वोट' में तब्दील होता जारहा है...जिसे चाहे-अनचाहे किसी न किसी के लिए इस्तेमाल होना ही है.

ऐसे में हमारे समय का नया रचनाकार जब अपने लेखन के सफर की शुरुआत करता है...तब उसका दायित्व क्या होना चाहिए! यह एक ऐसा ज्वलंत प्रश्न है, जिसे कभी 'नॉस्टेलजिक मूड' में हमारे कथालोचक तो कभी बुजुर्ग रचनाकर विचारणीय मानते ही नहीं. चूंकि जो कुछ लिखा जा सकता था, वह तो दरअसल उन्हीं के समय में रचा जा चुकाहै. दरअसल उन्हीं के समय में रचा जा चुका है. बहरहाल, नयी रचनाशीलता के विकास का रास्ता तैयार करते हुए गहरी और व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि का विकास करने की दृष्टि से जो गैरव्यावसायिक और सार्थक प्रयास होने चाहिए उनकी स्थिति बहुत दयनीय है. इस धुंधलके में पिछले पांच वर्षों में एक प्रयास क्रमशः आकार लेता नजर आ रहा है...और वह है—(से.रा. यात्री, विभूति नारायण राय, कपिलेश भोज के संपादन में प्रकाशित) कथा-मासिक 'वर्तमान साहित्य'. यूं तो, इस पत्रिका में अब-तब अच्छी रचनाएं पढ़ने को मिलती रही हैं...किंतु इधर जनवरी, 1988 के अंक में 'कृष्ण प्रताप स्मृति कहानी प्रतियोगिता' में पुरस्कृत कहानियों से होकर गुज़रते हुए 'बेला एक्का लौट रही हैं', 'गैर जिम्मेदार उम्र' और 'पितृपद का स्थानांतरण' जैसी रचनाओं ने इस रूप में ध्यान आकर्षित किया...कि यह है नई रचनाशीलता...और इस

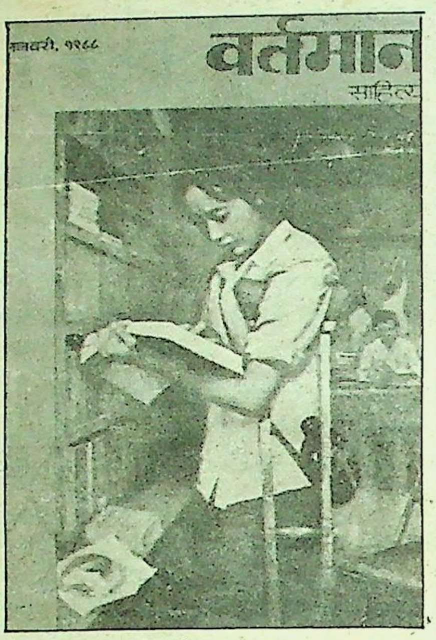

तरह नया कहानीकार समझना-परखना चाहता है अपने समय और समाज को!

यह तीनों कहानियां किसी न किसी रूप में समाज को संचालित करने वाली शक्तियों के मूल चरित्र को समूचेपन में पहचानने का संयुक्त प्रयास-सी प्रतीत होती हैं. 'बेला एक्का लौट रही हैं' जहां एक सधी हुई कथा-रचना के रूप में अपने आकर्षक शिल्प की वजह से सबसे ज्यादा प्रभावित करती है वहीं उसकी नायिका बेला एक्का जैसे चरित्र की असहाय स्थिति और बेचारगी हमें यह अहसास गहराई से कराती है कि छोटे लोगों के सपने बड़े लोगों के जूतों की नोक पर टिके होते हैं. जरा मस्ती में पैर ही झटक दिया, सपनों का शीराज़ा बिखर जाता है. जगदीश बाबू यहां कहानी का आधार चरित्र भले ही न हो, लेकिन बेला एक्का के सपनों की लगाम उसके हाथ में है. हो सकता है बेला एक्का की वापसी बहुतों को न रुचे...पर यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि कहानियों में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज कर देने भर से क्रांति की शुरुआत नहीं हो जाती. इस कहानी की नायिका यदि इतना भर समझ गयीं है कि 'सहना मरना है!' तो यह हमारे समाज की एक उपलब्धि ही है. और यह अस्वाभाविक नहीं है कि बेला एक्का जैसी किसी भी लड़की के सपनों का शीराज़ा कभी भी बिखर सकता है.

कहानी 'गैर जिम्मेदार उम्र' में जगदीश जैसा चरित्र हू-ब-हू न सही....पर बाज्यू उन्हीं शक्तियों का प्रतिनिधि चरित्र है जिनसे हमारा ग्रामीण समाज संचालित हो रहा है. यह कहानी एक मस्त, बेफिक्र और गैरजिम्मेदार किस्म की उम्र के नायक के मनोजगत को करीब से पहचानने की कोशिश के साथ-साथ हमारी संवेदना के तंतुओं को बाज्यू और मास्साब के (असमान जीवन स्तर के कारण) व्यवहार से झकझोरती हुई भी चलती है. अपनी जिस औलाद को अपने सपनों के मुताबिक ढालने की भरपूर कोशिश बाज्यू करते हैं, वही किस तरह एक दिन मास्साब की दयनीय हालत देखकर सहज रूप में वह सब कुछ जान-समझ लेता है जो हमारे समाज के असंतुलन की कुंजी है. धूप में नहीं, 'बोध' के झटके में खुली उसकी आंखें उसकी समूची सोच को बदल डालती हैं. पहली कहानी की ही भांति, इस कहानी में भी लड़का जो चाहता है, वह होता है या नहीं इसकी परवाह किये बिना कथाकार ऐसी जगह हमें ले जाकर खड़ा कर देता है जहां पहुंचकर गंभीरतापूर्वक सोचना हमारी विवशता हो जाती है...पर यह आश्वस्ति भी रहती है कि आने वाला समय ऐसा ही नहीं रहेगा. दो पीढ़ियों की समझ और सोच का यही फर्क कुछ दूसरे रूप में 'पितृपद का स्थानांतरण' कहानी में भी सामने आया है. यहां नयी पीढ़ी के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में गणेश एक यादगार चरित्र बनकर आया है जो पुत्र की हैसियत से यदि अपने दायित्यों का निर्वाह करना जानता है तो बड़े भाई को फटकार भी सकता है कि पिता को पैसे की नहीं बेटे की जरूरत है. उसका अंतिम प्रश्न पिता के अंधविश्वासों को जिस तरह झटका देता है वह निश्चित रूप से कहानी की उस पारंपरिक तर्ज को झुठलाता है जहां भावुकता अंत तक पूरी लय के साथ विद्यमान रहती है. और शायद यही कहानी की नयी संवेदना तक पहुंचने का रास्ता भी है. अरुण प्रकाश, संजय खाती और क्षितिज शर्मा इन कहानियों के लिए बधाई के पात्र इसलिए हैं कि वे मजेदार स्थितियों से होकर गुजरती कहानी में भी उस खतरे से बचा ले जाते हैं जहां मजा लेने भर के लिए कहानी बनी रह जाती है...ठहरकर सोचने पर विवश करती हैं यह कहानियां. □

महेश दर्पण

वर्तमान साहित्य
संपर्क : 109, रिछपाल पुरी,
पोस्ट बाक्स नं. 13
गाजियाबाद-201 001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

कैसी होती है जिस्म से जेहन तक के रेशे-रेशे को जकड़े रखने वाली कैद... जिसके सींखचे दिखाई नहीं देते लेकिन शिकंजों का कसाव हर सांस महसूस करती रहती है...?

जिंदगी के अहम् सवालों से सामना ही नहीं, रास्ता तलाशने की दिशा में भी पहल करती देवेंद्र सत्यार्थी, शिव प्रसाद सिंह, कैथरीन मैंसफील्ड, श्रवण कुमार, सुरेंद्र अरोड़ा, आनंद अस्थाना, रामसरन शर्मा, रमेश राजहंस, राजेंद्र प्रसाद पांडेय, महावीर राजी और महेश राजा आदि की कथा-रचनाएं.

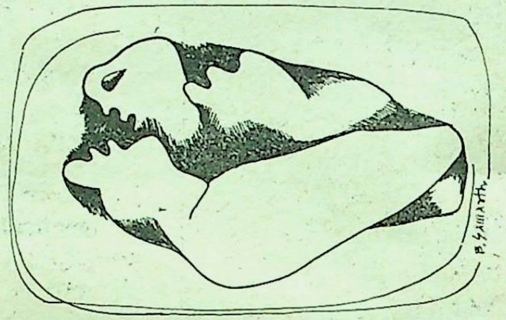

'पुनर्नवा' के अलावा आचार्य द्विवेदी ने कोई उपन्यास लिखा ही नहीं.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुण्य तिथि पर प्रख्यात आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय का महत्वपूर्ण आलेख... जिसमें पहली बार द्विवेदीजी की कथा-कृतियों के रूपबंध के बारे में फैले भ्रम का प्रतिवाद करने की कोशिश की गयी है.

...और साथ में

फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, अनजानी प्रेम कथाएं, संस्मरण, नयी पौद, आपकी बात, नये हस्ताक्षर, कथा दर्शन, धारा के विरुद्ध, कृतियां, अपनी बात, हलचल, लघुकथाएं और चलते-चलते.

सारिका
मई, 1988

हर महीने एक जरूरी मुलाकात,
सारिका जिंदगी की बेहतर किताब.

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

नये रूपाकार, साज-सज्जा और बढ़े हुए पृष्ठों के साथ 'सारिका' का यह अंक आपको अवश्य पसंद आया होगा और भविष्य में भी आप 'सारिका' नियमित रूप से पढ़ना चाहेंगे. आपकी सुविधा के लिए हमने 'सारिका' की वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक चंदे की रियायती दरें निर्धारित की हैं. आप केवल नीचे दिये गये कूपन के साथ अपने वार्षिक/अर्द्धवार्षिक चंदे की राशि बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा हमें भेज दें, आपको 'सारिका' डाक से नियमित मिलने लगेगी.

शुल्क की रियायती दरें :

वार्षिक :67 रुपये

अर्द्धवार्षिक :34 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता ....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

प्रसार अधिकारी
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar